प्राचीन भारतीय

देव-मूर्तियाँ

संस्कृति विभाग, उत्तर प्रदेश

प्राचीन भारतीय देव-मूर्तियाँ

(प्रतिमालक्षण-सम्बन्धी विवेचन)

लेखक
डा० ए०एल० श्रीवास्तव

सस्कृति विभाग, उ०प्र० शासन, लखनऊ
1998

प्रकाशकीय

ससार मे मूर्ति का प्रतीक जितना शक्तिशाली रहा है उतना अन्य कोई प्रतीक नही। हमारे देश मे मूर्ति पूजा की परम्परा बडी पुरानी है। मूर्ति का सम्बन्ध जितना कला से होता है उतना ही धर्म से। भारतवर्ष मे वैदिक धर्म वेष्णव शैव शाक्त सौर आदि अनेक सम्प्रदायो के रूप मे आज भी लाकप्रिय है। उसी के साथ जेन तथा बौद्ध धर्मो ने भी अपने अनेक सम्प्रदायो के साथ जनमानस मे अपना सपूज्य स्थान बनाया है। इन धर्मो ओर सम्प्रदायो से जुडे अनेक दवी देवता है जो उनके धर्मावलम्बियो द्वारा श्रद्धा और भक्तिपूर्वक पूजे जाते रहे है।

देवी देवताआ की यह पूजा उनके साकार स्वरूप यानी प्रतिमा अथवा मूर्ति की होती आई है। भक्ति और आस्था की आधार ये देव मूर्तियाँ अपने गुणो और आख्याना से रूपायित की गई है। प्रत्येक देवी और देवता का कोई न कोई पृथक गुण अथवा कार्य होता है। उसी के अनुरूप भारतीय शिल्पियो ने उनकी मूर्तियाँ बनाइ। सरसरी दृष्टि से एक जैसी लगने वाली विभिन्न देवो की मूर्तियो मे कुछ न कुछ अन्तर अवश्य रहता है। कालान्तर मे इन देवी देवताओ की मूर्तियो के निर्माण विधान के लिए अनेक शिल्पशास्त्रो की रचना की गई। परवर्तीकाल की मूर्तियो का शिल्प निर्माण इन्ही शास्त्रो के निर्देशो के आधार पर किया गया। परन्तु यदाकदा शास्त्रगत नियमो का उल्लघन करके भी शिल्पियो ने अपनी परिकल्पना अथवा सामाजिक परिवतनो के आधार पर मूर्तियो की सजना की।

आज हमारे सग्रहालयो मे देश भर मे फैले मन्दिरो स्तूपो विहारो और भग्नावशेषो मे हजारो की सख्या मे विभिन्न देवी देवताओ की मूर्तियो का विपुल भण्डार है। परन्तु देश का बहुसख्यक जनमानस इन देवी देवताओ के विशेष लक्षणो से लगभग अपरिचित सा है।

हमे प्रसन्नता है कि डा० ए०एल० श्रीवास्तव का प्रस्तुत ग्रथ *प्राचीन भारतीय देव मूर्तियाँ* देशवासियो को अपने विभिन्न देवी देवताओ की सही पहचान कराने मे और उसके माध्यम से देश की कला और धर्म की इस बहुमूल्य विरासत की सुरक्षा सरक्षा के प्रति उन्हे जागरूक बनाने मे नि सन्देह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगा। डा० श्रीवास्तव ने पौराणिक आख्यानो और विभिन्न शिल्पशास्त्रो के उद्धरणो के आधार पर विभिन्न देवी देवताओ के लक्षणो की न केवल सम्यक विवेचना प्रस्तुत की है अपितु उनके चित्रो के माध्यम से उनके स्वरूपो का चाक्षुष दर्शन भी कराया है।

आशा है सारगर्भित किन्तु सरल और सुबोध भाषा मे रचा गया यह ग्रथ राष्ट्रभाषा हिन्दी की श्रीवृद्धि तो करेगा ही साथ ही यह सग्रहालय-दीर्घाओ के दर्शको मूर्तिकला के विद्यार्थियो और जिज्ञासुओ के लिए भी लाभकारी सिद्ध होगा।

के० के० उपाध्याय
आई०ए०एस०
निदेशक
सस्कृति विभाग उ०प्र०
लखनऊ

आमुख

हमारे सज्य उत्तर प्रदेश के विभिन्न सग्रहालयो मे हमारी प्राचीन धरोहर का अकूत भण्डार भरा हुआ है। देव-मूर्तियॉ भी इस धरोहर का एक प्रमुख अग है। वस्तुत हमारे सग्रहालयो मे प्रतिदिन आने वाले दर्शको का एकमेव लक्ष्य उनमे सग्रहीत-प्रदर्शित पत्थर धातु अथवा मिटटी की बनी विभिन्न देव-मूर्तियो को देखना होता है। इन दर्शको मे बहुसख्यक जनसामान्य होते है जिन्हे अपने देवी-देवताओ के नाम या उनसे जुडे आख्यान तो पता होते हैं पर वे उनके मूर्ति-लक्षणो से नितात अपरिचित होते है। वे इन्द्र वायु अग्नि आदि देवो को जानते तो है पर उनकी मूर्तियो मे भेद नही कर पाते है। इसी प्रकार वे बुद्ध और महावीर की मूर्तियो की भी सही पहचान करने मे असमर्थ होते है। परिणामत हमारे देश का जनसामान्य दर्शक हमारे सग्रहालयो की देव-मूर्तियो पर मात्र एक विहगम दृष्टि डालता हुआ गैलरी के एक छोर से दूसरे छोर तक बिना कुछ जाने समझे यो ही निकल जाता है।

इसी प्रकार हमारे गॉवो के मन्दिरो मे अथवा गॉवो के निकटस्थ निर्जन स्थानो पर अनेक देवी-देवताओ की मूर्तियॉ पडी हैं। मन्दिरो के तो कपाट रात मे बन्द हो जाते हैं परन्तु निर्जन स्थानो की मूर्तियॉ तो नितात असुरक्षित रहती है। हमारे ग्रामवासी चूँकि इन मूर्तियो के महत्त्व से परिचित नहीं होते है या दूसरे शब्दो मे कहे तो उन्हे यह पता ही नही होता कि ये मूर्तियॉ किन देवी-देवताओ की है इसलिए वे इनकी सुरक्षा के लिए सर्तक भी नही रहते है। परिणामस्वरूप प्राय हमारे देश की ये बहुमूल्य मूर्तियॉ तस्करो के माध्यम से विदेश पहुँच जाती है।

अस्तु सग्रहालयो मे प्रदर्शित और देश भर मे यत्र-तत्र अवस्थित इन देवी-देवताओ की मूर्तियो की पहचान के लिए सरल हिन्दी भाषा मे एक ऐसी पुस्तक की नितात आवश्यकता थी जिसमे विभिन्न देवी-देवताओ की मूर्तियो के प्रमुख लक्षणों का सम्यक विवेचन हो तथा उस विवेचन की सम्पुष्टि के लिए तत्सम्बन्धी देव-मूर्तियो के चित्र भी हो। ऐसी पुस्तक न केवल सग्रहालय के दर्शको मे देश की मूर्तिकला के विषय मे अभिरुचि उत्पन्न करती अपितु वे इन मूर्तियो के महत्त्व से चिर परिचित भी होते और तब वे अपनी इस बहुमूल्य धरोहर तथा देश की वैभवशाली विरासत की रक्षा करने के लिए जागरूक भी बनते।

इन्ही कतिपय विशिष्ट उद्देश्यो को ध्यान मे रखकर प्रस्तुत पुस्तक *प्राचीन भारतीय देव-मूर्तियॉ* की रचना की गयी है। परन्तु मुझे आशा है कि यह पुस्तक सामान्य दर्शको के साथ-साथ भारतीय मूर्तिकला के जिज्ञासुओ और विश्वविद्यालयो मे मूर्ति-विज्ञान के छात्र-छात्राओ के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी।

यह शैक्षिक एव सास्कृतिक कार्य उत्तर प्रदेश शासन के सस्कृति विभाग के आर्थिक सहयोग से सम्पन्न हो सका है जिसका श्रेय उस विभाग के सुधी और सुविज्ञ अधिकारियो को जाता है। एतदर्थ लेखक उन सबके प्रति अपना साधुवाद प्रकट करता है। इस पुस्तक की रचना मे जिन विद्वानो की कृतियो का उपयोग किया गया है लेखक उनके ज्ञान का सदैव ऋणी रहेगा। जिन सस्थानो और सग्रहालयो के अधिकारियो ने तथा सुहृद्जनो ने छायाचित्र उपलब्ध कराकर इस पुस्तक को सॅवारने और समृद्ध करने मे अपना बहुमूल्य सहयोग दिया है लेखक उनके प्रति भी चिर कृतज्ञ है।

– ए० एल० श्रीवास्तव

अनुक्रम

चित्र-सूची

वैष्णव देव–मूर्तियॉ

शैव देव–मूर्तियॉ

35 नटराज नल्थूनै मदिर पुजई (तजौर तमिलनाडु) मध्यकाल (कास्य)
36 अर्द्धनारीश्वर कन्नौज प्रतिहारकाल (कन्नौज–सग्रहालय स्रोत नी०पु० जोशी)
37 अर्द्धनारीश्वर राजस्थान लग० 8वी शती ई० प्रतिहारकाल
38 हरिहर अज्ञात स्थान लग० 8वी शती ई० (लखनऊ–सग्रहालय स० एच–119)
39 कल्याणसुन्दर कन्नौज प्रतिहारकाल
40 उमामहेश्वर पाल शैली लग० 12वी शती ई० (लखनऊ–सग्रहालय)
41 रावणानुग्रह कन्नौज लग० 10वी शती ई० (कन्नौज–सग्रहालय)
42 बटुक भैरव कन्नौज गुप्तकाल (निजी सग्रह)
43 काल भैरव अहिच्छत्रा गुप्तकाल (मृण्मूर्ति)
44 गजासुर–सहार तेली का मदिर ग्वालियर दुर्ग 8वीं शती ई० (ग्वालियर–सग्रहालय)
45 कार्त्तिकेय कुशीनगर लग० 12वी शती ई० (लखनऊ–सग्रहालय स० जी–399)
46 कार्त्तिकेय कन्नौज लग० 5वी–6ठी शती ई० (इलाहाबाद–सग्रहालय स० 946)
47 कार्त्तिकेय भुमरा (म०प्र०) गुप्तकाल (इलाहाबाद–सग्रहालय स० 150)

सूर्य एव गणेश–मूर्तियॉ

48 सूर्य बोधगया वेदिका–स्तभ प्रथम शती ई०पू०
49 सूर्य कन्नौज प्रतिहारकाल (कन्नौज–सग्रहालय)
50 52 गणेश मृण्मूर्तियॉ कन्नौज गुप्तकाल (कन्नौज–सग्रहालय)
53 नृत्य गणेश कम्पिल 9वी शती ई० (लखनऊ–सग्रहालय स० 58 47)
54 नृत्य गणेश सिरोनखुर्द लग० 10वी शती ई० (झॉसी–सग्रहालय)
55 नृत्य गणेश कन्नौज प्रतिहारकाल (निजी सग्रह)

देवशक्तियॉ या देवी–मूर्तियॉ

56 सरस्वती ककाली टीला मथुरा कुषाणकाल (लखनऊ–सग्रहालय स० जे–24)
57 सरस्वती गोरखपुर लगभग 12वीं शती ई० (लखनऊ–सग्रहालय स० एच–23)
58 पद्मा (लक्ष्मी) सॉची स्तूप स० 2 द्वितीय शती ई०पू०
59 गजलक्ष्मी या अभिषेकलक्ष्मी भितरी गुप्तकाल (लखनऊ–सग्रहालय स० 55 201)
60 राज्यलक्ष्मी सॉची विशाल स्तूप प्रथम शती ई०पू०
61 तपस्विनी पार्वती कन्नौज गुप्तकाल (कन्नौज–सग्रहालय)
62 महिषमर्दिनी दुर्गा एटा लगभग 14वी शती ई० (लखनऊ–सग्रहालय स० जी–68)
63 शान्तदुर्गा श्रावस्ती गुप्तकाल (लखनऊ–सग्रहालय स० बी–592)
64 शान्त दुर्गा भितरी गुप्तकाल (लखनऊ–सग्रहालय स० 55 201)
65 एकानशा (बलराम और कृष्ण के बीच) मथुरा कुषाणकाल (मथुरा–सग्रहालय)
66 षष्ठी (स्कन्द और विशाख के बीच) मथुरा कुषाणकाल (बर्लिन–सग्रहालय स० आई–10119)
67 सागरपति वरुण से मिलती गगा–यमुना नदी देवता उदयगिरि गुहा (विदिशा म०प्र०) गुप्तकाल
68 मकरवाहिनी गगा (मृण्मूर्ति) अहिच्छत्रा गुप्तकाल (राष्ट्रीय सग्रहालय नई दिल्ली)
69 कच्छपवाहिनी यमुना (मृण्मूर्ति) अहिच्छत्रा गुप्तकाल (राष्ट्रीय सग्रहालय नई–दिल्ली)
70 मातृका गुप्तकाल (बडौदा–सग्रहालय स० 2 667)
71 कौमारी गुप्तकाल 5वी शती ई० (बडौदा–सग्रहालय स० 2 547)

72 वाराही गुप्तकाल लगभग 4थी शती ई० (बडौदा–सग्रहालय स० 2 553)

73 इन्द्राणी गुप्तकाल 4थी शती ई० (बडौदा–सग्रहालय स० 2 546)

74 चामुण्डा जमसोत 12वी शती ई० (इलाहाबाद–सग्रहालय स० 105)

75 सप्तमातृका फलक नालन्दा (बिहार) लगभग 8वी–9वी शती ई० (लखनऊ–सग्रहालय स० एच–34)

दिक्पाल एव अन्य देव–मूर्तियॉ

76 वरुण वराहखेडी (रायसेन म०प्र०) लग० 8वी–9वी शती ई० (बिडला–सग्रहालय भोपाल स० 123)

77 कुबेर पभोसा प्रतिहारकाल (लखनऊ–सग्रहालय स० जी–56)

78 यक्ष परखम (मथुरा) मौर्य–शुगकाल (मथुरा–सग्रहालय स० सी–1)

79 नाग–दम्पति अजन्ता गुप्तकाल

80 नाग–दम्पति बिहार मध्यकाल

81 गन्धर्व (चित्राकन) अजन्ता गुप्तकाल

82 अप्सरा (चित्राकन) अजन्ता गुप्तकाल

बौद्व देव–मूर्तियॉ

83 बुद्ध (ध्यानमुद्रा) गाधार कला तृतीय शती ई०

84 बुद्ध कटरा (मथुरा) प्रथम शती ई० (मथुरा–सग्रहालय)

85 बुद्ध (धर्मचक्रप्रवर्तनमुद्रा) सारनाथ गुप्तकाल (सारनाथ–सग्रहालय)

86 बुद्ध (अभय मुद्रा) श्रावस्ती गुप्तकाल (राष्ट्रीय सग्रहालय नई दिल्ली)

87 सिहनाद अवलोकितेश्वर महोबा 11वीं शती ई० (लखनऊ–सग्रहालय स० ओ–225)

88 तारा कन्नौज प्रतिहारकाल (कन्नौज–सग्रहालय)

89 प्रज्ञापारमिता सिहसारि (जावा) 13वी शती ई०

जैन देव–मूर्तियॉ

90 91 आयागपटट मथुरा कुषाणकाल (लखनऊ–सग्रहालय)

92 तीर्थंकर महावीर मथुरा कुषाणकाल (मथुरा–सग्रहालय)

93 तीर्थंकर नेमिनाथ मथुरा कुषाणकाल (मथुरा–सग्रहालय)

94 तीर्थंकर मथुरा गुप्तकाल (लखनऊ–सग्रहालय स० जे–104)

95 तीर्थंकर ककाली टीला (मथुरा) 11वी शती ई० (मथुरा–सग्रहालय)

96 तीर्थंकर चन्द्रप्रभ कौशाम्बी 9वीं शती ई० (इलाहाबाद–सग्रहालय स० 295)

97 तीर्थंकर शान्तिनाथ पभोसा 11वी शती ई० (इलाहाबाद–सग्रहालय स० 533)

98 बाहुबली श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) लग० 9वीं शती ई० (बम्बई–सग्रहालय स० 105)

आभार-प्रदर्शन

पुस्तक की श्रीवृद्धि के लिए उपलब्ध कराए गए चित्रों के लिए लेखक निम्न सस्थाओं और महानुभावो के प्रति अपना आभार प्रकट करता है–

अमेरिकन इन्स्टीटयूट ऑव इण्डियन स्टडीज वाराणसी (चित्र 2 5 26 41 48 49 58 60 74 एव 78) राज्य सग्रहालय लखनऊ (चित्र 38 40 45 53 57 59 62 64 75 77 86 एव 87) डा० हरीसिह गौर पुरातत्त्व सग्रहालय प्राचीन भारतीय इतिहास सस्कति एव पुरातत्त्व विभाग सागर विश्वविद्यालय सागर म०प्र० (चित्र 1) डा० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी वाराणसी (चित्र 31 32 36 एव 65) तथा डा० महेन्द्र वर्मा झॉसी (चित्र 27)।

प्रथम अध्याय

भारत मे मूर्तिकला का प्रारम्भ और विकास

भारत मे मूर्तिकला का प्रारम्भ मानव सभ्यता के प्रारम्भ के साथ-साथ हुआ जान पडता है। कई हजार साल पहले मनुष्य पहाडो की कन्दराओ मे रहता था और कन्द मूल फल से अथवा जगली जानवरो का शिकार करके अपना पेट भरता था। शिकार करने के लिए वह पत्थर के नुकीले हथियार बनाता था। उसी युग मे मनुष्य पत्थरो के इन हथियारो से हडिडयो या हाथी के दॉतो को इधर-उधर काट-तराशकर मूर्तियो का रूप भी देने लगा था। इस प्रकार भारत मे मूर्तिकला का प्रारम्भ प्रागैतिहासिक काल मे ही हो गया था।

हडप्पा काल

हडप्पा-सभ्यता काल (सिन्धुघाटी की सभ्यता) मे मानव और पशुओ की आकृतियॉ मिटटी पत्थर और धातुओ से बनाई जाने लगी थी। छोटे आकार की हजारो नारी-आकृतियॉ हडप्पा मोहेजोदडो कालीबगॉ आदि अनेक स्थानो से मिली है जिन्हे विद्वान मातृदेवी की मूर्तियॉ मानते है। उनका विचार है कि इन मूर्तियो का उपयोग घरेलू धार्मिक पूजा-पाठ मे किया जाता होगा। पत्थर की मूर्तियो मे एक योगी या पुरोहित की मूर्ति एक पुरुष-धड और एक नर्तक या नर्तकी का धड उल्लेखनीय है। मूँछे मुडाए किन्तु सिर के बाल और दाढी बढाए और कधे पर चादर डाले पुरोहित वाली मूर्ति मे ऑखे आधी खुली है। अधखुली ऑखो के कारण विद्वान इसे योगी और आकृति तथा पहनावे के आधार पर मेसोपोटामिया देश (आधुनिक ईरान-ईराक) का पुरोहित मानते है। लाल बलुए पत्थर वाले धड मे न शीश है न हाथ है और न जघाओ के नीचे के पैर। इस धड के नग्न होने के कारण कुछ विद्वान इसे जैन मूर्ति का प्रारम्भिक स्वरूप मानते है। हडप्पा-काल मे धातु को गलाकर मूर्ति के रूप मे ढालने की कला का भी विकास हो चुका था। इसका प्रमाण कॉसे की एक नर्तकी और भैसे की एक आकृति है।

इन स्वतत्र मूर्तियो के अतिरिक्त मिटटी स्लेट चूना-पत्थर आदि से बनाई गई हजारो मुद्राऍ (मोहरे या सील) भी मिली है जिन पर अनेक मानव तथा पशुओ की आकृतियॉ उकेरी गई है। इन पर एक अज्ञात लिपि के लेख भी है जिन्हे अभी तक निर्विवाद रूप से पढा नही जा सका है। मोहेजोदडो से मार्शल महोदय को एक त्रिमुखी पुरुष-आकृति वाली मुद्रा मिली थी। वह आकृति पलथी मारकर एक चौकी पर बैठी है। उसके शीश पर त्रिशूल जैसे सीग (श्रृग) है। आकृति के दाये हाथी और बाघ तथा बाऍ गैंडा और महिष या भैसे की आकृतियॉ है। चौकी पर नीचे दो हिरन बने है। मार्शल ने इस मूर्ति की पहचान पशुपति शिव के प्रारम्भिक स्वरूप से की है। इस मूर्ति मे मार्शल को शिव का महायोगी त्रिवक्त्र (त्रिमुखी) तथा त्रिश्रृग स्वरूप प्रतिबिम्बित जान पडता है। कुछ अन्य विद्वान इस पहचान से सहमत नही हैं। इसी सभ्यता के खण्डहरो से पत्थर की छोटी-छोटी गोल चकरियॉ और उनके छेद मे आ सकने वाले नुकीले पत्थर भी मिले है जिन्हे शिवलिग का पूर्व स्वरूप माना जा सकता है। कुल मिलाकर यद्यपि हडप्पा सभ्यता के मिले अवशेषो के आधार पर उस युग मे धार्मिक विश्वास और पूजा-अनुष्ठान होने के साक्ष्य अवश्य मिलते है तथापि किसी देव-विशेष की मूर्ति अभी तक स्वीकार नही की जा सकी है।

वैदिक काल

हडप्पा-सभ्यता लगभग 1500 वर्ष ई० पू० मे समाप्त हो गई थी और मौर्यकाल चौथी शताब्दी ई०पू० मे प्रारम्भ हुआ था। बीच मे लगभग एक हजार साल का वैदिक युग माना जाता है। ऐसा नही कि इस वैदिक युग मे देवताओ का अस्तित्त्व नही था। इन्द्र मित्र (सूर्य) वरुण पृथ्वी आकाश वायु अग्नि आदि प्राकृतिक देवता पूजे जाते थे। ऐसा भी नही कि उस युग मे मूर्तिकला की कोई परम्परा नही थी। वैदिक और पौराणिक

साहित्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि मूर्तिकला तथा अन्य कलाओ की धारा हमारे देश मे कभी नष्ट नही हुई। इस साहित्य मे मूतिकला तथा अन्य कलाओ के अनेक साक्ष्य मिलते हैं। चूँकि हमे इस युग की मूर्तिकला का काइ महत्त्वपूर्ण उदाहरण नही मिला है इसलिए इस काल की मूर्तिकला की विवेचना करना उचित न होगा। ऐसा माना जाता है कि वैदिक युग मे वास्तुकला (भवन-निर्माण कला) तथा मूर्तिकला मे काष्ठ (लकडी) का प्रयोग प्रचलित था। सभवत इसीलिए वह शीघ्र नष्ट हो गई और इसीलिए आज हमे उसके साक्ष्य नही मिलते हे।

फिर भी मौर्यकाल से पहले के कुछ पुरावशेष उत्तर प्रदेश मे इलाहाबाद के निकट कौशाम्बी और गोरखपुर के निकट पिपरहवा से तथा बिहार मे पटना के निकट राजगीर की पहाडियो (प्राचीन गिरिव्रज) और लौरियानन्दनगढ के श्मशान चैत्य से मिले हे। किन्तु इनमे मूर्तिकला के कोई साक्ष्य नही मिले है। केवल लौरियानन्दनगढ के श्मशान चैत्य से एक नग्न स्त्री की आकृति मिली है जो सोने के पत्र पर अकित है। इसे मातृदेवी की आकृति माना गया है।

इसी प्रकार उत्तरी भारत मे तक्षशिला मथुरा कौशाम्बी पाटलिपुत्र आदि अनेक स्थानो से पत्थर की गोल चकरियॉ प्राप्त हुई है जिन पर प्राय सपक्ष पशुओ अथवा ताडवृक्षो के साथ एक नग्न मातृदेवी का भी अकन मिलता है। स्व० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस देवी की पहचान श्री मातृदेवी से की है और इसीलिए उन्होने इन चकरियो को श्रीचक्र कहा हे।

मौर्यकाल

मौर्यकालीन कला की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताऍ थी जैसे–

1 लकडी के स्थान पर भवनो मे ईटो और पत्थरो का प्रयोग तथा मूर्तियो मे भी लकडी के स्थान पर पत्थर का प्रयोग।

2 भवनो की दीवारो तथा मूर्तियो के ऊपर चमकदार पालिश का प्रयोग। इस पालिश के कारण पत्थर के स्थान पर धातु का भ्रम होने लगता था।

मौर्यकालीन कला प्राय दो प्रकार की मानी जाती है–

1 राजकला

राजकला के अन्तर्गत मौर्य-नरेशो द्वारा बनवाए गए महलो स्तूपो चैत्यो और स्तभो की वास्तुकला तथा मूर्तिकला आती है। मौर्य-नरेशो ने अपनी राजधानी पाटलिपुत्र (आधुनिक पटना) मे एक भव्य राजप्रासाद (महल) बनवाया था जिसकी सुन्दरता की प्रशसा चीनी यात्री फाह्यान ने भी की थी। इस महल के अवशेष पटना के निकट बुलन्दीबाग तथा कुम्हरार नामक गॉवो मे मिले है। सम्राट अशोक तथा उसके पौत्र दशरथ ने बिहार की बराबर और नागार्जुनी की पहाडियो मे भिक्षुओ के रहने के लिए गुफाओ का निर्माण करवाया था। इनमे लोमश ऋषि गुफा का प्रवेशद्वार बडा ही सुन्दर और उसका ऊपरी भाग स्तूपो और हाथियो की आकृतियो से अलकृत है।

अशोक ने अपने राज्य मे स्तूप भी बनवाए थे जिनमे कुछ की नीवे ही मिल सकी है। हॉ अशोक द्वारा स्थापित अनेक प्रस्तर-स्तभ आज भी मौजूद है। इन स्तभो को अशोक की लाट भी कहा जाता है। ये स्तभ तो गोल सादे और सपाट है परन्तु ऊपर एक अथवा चार सिह अथवा हाथी एक बैल अथवा एक सिह की आकृति जोडी गई है। सॉची (म०प्र०) और सारनाथ (वाराणसी उ०प्र०) मे चार-चार सिहो की आकृतियो से अशोक की लाटे सजाई गई थी। इन लाटो (स्तभो) की सबने भूरि-भूरि प्रशसा की है। सारनाथ वाली लाट के शीर्ष मे नीचे उलटा कमल उसके ऊपर गोल घेरा जिसमे चार दिशाओ मे एक-एक चक्र बना है। इन चक्रो के बीच मे एक सिह एक हाथी एक घोडा और एक बैल की आकृति बनी है। इस घेरे के ऊपर चारो दिशाओ

मे अपना मुँह खोलकर गर्जना करते हुए चार सिह बनाए गए है। ये सिह अगले पैरो से खडे है किन्तु पिछले पैरो से पीठ मे पीठ सटाकर बैठे है । सारनाथ वाला यह सिहशीष स्वतत्र भारत की राजमुद्रा मान लिया गया है। इसे भारत के सिक्को नोटो सरकारी दस्तावेजो तथा कायालयो की पटिटकाओ पर अकित किया जाता है। भारत के तिरगे झण्डे पर इसी शीर्ष का चक्र बना रहता है। इसी को अशोक चक्र कहा जाता है।

चूँकि मोर्यकालीन राजकला मे मानव आकृति नही बनाई गई थी इसलिए उसमे किसी देव-मूर्ति का प्रश्न ही नही उठता है।

2 लोककला

मौर्य शुगकाल मे लोककला अपने विकास के चरम शिखर पर थी। मूर्तियो के अतिरिक्त इस युग की लोककला के अन्तर्गत बडी-बडी आदमकद यक्ष-यक्षियो की पत्थर की मूर्तियॉ उल्लेखनीय है। इनमे परखम (मथुरा) से मिली मणिभद्र यक्ष की मूर्ति बारोद (मथुरा) से मिली यक्षमूर्ति झीग का नगरा (मथुरा) से मनसा देवी यक्षी पटना सग्रहालय की यक्षमूर्ति दीदारगज (पटना) की चामरधारणी यक्षीमूर्ति पवाया (गूजरीमहल सग्रहालय ग्वालियर) की मणिभद्र यक्षमूर्ति और विदिशा-सग्रहालय की यक्ष-यक्षी मूर्तियॉ विशेष रूप से गिनाई जा सकती है। ये सभी मूर्तियॉ विशालकाय है। यक्ष-मूर्तियो के शीश पर पगडी कधो और भुजाओ पर लहराता उत्तरीय कमरबन्ध तथा कण्ठा हार कर्णफूल भुजबन्ध (बाजूबन्द) और कलाई मे कगन आदि आभूषण है। यक्षियो की कमर पर करधनी (मेखला) और पैरो मे पायल भी है। इन्ही यक्ष-मूर्तियो से प्रेरणा लेकर भारतीय मूर्तिकारो ने आगे चलकर बुद्ध बोधिसत्त्व और जैन तीर्थकरो की विशाल मूर्तियॉ गढी और फिर कुषाण-गुप्तकाल मे शारीरिक समानुपात मे मानव मूर्तियो को बनाया। भारतीय मूर्तिकला के विकास मे इन यक्ष-मूर्तियो का बडा महत्त्व है।

यक्षपूजा की परपरा भारत मे बडी पुरानी है जो किसी न किसी रूप मे आज भी देश के कोने-कोने मे पाई जाती है। भारतीय साहित्य मे विशेषकर बौद्ध साहित्य मे यक्षो की सूचियॉ मिलती है। प्रत्येक नगर अथवा गॉव का अपना एक यक्ष होता था जो उस नगर अथवा गॉव की रक्षा करता था। आज भी जक्ख' अथवा जखैया' के नाम से ये गॉवो मे पूजे जाते हैं। इन्हे कही-कही बीर बरम्ह' अथवा बरम बाबा' या बीर भी कहते है। वाराणसी मे लहुराबीर और बुल्लाबीर की बडी मान्यता है। वहॉ डौडियाबीर कर्मनबीर आदि अन्य लोकदेवता भी पूज्य है।

प्राय प्रत्येक गॉव की आबादी के बाहर आज भी यक्ष-परम्परा की माई (माता या देवी माता) अथवा बरम बाबा के थान (अधिष्ठान या चबूतरा) होते है। किसी विशेष तीज-त्योहार अथवा जन्म या विवाह जैसे सामाजिक उत्सव के अवसर पर इनकी विशेष पूजा होती है। वर्ष मे किसी विशेष माह और तिथि पर इन लोक-देवताओ के स्थान पर मेले भी लगते है। पहले इन मेलो के अवसरो पर इन लोक-देवताओ की शोभा यात्रा भी निकाली जाती थी जिसे जात्रा' अथवा जत्ता कहते थे।

वस्तुत एक समय लोकदेवो मे यक्षो का बडा महत्त्व था। आर्य देवताओ के सम्पर्क मे आने से पूर्व यक्षपूजा ही सर्वमान्य थी। मौर्यकाल की लोककला मे मिलने वाली यक्ष-मूर्तियॉ इस बात की पुष्टि करती है।

बौद्ध साहित्य मे चार महाराज या बडे यक्षो की पूजा का उल्लेख आता है। ये है उत्तर मे वैश्रवण (कुबेर) पूर्व मे धृतराष्ट्र दक्षिण मे विरुढक और पश्चिम मे विरूपाक्ष। इनमे कुबेर यक्षो के अधिपति माने जाते थे। धन के देवता होने के कारण कुबेर की लोकप्रियता बहुत थी। शायद इसीलिए लक्ष्मी (धनदेवी) कुबेर की प्रिया कहलाई।

शुग-सातवाहन काल

शुग-सातवाहन काल मे भारतीय मूर्तिकला का सर्वाग स्वरूप सामने आया। इस युग मे बौद्ध धर्म का

प्रचार-प्रसार अधिक होन क कारण भरहुत सॉची (मध्य प्रदेश) सारनाथ (उत्तर प्रदेश) बोधगया (बिहार) तथा अमरावती (आन्ध्र प्रदश) आदि स्थाना पर विशाल बौद्ध स्तूपो का निर्माण किया गया। इन स्तूपो की तोरण पटिटकाओ स्तभो तथा वेदिका या बाढ के स्तभो पर पत्थर के एक ओर उकेरकर मूर्तिकला ऑकी गई। इसे उत्कीण मूतिकला कहते हे। इसमे एक ओर तो उभरी हुई मूर्तियॉ दिखाई देती है किन्तु फलक के पीछे देखने पर सादा या सपाट रहता है या फिर दूसरी ओर दूसरी मूर्तियो को उकेर दिया जाता था जैसे आज के सिक्को के दोनो ओर दो प्रकार के अलग-अलग अकन होते है।

शुगकाल म बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओ को तथा उनके पूर्व जन्म की जातक कथाओ को अकित करके कथात्मक शैली का विकास हुआ। इस शैली के अन्तर्गत एक ही फलक मे एक कहानी के अनेक दृश्य एक साथ उकेर दिए गए थे। जातक कथाओ मे छदन्त जातक महाकपि जातक वेस्सन्तर जातक ऋषि शृग जातक आदि का तथा बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओ मे उनका जन्म तपस्या के लिए गृह-त्याग (महाभिनिष्क्रमण) बुद्धत्त्व की प्राप्ति (सम्बोधि) प्रथम उपदेश (प्रथम धर्मचक्र-प्रवर्तन) और मृत्यु (महापरिनिर्वाण) का अकन उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त यक्ष-यक्षियॉ नाग-नागिनियॉ किन्नर-अप्सराऍ राजा-रानी सेवक-सेविकाऍ तथा विभिन्न वर्गो के नर-नारी काल्पनिक पशु-पक्षी (ईहामृग) हरे-भरे पुष्पित-पल्लवित वृक्ष लताऍ-कल्पवृक्ष झरने नदियॉ पर्वत वन-उपवन आश्रम तपोवन तथा ऐतिहासिक नगरद्वार भी अकित है।

स्त्री-पुरुषो के वस्त्राभूषण केश-विन्यास राजाओ के जलूस युद्ध करती चतुरगिणी सेनाऍ किलेबन्दी महलो-झोपडियो की झॉकी नृत्य-सगीत वन-विहार तथा पान-गोष्ठी आदि के दृश्य भी इन स्तूपो पर अकित किए गए है। वस्तुत शुग-सातवाहन कालीन इन स्तूपो पर तत्कालीन समाज की सजीव झॉकी दिखाई देती है।

जहॉ तक देव-मूर्तियो की बात है इस काल की बौद्धकला मे बुद्ध को मानव के रूप मे अकित नही किया जाता था। बौद्ध धर्म की प्राचीन हीनयान विचारधारा मे ऐसी मान्यता थी कि जिसे बुद्धत्त्व या मुक्ति प्राप्त हो गयी हो या जो बुद्ध हो गया हो उसे पुन आकृति या मूर्ति के बन्धन मे नही डालना चाहिए। इसीलिए इस काल मे बने बौद्ध स्तूपो चैत्यो विहारो अथवा बोधिघरो की उत्कीर्ण मूर्तिकला मे बुद्ध को प्रतीको के रूप मे दिखाया गया था। उस युग के कलाकार ने ऐसे कई प्रतीको की सर्जना की जिनसे तथागत बुद्ध की उपस्थिति दर्शायी गई। बुद्ध के जन्म को प्रदर्शित करने के लिए कलाकार ने पद्म या कमल की कल्पना की। इसी प्रकार उनके बुद्धत्त्व प्राप्त करने की घटना के लिए बोधिवृक्ष बनाया गया उनके प्रथम उपदेश (प्रथम धर्मचक्र-प्रवर्तन) को चक्र बनाकर दिखाया गया जिसे प्राय धर्मचक्र कहा जाता है और उनके देहावसान (महापरिनिर्वाण) को स्तूप के रूप मे अकित किया गया। चूॅकि स्तूप एक प्रकार के स्मारक (समाधि) थे इसलिए उनके माध्यम से उनकी मृत्यु दर्शायी गई थी। छत्र लगे आसन तथा पद-चिह्नो के माध्यम से भी बुद्ध की उपस्थिति अकित की गयी थी।

इस युग की बौद्ध मूर्तिकला मे ब्रह्मा इन्द्र लक्ष्मी सूर्य और मार (कामदेव) तथा लोक-देवताओ मे अप्सराऍ विद्याधर किन्नर यक्ष नाग गन्धर्व आदि अकित किए जाने लगे थे। सॉची भरहुत बोधगया अमरावती आदि स्थानो के स्तूपो पर इन देवी-देवताओ के अकन मिलते है। एक लक्ष्मी को छोडकर ये सभी देवी-देवता बुद्ध की उपासना और सेवा मे तल्लीन दिखाए गए है। किन्तु इनमे अकेले लक्ष्मी को ही बुद्ध-प्रतीको के समान स्वतत्र और सपूज्य दिखाया गया है। लक्ष्मी को छत्र चामर और अभिषेक जैसे राज-चिह्नो से प्रतिष्ठित दिखाया गया है। ब्रह्मा और इन्द्र के समान उसे किसी भी फलक मे बुद्ध की सेवा मे प्रदर्शित नही किया गया है।

ब्रह्मा तथा इन्द्र को शीश पर उष्णीष धारण किए सदैव बुद्ध के निकट दिखाया गया है। बोधगया मे बोधिवृक्ष के नीचे तपस्या करते समय और स्वर्ग मे अपनी माता मायादेवी को उपदेश देने के बाद साकाश्य

मे भूमि पर उतरते समय दोनो बुद्ध के साथ दिखाई देते हे। सॉची-शिल्प मे ब्रह्मा को प्राय वस्त्र को ऊपर उछालकर या हिलाकर बुद्ध की प्रशसा करते अकित किया गया है। तपस्या के बीच मार (कामदेव) की पराजय पर और साकाश्य मे बुद्धावतरण पर उन्हे इसी रूप मे प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार वेस्सन्तर जातक के दृश्य मे इन्द्र को चोडा मुकुट पहने ओर हाथ मे वज्र धारण किए दिखाया गया था। वज्र इन्द्र का आयुध है और यह लक्षण सर्वप्रथम सॉची के इस दृश्याकन मे प्रकट होता है। इन्द्र को वैदिक साहित्य मे शक्र भी कहा गया है। ठीक इसी प्रकार बौद्ध साहित्य मे भी इन्द्र को सक्क ओर बजिरहत्था शची का उनकी पत्नी और एरावण (ऐरावत) को उनका हाथी बताया गया है।

लक्ष्मी का मुख्य लक्षण पद्म या कमल है इसीलिए उन्हे पद्मा और कमला भी कहा जाता है। उनका एक और स्वरूप प्रसिद्ध है गजलक्ष्मी का। इसमे पद्म पर बैठी या खडी देवी के अगल-बगल प्राय कमलो पर खडे दो हाथी अपनी सूँड मे घट लिए देवी को स्नान (अभिषेक) कराते दिखाए जाते है। इस युग के शिल्प मे लक्ष्मी के ये दोनो रूप प्रकट हो चुके थे। शुगकाल मे अश्वरथ पर सवार सूर्य की मूर्तियॉ भी उकेरी जाने लगी थी। सर्वप्रथम द्वितीय शती ई०पू० मे बने महाराष्ट्र मे भाजा नामक स्थान के एक बौद्ध चैत्यगुहा के बरामदे की बाहरी दीवार पर चार अश्वो से जुते रथ पर सूर्य का अकन पाया गया है। उदयगिरि-खण्डगिरि (उडीसा) तथा बोधगया के भी उत्कीर्ण शिल्प मे सूर्य को उकेरा गया था।

बौद्ध साहित्य मे मार नामक देवता वैदिक देवता कामदेव जैसा ही है। जब भी कभी कोई तपस्या करता है मार अपनी रूपवती कन्याओ तथा सेना के साथ उसका तप भग करने पहुॅच जाता है। बोधगया मे जब पीपल के वृक्ष के नीचे सिद्धार्थ तपस्या कर रहे थे तब इसी मार ने उनकी तपस्या मे विघ्न डालने के लिए बडा उत्पात मचाया। परन्तु बोधिसत्त्व सिद्धार्थ पर उसका कोई प्रभाव न पडा और वह पराजित होकर वापस हो गया। सॉची-स्तूप की एक तोरण-पटिटका पर पराजित होकर भागती मार-सेना का अकन है। इसमे मार को धनुष धारण किए अपने रथ पर दिखाया गया है। वैदिक देवता कामदेव का आयुध भी धनुष माना जाता है।

शुग-कुषाण काल

शुग-कुषाण काल श्रीमदमगवदगीता के भक्ति-आन्दोलन से पूर्णरूपेण प्रभावित था जिसका प्रभाव तत्कालीन सभी धर्मो पर स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है। मथुरा विदिशा तथा नागरी से मिले अभिलेख इस बात के साक्षी हैं कि उस युग मे इस क्षेत्र मे भागवतधर्म का बोलबाला था। भागवतधर्म मे वासुदेव (कृष्ण) और सकर्षण (बलराम) पूजे जाते थे। मथुरा से बलराम तथा वृष्णी पचवीरो की मूर्तियॉ मिली है। शक क्षत्रप सोडाष के शासनकाल के एक द्वार-स्तभ लेख मे वासुदेव के मन्दिर मे तोरण तथा वेदिका बनवाने का तथा मोरा कुएँ की जगत वाले लेख मे वृष्णीना पचवीरानाम की मूर्तियॉ स्थापित करने का उल्लेख मिलता है। ये पचवीर थे– सकर्षण (बलराम) वासुदेव (कृष्ण) प्रद्युम्न साम्ब और अनिरुद्ध। इन्ही पचवीरो से आगे चलकर पचपीर की परम्परा विकसित हुई जिसे सूफी सन्तो द्वारा अधिक प्रचारित किया गया था। कुषाणकाल मे बलराम विष्णु सूर्य स्कन्द ब्रह्मा कुबेर इन्द्र शिवलिग शिव-पार्वती लक्ष्मी गणेश सप्तमातृका दुर्गा तथा कृष्णाख्यान वाले मूर्ति-फलको का अकन मथुरा मे किया जाने लगा था। विदिशा के निकट तक्षशिला-नरेश के यवन दूत हेलियोडोरस ने विष्णु-मन्दिर के सामने गरुड की प्रतिमा वाले शीर्ष का एक स्तभ स्थापित किया था। इस स्तभ पर उसने एक अभिलेख भी अकित करवाया था जिसमे उसने अपने को भागवत तथा देवता को देवाधिदेव वासुदेव और इस स्तभ को गरुडध्वज कहा है। विदिशा से ही भागवत गौतमीपुत्र द्वारा भगवत-मन्दिर के समक्ष गरुडध्वज स्थापित किए जाने का उल्लेख वाला एक स्तभ-लेख मिला है। इसी प्रकार नागरी (राजस्थान) नामक स्थान से भागवत पराशरिपुत्र सर्वतात का एक लेख मिला है जिसमे नारायण वाटिका यानी विष्णु-मन्दिर मे पूजाशिला की स्थापना का उल्लेख है।

भक्ति-आन्दालन का प्रभाव जेन धम पर भी पडा। मथुरा मे ककाली टीले की खुदाई से वहॉ शुगकालीन जैन स्तूप के अवशेष मिले हें जिनमे उस युग की जैन कला-फलक भी है। बाद मे वही पर कुषाणकालीन स्तूप का भी निमाण किया गया था। मथुरा से कई पत्थर के चौकोर उत्कीर्ण फलक मिले है जिन पर मागलिक चिह्न उकेरे हुए है। जैन धर्म मे अष्टमागलिक चिह्नो का बडा म्हत्त्व था। इनमे स्वस्तिक श्रीवत्स नन्दिपद कलश पुष्पदाम वर्द्धमान मीन-मिथुन वैजयन्ती आदि मुख्य थे। किसी-किसी फलक पर बीचो-बीच पदमासन मे बेठे तीथकर की प्रतिमा भी बनी है। इन फलको को आयागपटट अर्थात पूजापटट कहा जाता है। ये आयागपटट जैन पूजा के प्रथम सोपान कहे जा सकते है। बाद मे जैन तीर्थकरो की स्वतत्र मूर्तियॉ गढी जाने लगी थी। जैन तीर्थकरो की प्रतिमाऍ सर्वप्रथम मथुरा मे ही गढी गई थी। मथुरा मे पार्श्वनाथ नेमिनाथ तथा महावीर के साथ-साथ सैकडो जैन तीर्थकर-प्रतिमाऍ स्थानक (कायोत्सर्ग) तथा आसनस्थ (पद्मासन) मुद्रा मे पाई जा चुकी है। इस युग मे मथुरा मे ऑकी गई जैन तीर्थकरो की मूर्तियॉ तीन कोटि की थी–

(1) पालथी मारकर ध्यानमुद्रा मे बेठी मूर्तियॉ
(2) कायोत्सर्ग मुद्रा मे खडी मूर्तियॉ
(3) एक ही पत्थर के फलक पर पीठ से पीठ जोडकर खडी चार मूर्तियॉ।

कुषाणकाल से तीर्थकरो के वक्ष पर श्रीवत्स का लाक्षन उकेरने की परम्परा भी सबसे पहले मथुरा के कलाकारो ने ही डाली। इस लाछन से जैन तथा बौद्ध मूर्तियो मे भेद करना सरल हो गया था। जैन धर्म की प्राय सभी खडी प्रतिमाऍ नग्न है।

बौद्ध धर्म भक्ति-आन्दोलन से अछूता न रह सका। सर्वास्तिवादी या हीनयान विचारधारा मे बुद्ध की मानव-मूर्ति बनाना वर्जित था। लेकिन कुषाणकाल मे महायानी बौद्ध-भक्तो ने विकासवादी विचारो से प्रेरित होकर बुद्ध की मानवमूर्ति बनवा ली। उनका तर्क था कि जब हमारे सामने बुद्ध है ही नही तब फिर दीक्षा मे 'बुद्ध शरण गच्छामि कहने का क्या अर्थ है? बुद्ध सामने हो तभी हम उनकी शरण मे जा सकते है। वस्तुत ब्राह्मण धर्मावलम्बी और जैन धर्मावलम्बी भक्तो द्वारा अपने-अपने इष्टदेवो की सुन्दर-सुन्दर मूर्तियॉ देखने के बाद बौद्ध अनुयायी भी अपने को न रोक सके। ये लोग महासाघिक अथवा महायानी कहलाए और इन्होने पूर्व परम्परा वाले सर्वास्तिवादी बौद्धो को हीनयानी बताया।

कुषाण सम्राट कनिष्क महायानी बौद्ध विचारधारा का प्रबल समर्थक था। उसके प्रशासनकाल मे मथुरा से लेकर पश्चिमोत्तर भारत के गधार क्षेत्र तक महायानी बौद्ध विचारधारा का प्रचार हुआ तथा अनेक स्तूप और बुद्ध-बोधिसत्त्व की विशाल प्रतिमाऍ बनाई गई।

कुषाणकालीन मथुरा कला की विशेषताऍ

1 जैन तीर्थकर बुद्ध बोधिसत्त्व तथा कुछ ब्राह्मण धर्म के देवी देवताओ की मूर्तियो का पहली बार अकन
2 सफेद चित्तीदार लाल बलुए पत्थर का प्रयोग
3 झीने सलवटोदार वस्त्रो का प्रयोग
4 आभूषणो मे हल्कापन
5 मानव आकृतियो मे सुडौलता
6 कुछ मूर्तियो पर गाधार कला का प्रभाव
7 बुद्ध तथा अन्य देव-मूर्तियो मे उनके अगो की सुन्दरता के स्थान पर मुख की भाव-भगिमाओ का स्पष्ट अकन
8 अनेक देवी-देवताओ का पहली बार अकन जैसे विष्णु और उनके कुछ अवतार दुर्गा महिषमर्दिनी आदि।

गधार क्षेत्र मे कुषाण सम्राट कनिष्क के प्रयासो से बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। इसके

फलस्वरूप वहाँ बौद्ध धर्म-सम्बन्धी मूर्तिकला का भी विकास हुआ। उस क्षेत्र मे यूनानी कलाकारो ने एक से बढकर एक बुद्ध की स्वतत्र मूर्तियॉ बनाई तथा उनके जीवन की विभिन्न घटनाओ को फलका पर उत्कीर्ण किया। गधार क्षेत्र मे सिकन्दर के बाद से यूनानी लोग बस गए थे और वे भारतीय धर्म तथा जीवन-पद्धति से पूर्णरूपेण परिचित हो गए थे। तक्षशिला पुष्कलावती नगरहार स्वातघाटी उडिडयान कपिशा बमियान आदि स्थानो से कुषाणकालीन बौद्ध मूर्तियॉ पाई गई हे।

गाधार कला की विशेषताएँ

1 गाधार कला की मुख्य विषय-वस्तु बौद्ध धर्म है। यूनानी कलाकारो ने केवल बुद्ध बोधिसत्त्व जातक कथाएँ बुद्ध-जन्म सम्बोधि धर्मचक्रप्रवर्तन महापरिनिर्वाण बुद्धमाता मायादेवी गौतमीप्रजापति ब्रह्मा शक्र मार कुबेर यक्ष किन्नर गधर्व आदि के अकन किए। इनमे जैन तथा ब्राह्मण धर्म-सम्बन्धी किसी देवी या देवता का अकन अत्यन्त विरल है।

2 गधार क्षेत्र मे भूरे रग का स्लेटी पत्थर सर्वसुलभ था। तराशने के लिए यह मुलायम भी होता है। इसलिए गाधार कला मे इसी पत्थर का प्रयोग किया गया था। कही-कही चूने और बालू को मिलाकर प्लास्टर (स्टको) से भी मूर्तियॉ बनाई गई थी।

3 गाधार कला मे मूर्तियो के शरीर और उनके वस्त्राभूषण यूनानी परम्परा से प्रभावित है जबकि उनके बैठने के आसन तथा मुद्राएँ भारतीय हैं। सलवटोदार वस्त्र यूनानी कला की विशेषता है और ऐसे वस्त्र गाधार कला मे बनाए गए बुद्ध बोधिसत्त्व तथा मायादेवी की मूर्तियो पर देखे जा सकते है।

4 बुद्ध के शीश पर घुँघराले बाल तथा उनके मूँछे दिखाई गई थी जबकि भारतीय परम्परा मे प्राय उनके मूँछे नही बनाई जाती थी।

5 गाधार कला मे शरीर को सुन्दर बलिष्ठ और आकर्षक बनाने पर अधिक जोर दिया गया था किन्तु मूर्तियो के चेहरो पर भाव-शून्यता थी।

मथुरा कला एव गाधार कला मे अन्तर

मथुरा तथा गाधार कला मे अन्तर था जिसे समझना आवश्यक है।

1 मथुरा-कला मे लाल बलुए पत्थर से मूर्तियॉ बनाई गई थी जबकि गाधार कला मे राखी के रग वाले स्लेटी पत्थर पर मूर्तियॉ गढी गई थी।

2 मथुरा-कला मे ब्राह्मण जैन तथा बौद्ध तीनो धर्मो के देवी-देवताओ की मूर्तियॉ ऑकी गई थी जबकि गाधार कला मे मुख्यत बौद्ध धर्म के देवी-देवता ही उकेरे गए थे। गाधार कला वस्तुत बौद्ध कला थी।

3 मथुरा-कला मे बुद्ध की चादर (सघाटि) झीने वस्त्र की केवल बाएँ कधे पर दिखाई गई थी जबकि गाधार कला मे यह मोटे वस्त्र की थी और दोनो कधो पर पडी दिखाई गई थी।

4 मथुरा-कला मे बुद्ध के मूँछे नही बनाई गई थी जबकि गाधार कला मे प्राय बुद्ध की मूर्तियो पर मूँछे अकित की गई थी।

5 मथुरा-कला मे शारीरिक सौन्दर्य पर उतना ध्यान नही दिया गया था जितना मुख की भाव-भगिमाओ को स्पष्ट करने पर ध्यान दिया गया था जैसे ध्यान मुद्रा शान्त मुद्रा अथवा स्मिति (मुस्कान युक्त) मुद्रा आदि। इसके विपरीत गाधार कला मे मूर्तियो के शारीरिक सौन्दर्य और अगो के समानुपात पर अधिक जोर दिया गया था उनके मुख प्राय भावशून्य थे। इसीलिए मथुरा की मूर्तियॉ सजीव जान पडती है जबकि गाधार कला की मूर्तियॉ निर्जीव।

शुग-कुषाण काल मे दक्षिण भारत के आन्ध्र प्रदेश मे अमरावती और उसके बाद नागार्जुनकोण्ड मे भी

बोद्ध स्तूप बनाए गए थ जिनके फलको पर बुद्ध की मूर्तियॉ उकेरी गई थी। बुद्ध की स्वतत्र मूर्तियॉ भी बैठी तथा खडी मुद्राओ मे गढी गई थी। इन मूर्तियो पर मथुरा-कला का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पडता है। कुछ मूर्तियो पर गाधार कला का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। ये मूर्तियॉ काले पत्थर की बनाई गई थी।

अमरावती-कला की बुद्ध-मूर्तियो के केश शख के घूँघर के समान घुँघराले है। पहले गाधार कला के प्रभाव से बुद्ध के दोनो कधो पर सघाटि दिखाई गई थी परन्तु बाद मे मथुरा-कला के प्रभाव से केवल बाऍ कधे पर ही सघाटि रखी गई। बाऍ हाथ मे सघाटि पकडे हुए बुद्ध को दिखाना अमरावती कला-शैली की अपनी विशेषता है।

गुप्तकाल

गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल कहा जाता है। भारत मे उस समय तक शक पह्लव कुषाण आदि विदेशियो का शासन समाप्त हो चुका था और गुप्त वश ने अपने स्वतत्र देश मे स्वच्छ और सुव्यवस्थित शासन की स्थापना की। इससे समाज मे शान्ति स्थापित हुई व्यापारिक प्रगति से सम्पन्नता बढी और देशवासियो मे राष्ट्रीयता की भावना जागी। राजनीतिक स्थिरता और सामाजिक समृद्धि से सस्कृति का चतुर्दिक विकास हुआ। साहित्य सगीत कला धर्म दर्शन विज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रो मे व्यापक सरचना हुई। प्रत्येक क्षेत्र मे नए-नए मानदण्ड स्थापित हुए। कला तथा मूर्तिकला के क्षेत्र मे भी कुछ मूलभूत नियम निर्धारित हुए और फिर अनेक शिल्प-शास्त्रो की रचना हुई। गुप्तकालीन शिल्पग्रथो मे विष्णुधर्मोत्तर पुराण मत्स्यपुराण और बृहत्सहिता प्रमुख है। अन्य कई पुराणो मे भी शिल्प-सम्बन्धी सामग्री पाई जाती है। मध्यकाल मे रचे गए शिल्प-ग्रन्थो मे मानसोल्लास अपराजितपृच्छा समरागणसूत्रधार रूपमण्डन शिल्परत्न आदि उल्लेखनीय है। आगे चलकर इन्ही शिल्पशास्त्रो की मान्यताओ और विधानो को ध्यान मे रखकर कलाकारो ने मूर्तियो को गढना प्रारम्भ किया। शास्त्रानुकूल आचरण करने के कारण ही गुप्तयुग को शास्त्रीय युग भी कहा जाता है।

गुप्त-नरेश परमभागवत थे इसलिए गुप्तकाल मे भागवत धर्म का विकास स्वाभाविक था। भागवत धर्म के केन्द्र विदिशा तथा मथुरा मे पहले से ही थे। इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत सकर्षण (बलराम) वासुदेव (कृष्ण) साम्ब प्रद्युम्न और अनिरुद्ध की पूजा की जाती थी। गुप्त-युग मे बलराम और कृष्ण को विष्णु का अवतार होने से स्वय विष्णु की प्रतिमाओ का अकन विकसित हो गया। विष्णु के साथ-साथ शिव सूर्य ब्रह्मा गणेश स्कन्द कुबेर लक्ष्मी पार्वती दुर्गा सप्तमातृकाऍ तथा गगा-यमुना आदि अनेक ब्राह्मण धर्मावलम्बी देवी-देवताओ का सुरुचिपूर्ण अकन किया गया। बुद्ध-बोधिसत्त्व और जैन तीर्थकरो की प्रतिमाऍ भी बराबर ऑकी जाती रही। मथुरा मे एक साथ तीनो धर्मो की त्रिवेणी बह रही थी। स्पष्ट है कि गुप्तकाल धार्मिक सहिष्णुता का काल था।

जैसा कि पहले बताया गया है कि इस युग मे मूर्तिकला से सम्बन्धित अनेक नए-नए विधान वाले शिल्पशास्त्र रचे गए थे। उन शिल्पशास्त्रो का प्रभाव तत्कालीन मूर्तिकला पर पडना स्वाभाविक था। गुप्तकालीन मूर्तिकला शुग–कुषाण काल की मूर्तिकला से अधिक विकसित ओर सुन्दर थी। शुगकाल की उत्कीर्ण कला मे स्थूलता तथा चपटापन था कुषाणकालीन मूर्तिकला मे मासलता और कामुकता का पुट था। किन्तु गुप्तकाल की मूर्तिकला मे इन कमियो को दूर कर लिया गया था।

गुप्तकालीन मूर्तिकला की विशेषताऍ

1 देवत्व की भावना

गुप्तकालीन मूर्तिकला मे कलाकारो के दृष्टिकोण मे प्रशसनीय परिवर्तन हुआ था। वे मूर्ति के शरीर को सुन्दर बनाने के साथ-साथ उसमे देवता का स्वरूप भी प्रतिबिम्बित करते थे।

2 रूप और भाव का मेल

गुप्तकालीन मूर्तिकार मूर्तियो को रूपवान बनाने मे तो सफल था ही वह मुखमुद्रा मे ह्रदय के भाव अकित करने मे भी प्रवीण था। इस प्रकार शारीरिक सौन्दर्य और आत्मिक भावो का अनूठा सगम गुप्तकालीन मूर्तियो मे सभव हुआ था।

3 निर्मल सौन्दर्य

गुप्तकालीन मूर्ति के अग न अब शुगकाल जेसे चपटे और स्थूल थे और न कुषाणकाल जैसे मासल। उनमे अब सुडौलता छरहरापन कोमलता और सजीवता सी जान पडन लगी थी। सुकोमल अगो पर पहले जैसे भारी भरकम न वस्त्र थे और न आभूषण। झीने हल्के और पारदर्शी वस्त्र तथा एकावली या इकहरे कगन ही शरीर की शोभा बढाते थे।

4 नए अग-प्रतिमान

रूप और सौन्दर्य की पराकाष्ठा पाने के लिए गुप्तकाल मे विभिन्न अगो के लिए नए-नए प्रतिमान निर्धारित किए गए थे। बलिष्ठ शरीर के स्थान पर अब सुकुमार शरीर बनाने का लक्ष्य था। अगो की सुन्दरता और सजीवता के लिए अण्डे के आकार का मुख धनुष के आकार की भौहे खजन पक्षी अथवा हिरनी जैसी चचल ऑखे तोते के समान नुकीली नाक बिम्ब फल के समान लाल होठ शख की रेखाओ जैसी ग्रीवा (गर्दन) केले के वृक्ष जैसी जघाएँ मोटे स्थूल नितम्ब सिह जैसी पतली कटि (कमर) और घट के समान स्तन बनाने के नए मानदण्ड भारतीय मूर्तिकारो के लिए निर्धारित किए गए थे।

5 आसन एव मुद्राएँ

शारीरिक सौन्दर्य मे अभिवृद्धि के लिए गुप्तकाल मे विषय अथवा परिस्थिति के अनुकूल मूर्ति के खडे होने बैठने अथवा लेटने की स्थिति मे बनाने के लिए हाथो तथा मुख की विभिन्न मुद्राओ का प्रयोग भी किया गया था। इन आसनो तथा मुद्राओ का विवरण अगले अध्याय मे दिया जा रहा है।

गुप्तकाल मे मूर्तिकला का चतुर्दिक विकास हुआ था जिसके फलस्वरूप कई ऐसे केन्द्र बन गए थे जहॉ पर मूर्तियॉ बहुत बडी सख्या मे गढी जाती थी। प्राय इन केन्द्रो पर गढी गई मूर्तियो मे उन केन्द्रो की अपनी कुछ न कुछ छाप अलग रहती थी। उत्तर प्रदेश मे गुप्तकालीन मूर्तिकला के निम्न केन्द्र उल्लेखनीय है–

मथुरा

मथुरा शुग-कुषाण काल से ही मूर्तिकला का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। वहॉ पहले से ही जैन तीर्थकरो बुद्ध बोधिसत्त्वो बलराम विष्णु आदि अनेक देवताओ की मूर्तियॉ बनाई जा रही थी। गुप्तकाल मे भी यहॉ एक से बढकर एक सुन्दर बुद्ध-मूर्तियो का निर्माण किया गया था। आदमकद समभग छरहरे शरीर और मुस्कराती अथवा शान्त मुद्रा वाली बुद्ध प्रतिमाएँ बेजोड हैं। कुषाणकालीन और गुप्तकालीन बुद्ध मूर्तियो मे अन्तर है–

कुषाण काल	गुप्तकाल
1 सादा प्रभामण्डल और हाथी के नख से चिह्नित किनारा	1 पदमदलो मालाओ मनको आदि विभिन्न अलकरणो से युक्त प्रभामण्डल।
2 मासल बलिष्ठ गात	2 छरहरा गात
3 मुण्डित केश	3 कुचित केश
4 केवल बाएँ कधे पर सघाटि	4 दोनो कधो पर सघाटि
5 सादी सघाटि अथवा मोटी सलवटे	5 महीन सलवटो वाली सघाटि
6 गोल और पूरे खुले नेत्र	6 पद्मदल जैसे लम्बे और अधखुले नेत्र।

बुद्ध के अलावा मथुरा मे गुप्तकाल मे शिवलिग मुखलिग शिव-पार्वती तथा विष्णु की अनेक सुन्दर-सुन्दर प्रतिमाएँ भी गढी गई थी।

सारनाथ

वाराणसी के निकट सारनाथ मे गुप्तकाल मे चुनार के बलुआ पत्थर पर कलाकारो ने बुद्ध की अत्यन्त सुन्दर मूर्तियो का अकन किया था। इस केन्द्र पर गढी गई मूर्तियो पर कई नए तत्त्व दिखाई देते है। मथुरा शैली जैसे गोल अलकृत प्रभामण्डल तो हैं पर उसमे दोनो ओर एक-एक मालाधारी विद्याधर का अकन सारनाथ केन्द्र की विशेषता है। मथुरा की महीन सलवटोदार सघाटि के स्थान पर सारनाथ की बुद्ध-मूर्तियो की सघाटि सपाट और पारदर्शी है। बुद्ध की मूर्तियो मे भूमिस्पर्श मुद्रा तथा धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा का अकन भी सारनाथ कला केन्द्र ने ही पहली बार गुप्तकाल मे किया था। धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा वाली मूर्ति मे आसन के नीचे बीच मे एक चक्र तथा उसके अगल बगल हाथ जोडे उपासको का अकन किया गया है। सारनाथ केन्द्र का प्रभाव पूर्वी भारत की मूर्तिकला पर पडा था।

अहिच्छत्रा

अहिच्छत्रा के ध्वसावशेष वर्तमान बरेली जनपद की ऑवला तहसील मे रामनगर के निकट पाए गए है। गुप्तकाल मे यह वास्तुकला तथा मूर्तिकला का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। अहिच्छत्रा मे अब भी एक ऊँचा टीला है जिसमे नीचे गुप्तकालीन ईटे दिखाई देती है। ऊपर एक विशाल शिव-मन्दिर था। शिवलिग अब भी मौजूद है। इस मन्दिर की दीवारो पर उत्कीर्ण मिटटी के फलक जडे हुए थे। ऐसे मृत्खण्ड तथा प्रवेशद्वार पर आदमकद नदी-देवता गगा और यमुना की मृण्मूर्तियॉ अब भारत के नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय सग्रहालय की अनुपम निधि है। नदी-देवताओ की मूर्तियॉ पहली बार गुप्तकाल मे ऑकी गई थी। गुप्तकालीन मन्दिरो के प्रवेशद्वार के दोनो पक्खो मे नीचे एक ओर मकर पर खडी गगा तथा दूसरी ओर कच्छप पर खडी यमुना की मूर्तियॉ लगाई जाती थी। गगा नदी के सन्दर्भ मे तुलसी ने रामचरितमानस मे कहा है कि गगा के दर्शन मज्जन अथवा स्नान से सभी पाप धुल जाते हैं। हमारे देश मे मन्दिर मे प्रवेश के पहले स्नान की परम्परा रही है। सभव है स्नान का सुयोग न होने पर प्रवेशद्वार पर इन नदी देवियो के दर्शन मात्र से प्रवेश करने वाले का मन पवित्र हो जाने की कल्पना से ही इन नदी देवताओ को प्रवेशद्वार पर स्थापित किया गया हो। इसके अतिरिक्त कौशाम्बी गढवा कान्यकुब्ज (कन्नौज) तथा श्रावस्ती भी गुप्तकालीन कला के केन्द्र थे।

मध्यकाल

गुप्त वश के पतन के बाद देश मे एक केन्द्रीय सत्ता का अभाव हो गया। देश भर मे अनेक अलग-अलग राज्यो की नीव पड गई। ये शासक स्वतत्र होने के कारण भोग-विलास और तडक-भडक वाला राजसी जीवन बिताने लगे। प्राय सभी राजाओ ने अपने-अपने राज्यो मे मन्दिरो का निर्माण करवाया। ये मन्दिर प्राय राजप्रासाद (महल) जैसे अत्यन्त विशाल और कई-कई परकोटो तथा मण्डपो वाले बनने लगे। देवी-देवता भी गर्भगृह सभामण्डप भोगमण्डप नटमण्डप वाले मन्दिरो मे राजाओ जैसा सम्मान तथा तडक-भडक पाने लगे। देवी-देवता भी अब शयन (सोते) करते थे प्रभाती गाकर जगाए जाते थे उनका स्नान तथा वस्त्राभूषणो से श्रृगार किया जाता था नटमन्दिर मे उनका मनोरजन नृत्य-सगीत से किया जाता था। यही से देवदासी प्रथा का जन्म हुआ। वे सभामण्डप मे विशेष आयोजनो के समय विराजते थे। सक्षेप मे राजाओ के ही समान मध्ययुगीन देवी-देवता भी भोग-विलास और तडक-भडक वाले बन गए थे।

फलस्वरूप गुप्तकाल की सादगी के स्थान पर अब देवी-देवता पुन विभिन्न भारी-भरकम किन्तु सुरुचिपूर्ण अलकरणो से सजाए जाने लगे। उनकी मूर्तियो को अब नाना प्रकार के आभूषणो से भव्य और वैभवपूर्ण बनाया जाने लगा। मूर्तिकला के विषयो मे अब विस्तार आ गया था। प्रत्येक देवता से सम्बन्धित रामायण महाभारत तथा पुराणो मे दिए गए आख्यानो के आधार पर उनके विभिन्न स्वरूप ऑके जाने लगे। अधिक राज्यो और राजाओ की प्रादेशिकता के कारण देव-मण्डल का भी विस्तार हुआ और प्रत्येक राज्य के देवताओ मे प्रादेशिकता के लक्षण उभरने लगे।

प्रधान देव-मूर्ति के साथ-साथ अब अनेक पार्श्वदेवताओ की मूर्तियो का भी आधिक्य हो चला था। गभगृह के अतिरिक्त मन्दिर की बाहरी दीवारो पर भी मूर्तियो की भीड-भरी सजावट का प्रचलन हो गया था। चूँकि कलाकार को अधिक कार्य करना पडता था शिल्प-शास्त्रो के नियमो का और निर्माताओ के आदेश का पालन करना पडता था इसलिए अब प्राय देव-मूर्तियॉ सुन्दर सजी-सॅवरी होकर भी सजीव नही लगती थी। उनके निर्माण मे कलाकार के आत्मिक तत्त्व का अभाव रहता था।

मध्ययुगीन मूर्तिकला मे अनेक नए-नए तत्त्व विकसित हो गए थे। देवताओ के कई स्वरूप पहली बार प्रकट हुए थे।

मध्यकालीन मूर्तिकला की प्रमुख विशेषताऍ

1 अलकरणो की अधिकता।

2 देवताओ के विविध स्वरूपो का अकन जैसे महाविष्णु वैकुण्ठ विष्णु विश्वरूप विष्णु अष्टदिकपाल लोकपाल नवग्रह सप्तमातृकाऍ सिहवाहिनी गजलक्ष्मी उलूकवाहिनी आदि-आदि।

3 धार्मिक समन्वयवाद एव साम्प्रदायिक सद्भाव के कारण सघात मूर्तियो का अकन जैसे हरिहर (एक ही मूर्ति मे विष्णु और शिव का अकन) शिव-सूर्य ब्रह्मा-सूर्य हरिहरपितामह हरिहर-हिरण्यगर्भ-सूर्य या ब्रह्मादित्य-शिवनारायण आदि-आदि।

4 नए मागलिक प्रतीको का अकन जैसे कीर्त्तिमुख (आलकारिक सिहमुख) घटपल्लव व्याल शार्दूल मकरमुखप्रणाल आदि।

5 आयुध पुरुषो का अकन। मध्यकालीन कला मे देवताओ के आयुधो को भी पुरुष-रूप प्रदान करके उनको सम्मानित स्वरूप दिया गया था जैसे विष्णु के आयुधो मे चक्रपुरुष गदादेवी और शिव के आयुधो मे वृषपुरुष त्रिशूलपुरुष खटवागपुरुष आदि।

प्राय विद्वान 600 900 ई० के कालखण्ड को पूर्व-मध्ययुग तथा 900-1200 ई० के कालखण्ड को उत्तर-मध्ययुग मानते है। ऊपर जिन राजसी भोग-विलास तथा तडक-भडक वाले तत्त्वो का उल्लेख किया गया है उनका चरम विकास उत्तर-मध्ययुग की कला मे पाया जाता है। खजुराहो कोणार्क आदि शिल्प मे भोग-विलास के दृश्याकन भरे पडे है। ऐसा माना जाता है कि यह प्रभाव उस युग के रीतिकालीन जीवन और साहित्य से इन मन्दिरो और मूर्तियो पर पडा। कुछ विद्वानो की मान्यता है कि मध्ययुगीन मूर्तियो मे शारीरिक सौन्दर्य पार्थिव लालित्य और भाव-माधुर्य तत्कालीन महाकवि विद्यापति के श्रृगार काव्य गीतगोविन्द से ज्यो का त्यो आया था।

पहले बताया गया है कि गुप्तकाल के बाद देश मे कई राज्य बन गए थे और उनमे अलग-अलग ढग से मूर्तिकला का विकास हुआ था। यानी अलग-अलग क्षेत्रो की कला मे क्षेत्रगत अपनी विशषताओ के कारण भिन्नता भी थी। इसीलिए मध्ययुगीन कला का ज्ञान विभिन्न राजवशो के नाम पर अलग-अलग करना अधिक उचित होगा जैसे–

उत्तरी भारत	मौखरि-वर्द्धन प्रतिहार गहडवाल पाल परमार सोलकी युग की कला।
मध्य भारत	गग चन्देल चालुक्य राष्ट्रकूट कल्चुरि युग की कला।
दक्षिण भारत	पल्लव तथा चोल युग की कला।

साहित्यक स्रोत

भारतीय देव-मूर्तियो के निर्माण की परम्परा तो अत्यन्त प्राचीन है। इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। कुषाणकाल तक आते-आते हमारे देश मे अनेक देवी-देवताओ की मूर्तियो का निर्माण किया जा चुका था। गुप्तकाल से इन मूर्तियो के निर्माण-विधान सुनिश्चित किए जाने लगे। वास्तु-शिल्प (भवन निर्माण कला) तथा

मूर्ति-शिल्प (मूर्तिनिर्माण कला) के लिए विभिन्न पुराणो आगमो तथा शिल्पशास्त्रो मे विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया। पुराणो मे विशेषकर मत्स्यपुराण अग्निपुराण और विष्णुधर्मोत्तरपुराण उल्लेखनीय है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण सर्वाधिक समृद्ध और प्रतिमाविज्ञान का एक सम्पूर्ण ग्रथ है। गुप्तकालीन इस ग्रथ के तृतीय अध्याय मे चित्रकला एव मूर्तिकला पर विस्तृत विवेचन तथा प्रतिमा-लक्षणो का वर्णन उपलब्ध है। वराहमिहिर की रचना बृहत्सहिता मे भी प्रतिमाशास्त्र पर चार अध्यायो मे विधिवत वर्णन दिया गया है।

आगम ग्रथ पुराणो से बडे भी है और सख्या मे अधिक भी है। 18 पुराणो की तुलना मे आगमो की सख्या 28 है। इनमे कामिकागाम कर्णागम सुप्रभेदागम अशुमद्भेदागम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। कामिकागम तो वास्तव मे वास्तुशास्त्र का ही ग्रथ है। पुराणो मे प्रतिमाओ के तालमान (अगो की माप या Measurement) का अभाव सा हे परन्तु आगमो मे इसे मुख्य रूप से दिया गया है। मूर्ति-विज्ञान तथा मूर्ति-कला के सिद्धान्तो का सम्यक निरूपण आगम ग्रथो मे उपलब्ध है।

शिल्पशास्त्र वास्तुशैली के आधार पर दो कोटियो मे बताए जा सकते है–

1 दक्षिण भारत की द्राविड शैली

इस शैली के शिल्पशास्त्रो मे मानसार एक प्रतिनिधि ग्रथ है। डा० पी० के० आचार्य (प्रसन्न कुमार आचार्य) ने इसे गुप्तकालीन माना है। इसी शैली के अन्य उल्लेखनीय शिल्पग्रथो मे अगस्त्य का सकलाधिकार श्रीकुमार का शिल्परत्न और मयासुर का मयमत गिनाए जा सकते है। सकलाधिकार सकल (मूर्ति या प्रतिमा) पर ही पूर्णत आधारित शिल्पग्रथ है। इसमे शिव के नाना-रूप-प्रतिमाओ का विस्तृत विवेचन है। अशुमद्भेदागम वास्तु एव मूर्ति दोनो पर आधारित शिल्प-ग्रथ है।

2 उत्तरी भारत की नागर शैली

इस शैली के शिल्पशास्त्रो मे विश्वकर्मा का वास्तुशास्त्र महाराजाधिराज भोज परमार का समरागणसूत्रधार मण्डन का रूपमण्डन और भुवनदेव का अपराजितपृच्छा नामक शिल्प-ग्रथ गिनाए जा सकते है। प्रथम दो ग्रथो मे वास्तुकला का ही विवेचन प्रमुख है मूर्तिकला की विवेचना बहुत कम है। किन्तु रूपमण्डन मे तथा अपरजितपृच्छा मे विस्तार स देव-मूर्तियो के लक्षण बताए गए है। वास्तुशास्त्र को छोडकर अन्य तीनो शिल्पग्रथ उत्तर मध्यकाल की रचनाएँ है (कमश 11वी 12वी तथा 13वी शती ई०)।

❑

द्वितीय अध्याय

भारतीय देव-मूर्तियो के सयोजक तत्त्व

क मूर्तियो की स्थितियॉ

देव मूर्तियॉ खडी बैठी अथवा लेटी हुई बनाई गई थी। शिल्प ग्रथो मे इनके लिए विभिन्न स्थितियो के निर्देश मिलते है। यथा–

1 स्थानक मूर्तियॉ (खडी मूर्तियॉ)

समपाद स्थानक	दोनो पैर सटाकर सीधी खडी मूर्ति।
समभग स्थानक	सीधी खडी किसी ओर को झुकी हुई नही।
अभग स्थानक	थोडा किसी ओर झुकी हुई।
अतिभग स्थानक	किसी ओर अधिक झुकी हुई।
द्विभग स्थानक	अग मे दो बार झुकाव वाली।
त्रिभग स्थानक	अग मे तीन बार मोड दिया गया हो। इस स्थिति मे पैर और शीश एक विशेष झुकाव मे होते है और कटि एक ओर को निकली होती है। मुरलीधर कृष्ण तथा अप्सराऍ प्राय त्रिभग मुद्रा मे ही बनाई गई थी।
आलीढ प्रत्यालीढ	एक पैर सीधा और दूसरा मुडा हुआ। ऐसी स्थिति प्राय बोझ उठाने अथवा युद्ध करने मे होती है।
कायोत्सर्ग या खडगासन	समपाद समभग के साथ साथ दोनो भुजाऍ लम्बवत् घुटनो तक लटकी हुई। दोनो चरण एक-दूसरे से और हाथ शरीर से सटे न होकर थोडा अलग होते है। इस मुद्रा का प्रयोग केवल जैन तीर्थकरो की मूर्तियो मे पाया जाता है।

2 आसन मूर्तियॉ (बैठी मूर्तियॉ)

पद्मासन	सामान्य रूप से पालथी मारकर बैठी हुई।
पर्यकासन	पर्यक (पलॅग) या आसन पर दोनो पैर लटकाकर बैठी हुई।
प्रलम्बपाद	पर्यक या आसन पर बैठी और दोनो पैरो को नीचे लटकाए हुए।
अर्द्धपर्यकासन	केवल एक पैर लटकाकर और दूसरे को पर्यक पर रखे हुए।
ललितासन	लगभग ऊपर जैसा परन्तु शरीर सीधा रहे।
सुखासन	प्राय बायॉ पैर आसन पर मुडा और दाये घुटने को ऊपर करके आसन पर रक्खे हुए तथा उस पर दायॉ हाथ सीधा फैलाकर टिकाए हुए।
योगासन	पद्मासन मे बैठे और बाऍ हाथ की हथेली के ऊपर दाहिने हाथ की हथेली को दोनो पैरो की सधिस्थल यानी गोद मे रक्खे हुए।
वीरासन	बायॉ पैर दाहिनी जघा पर और दायॉ पैर बायी जघा के नीचे रखकर बैठे हुए।

3 शयन मूर्तियॉ (लेटी हुई)

शयन की स्थिति मे केवल विष्णु की मूर्तियॉ बनाई गई थी। क्षीरसागर मे अनन्त नाग की कुण्डलियो पर और उसी नाग के सप्तफणो के छत्र के नीचे विष्णु को उकेरा गया था। प्राय विष्णु का एक पैर लक्ष्मी

की गोद मे दिखाया गया है। विष्णु की नाभि से निकले कमलनाल के ऊपर कमल के फूल पर चतुर्मुख ब्रह्मा को बैठे हुए दिखाया जाता है। प्राय मूर्ति फलक मे अन्य देवताओ की उपस्थिति भी दर्शायी गई है। इसे अनन्तशायी विष्णु की मूर्ति कहा जाता है। उत्तर प्रदेश के ललितपुर जनपद मे स्थित देवगढ मे गुप्तकालीन मदिर की एक भित्ति के रथिका बिम्ब मे अत्यन्त विशाल और अत्यन्त सुन्दर अनन्तशायी विष्णु की मूर्ति उत्कीण है (चित्र 14)।

मृत्यु की घटना को अकित करने वाली बुद्ध मूर्तियो को यद्यपि लेटी हुई स्थिति मे ही बनाया गया था परन्तु इन्हे शयन मूर्तियॉ नही कहा जाता है।

बुद्ध महावीर और कृष्ण का जन्म देकर उनके पार्श्व मे लेटी उनकी माताओ की मूर्तियॉ भी मिली है परन्तु इन्हे भी शयन मूर्तियॉ नही माना गया है।

4 नृत्य मूर्तियॉ (नाचती हुई)

नाचती हुई स्थिति मे प्राय गणेश और शिव की ही मूर्तियॉ पाई गई है। शिव को तो नटराज कहा जाता है। शिव के नृत्य दो प्रकार के थे– ताण्डव तथा लास्य। ताण्डव नृत्य वे प्रलय के समय करते थे। यह सहार का प्रतीक था। लास्य वे अपनी प्रिया पार्वती को प्रसन्न करने के लिए करते थे।

ख मूर्तियो की भाव-भगिमाएँ (मुद्राएँ)

विभिन्न भावो को प्रदर्शित करने के लिए कलाकार ने मूर्तियो के हाथो और मुखो को विभिन्न स्थितियो मे दिखाया है। इन्हे प्राय मुद्राएँ कहा जाता है।

1 हाथ की मुद्राएँ

अभय	प्राय सामान्य दाएँ हाथ की उँगलियो को ऊपर का उठाकर खुली हथेली दर्शक के सामने रक्खे हुए सरक्षण या अभयदान की सूचक।
वरद	प्राय सामान्य दाएँ हाथ को नीचे रखकर थोडा आगे करके खुली हथेली को ऊपर की ओर रक्खे हुए किन्तु उँगलियो को थोडा नीचे को झुकाये हुए।
अजलि या नमस्कार	दोनो हाथ जोडकर वक्ष तक उठाए हुए।
ध्यान या योग	बायी हथेली पर दायी हथेली ऊपर को खुली और दोनो पैरो के बीच मे रक्खी हुई।
ज्ञान	दाये हाथ की तर्जनी और अँगूठे को जोडकर वक्ष पर हथेली रखी हुई।
व्याख्यान	दाये हाथ की तर्जनी और अँगूठे को जोडकर वक्ष तक उठाए और हथेली बाहर को किए हुए।
धर्मचक्र प्रर्वतन	दाये से व्याख्यान और बाये से ज्ञान मुद्रा मे एक साथ दोनो हथेलियो को वक्ष के पास उठाए हुए।
भूमिस्पर्श	तपस्या करते समय दाएँ हाथ की तर्जनी से आसन (पृथिवी या भूमि) स्पर्श करते हुए और बायी हथेली को ऊपर की ओर करके गोद मे रक्खे हुए। बाद की दोनो मुद्राएँ केवल बुद्ध की मूर्तियो पर ही प्रदर्शित की गई थी।
कटिहस्त या कटयवलम्बित	प्राय बायॉ हाथ कटि पर रक्खे हुए।
गजहस्त	एक हाथ आगे की ओर सीधा फैलाए और हथेली को नीचे झुकाए।
दण्डहस्त	हाथ मे दण्ड पकडे हुए।
विस्मय	प्राय खुली उँगलियों वाली हथेली को मुख तक ऊपर उठाकर अपनी ओर घुमा हुए।

2 मुख-मुद्राएँ

स्मित	हल्की मुस्कुराती हुई
शान्त	शान्ति भाव की द्योतक
विस्मय	चकित होकर देखने की मुद्रा इसमे प्राय एक हाथ की बिखरी उँगलियो वाली हथेली को मुख भाग तक ऊपर उठाए और हथेली को अपनी ओर मोडे हुए।
क्रोध	ऑखे बडी बडी बाहर को निकलती जैसी।

ग वाहन

हस	ब्रह्मा और सरस्वती	मेष	अग्नि
गरुड	विष्णु	मृग	वायु
वृषभ (बैल)	शिव	गोधा (गोह)	गौरी
गज (हाथी)	इन्द्र	श्वान (कुत्ता)	भैरव क्षेत्रपाल
सिह	दुर्गा	मयूर	कार्त्तिकेय
अश्व	कल्कि रेवत	मूषक	गणेश
महिष	यम	मकर	गगा
गर्दभ	शीतला	कच्छप (कछुआ)	यमुना

देवी देवताओ के वाहन उनके पशु पक्षी प्रेम के प्रमाण है। वस्तुत यह वाहनो की व्यवस्था पर्यावरणीय आवश्यकता और मानव पशु के पारस्परिक सहयोग का ज्वलन्त उदाहरण है। इस सन्दर्भ मे कुछ देवताओ के स्वरूप भी उल्लेखनीय है जिनके मुख विभिन्न पशुओ से परिकल्पित किए गए थे जैसे वराहविष्णु नृसिह वैकुण्ठविष्णु गणेश हयग्रीव नैगमेष आदि। इसके अतिरिक्त शिव के साथ सूर्य और बाहुबली के साथ उनके अग पर लिपटी लता वल्लरियॉ भी तत्कालीन प्रकृति प्रेम के उदाहरण माने जा सकते हैं।

घ आयुध (हाथो के उपकरण)

शस्त्र	चक्र गदा धनुष त्रिशूल खटवाग पाश शक्ति (शूल या भाला) वज्र मुसल खडग परशु अकुश मुद्गर दण्ड कपाल हल अग्नि आदि।
उपकरण	पद्म फल पुस्तक कमण्डलु स्रुक स्रुवा अक्षमाला दर्पण अमृतघट मोदक पताका आदि।
वाद्य	वीणा घण्टा वेणु डमरू, शख करताल आदि।

ड वेशभूषा

वस्त्र	अधोवस्त्र (धोती या साडी), ऊर्ध्ववस्त्र मे उष्णीष (पगडी) चोलक उत्तरीय कटिबन्ध कुचबन्ध आदि।
आभूषण	किरीट या मुकुट कुण्डल ग्रैवेयक हार एकावली भुजबन्ध (केयूर भुज वलय अगद) ककण (कगन) वनमाला उदरबन्ध छन्नवीर मेखला नूपुर आदि।
केश-विन्यास	जटा जटाजूट जटामुकुट मौलि धम्मिल्ल कुन्तल जूडा सीमन्त काकपक्ष आदि।

च प्रभामण्डल

प्राय देवता के मुख और शीश को घेरकर एक गोल चक्र या शिरश्चक्र होता है इसे उस देवता का प्रभामण्डल अथवा आभामण्डल कहा जाता है। कुछ विद्वानो का विचार है कि प्रभामण्डल की प्रेरणा वैदिक

अनुष्ठान से कलाकारो ने ग्रहण की। बाजपेय यज्ञ के समय अग्निवेदी के पीछे सूर्य के प्रतीक के रूप मे सोने की गोल तश्तरी रक्खी जाती थी। यही तश्तरी या पहिए का रूप आगे चलकर विष्णु का चक्र बुद्ध का धर्मचक्र और देवताओ का प्रभामण्डल बन गया। प्रभामण्डल के पहले कुषाणकाल मे यह एक अलकृत छत्र के रूप मे बोधिसत्त्वो की मूर्तियो के ऊपर लगाया गया था। बाद मे इसे उनके शीश के पीछे खडा करके प्रभामण्डल अथवा प्रभावली बना दिया गया। देवमूर्तियो मे प्रभामण्डल का निर्माण उत्तर कुषाणकाल या गुप्तकाल से प्रारम्भ हुआ। पहले यह सादा था पर धीर धीरे उसमे कई घेरे बनाकर उन्हे फूल पत्तियो से और अन्त मे सूर्य की किरणो रूपी नुकीली तीलियो से सजाया जाने लगा था।

देव-मूर्तियो का वर्गीकरण

अध्ययन की सुविधा के लिए देव मूर्तियो का वर्गीकरण आवश्यक है। मोटे तौर पर भारतीय देव मूर्तियो को पृथक पृथक धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर वर्गीकृत किया जा सकता है यथा–

वैष्णव मूर्तियॉ	विष्णु ब्रह्मादि
शैव मूर्तियॉ	शिव कार्त्तिकेयादि
सौर मूर्तियॉ	सूर्य रेवन्त नवग्रहादि
गाणपत्य मूर्तियॉ	गणपति या गणेश
शाक्त मूर्तियॉ	शक्ति अथवा देवी मूर्तियॉ
अन्य देव मूर्तियॉ	अष्टदिक्पाल यक्ष नागादि मूर्तियॉ
बौद्ध देव-मूर्तियॉ	बुद्ध बोधिसत्त्व ध्यानीबुद्धादि
जैन देव मूर्तियॉ	तीर्थकर आदि

❑

तृतीय अध्याय

वैष्णव देव-मूर्तियो के प्रमुख लक्षण

1 विष्णु

विष्णु वैदिक देवता है। द्वादश आदित्यो मे उनकी गणना थी। वेदो मे उनके वामनावतार का भी सकेत मिलता है। तीनो लोको को नाप लने का कथानक उनके साथ जुडने के कारण वेदो मे विष्णु को उरुक्रम तथा त्रिविक्रम कहा गया था। इन्हे भागवत सम्प्रदाय मे वासुदेव विष्णु के रूप मे पूजा जाता था। महाकाव्यो और पुराणो मे परब्रह्म परमात्मा के रूप मे विष्णु का वर्णन है। भारतीय देव मण्डल मे वे सर्वाधिक शक्तिमान ससार के सरक्षक कल्याणकारी और सृष्टि के पालनकर्ता के रूप मे लोकप्रिय हुए थे। ब्रह्मा विष्णु महेश क्रमश सृष्टि के सर्जक पालक और सहारक रूप मे प्रतिष्ठित हुए। आगे चलकर विष्णु के उपासक वैष्णव तथा परम भागवत कहलाए। भारतीय साहित्य के समान ही भारतीय मूर्तिकला मे विष्णु के नाना रूप ऑके गए थे। मोटे तौर पर विष्णु की मूर्तियो को निम्न वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है--

क सामान्य मूर्तियॉ (स्थानक एव आसनस्थ)
ख गरुडासीन मूर्तियॉ
ग अवतार मूर्तियॉ
घ विशिष्ट मूर्तियॉ

क सामान्य विष्णु-मूर्तियो के लक्षण

स्थानक मूर्तियॉ

विष्णु की सर्वाधिक प्राचीन एक शुगकालीन मूर्ति मल्हार (बिलासपुर म०प्र०) से मिली है। नुकीले मुकुट और पर्ण वस्त्रधारी इस चतुर्भुजी मूर्ति ने अपने दोनो स्वाभाविक हाथो मे शख ऊपरी दाहिने हाथ मे गदा और बाएँ मे चक्र पकड रक्खा है। लम्बे गदे के ऊपर द्वितीय शती ई०पू० के ब्राह्मी अक्षरो वाला एक अभिलेख है (चित्र 1)। कुषाणकाल से पहले गढी गई विष्णु की यही अकेली मूर्ति अभी तक पाई गई है। कुषाणकाल मे विष्णु की मूर्तियॉ मुख्यत मथुरा कलाकेन्द्र पर ही गढी गई थी। अब तक यहॉ से लगभग चालीस कुषाणकालीन मूर्तियॉ पाई जा चुकी है। ककाली टीला (मथुरा) से मिली पहली शती ई० की किरीटविहीन चतुर्भुजी विष्णुमूर्ति के मस्तक पर घुँघराले बाल है। गले मे फूलो का बना चौडा गुलूबन्द वनमाला का प्रारूप कहा जा सकता है। विष्णु का दायॉ हाथ नीचे को लटका है। शेष तीन हाथो मे गदा चक्र और शख है। कुषाणकालीन अन्य मूर्तियो के शीश पर मुकुट दाहिने हाथ मे अभय मुद्रा ऊपरी हाथो मे गदा और चक्र मस्तक पर तिलक तथा गले मे चौडी वनमाला का अकन मिलता है। बॉगरमऊ के निकट नेवल गॉव (उन्नाव उ०प्र०) से शीशविहीन विष्णु की चतुर्थ शती ई० की एक स्थानक मूर्ति के सामान्य हाथो मे बीजपूरक और शख है तथा अतिरिक्त हाथो मे गदा और चक्र है। आजानु वनमाला केयूर कगन तथा यज्ञोपवीतधारी यह मूर्ति लखनऊ-सग्रहालय मे है (स०स० एच 130)।

आसन मूर्तियॉ

लगभग चौथी तथा पॉचवी शती ई० मे निर्मित स्थानक चतुर्भुज विष्णु की कुछ मूर्तियॉ भीटा झूँसी तथा ऊँचडीह (इलाहाबाद) से प्राप्त हुई है और सम्प्रति इलाहाबाद सग्रहालय मे है (स०स० ए०एम० 440 ए०एम० 952 एव ए०एम० 857)। भीटा वाली मूर्ति मे पिछले दोनो हाथ अब भी उद्बाहु मुद्रा मे ऊपर उठे है और इनमे गदा तथा चक्र है। सामान्य दाएँ मे बीजपूरक फल तथा बाएँ मे शख है। किरीट तथा लम्बी वनमाला वाली यह मूर्ति कुषाण गुप्त काल के सन्धि समय का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। झूँसी से प्राप्त मूर्ति मे किरीट मुकुट

प्रभामण्डल आजानुलम्बी वनमाला तथा प्रलम्बबाहु ये सभी लक्षण गुप्तकाल के है। ऊॅचडीह वाली प्रतिमा मे किरीट मुकुट मे सिहमुखी कीर्त्तिमुख प्रभामण्डल के भीतर शिरश्चक्र तथा चक्रपुरुष आयुध विष्णु की मूर्ति का अगला विकास चरण प्रकट करते है। विष्णु के साथ गरुड पक्षी का अकन भी मथुरा मे कुषाणकाल से ही प्रारम्भ हो गया था और गुप्तोत्तरकाल मे गरुड का मानवीकरण हो गया था। मध्यकाल मे चतुर्भुजी विष्णु के आयुधो मे पद्म का अकन यदाकदा किया जाने लगा था। विष्णु की वनमाला जो कुषाणकाल मे केवल गले के चारो ओर तक सीमित थी गुप्तकाल से घुटनो तक लम्बी हो गई थी। इसी प्रकार गुप्तोत्तरकाल मे विष्णु के वक्ष पर श्रीवत्स प्रतीक का अकन भी किया जाने लगा था।

सक्षेप मे विष्णु मूर्तियो के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित है–

स्थितियॉ

प्रारम्भ से लेकर मध्य युग तक विष्णु की मूर्तियॉ प्राय खडी (समपाद स्थानक) बनाई गई थी (चित्र 1-4)। कुषाणकाल मे एकाध उदाहरण उनकी बैठी (आसन) मूर्तियो के भी दिखाई पडते है (मथुरा सग्रहालय स० स० 15 512)। योगासन अथवा पद्मासन मे विष्णु की मूर्तियो की सख्या स्थानक मूर्तियो की तुलना मे बहुत कम है।

विष्णु की शयन मूर्तियॉ भी सख्या मे अधिक नही है। प्राय विष्णु को क्षीरसागर मे अनन्तनाग की कुण्डलियो की शय्या पर उनके सप्तफणो की छत्रछाया मे लेटे लक्ष्मी द्वारा पद सेवा कराते नाभि से निकले कमल पर चतुर्मुख ब्रह्मा को बैठाए और विभिन्न देवताओ से घिरे हुए अनन्तशायी रूप मे भारतीय मूर्तिकला मे उकेरा गया था। उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले मे देवगढ मे निर्मित गुप्तकालीन दशावतार मन्दिर की दीवार पर अन्तशायी विष्णु की सर्वाधिक विशाल और सुन्दर मूर्ति पाई गई है। (चित्र 14)।

भुजाएॅ

बृहत्सहिता मे विष्णु की मूर्तियॉ तीन कोटियो की (अष्टभुजी चतुर्भुजी एव द्विभुजी) बनाने का निर्देश मिलता है– कार्य्योअष्टभुजो भगवाश्चतुर्भुजो द्विभुज एव वा विष्णु । भारतीय मूर्तिकला इस बात की पुष्टि करती है। किन्तु विष्णु की चतुर्भुजी मूर्तियॉ ही अधिक लोकप्रिय थी और प्रारम्भ से ही इनका चतुर्भुजस्वरूप ऑका जाने लगा था। अब तक की ज्ञात सर्वाधिक प्राचीन विष्णु वासुदेव की स्थानक मूर्ति मल्हार (बिलासपुर मध्यप्रदेश) से प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी को प्राप्त हुई थी। द्वितीय शती ई०पू० के ब्राह्मी अक्षरो वाले लेख से युक्त इस प्रतिमा को चतुर्भुजी बनाया गया था (चित्र 1) । कुषाणकाल मे प्राय दोनो अतिरिक्त या पीछे की भुजाओ को ऊपर उठा हुआ बनाया जाता था जिन्हे उद्बाहु कहा गया है। परन्तु गुप्तकाल मे प्राय सभी चारो भुजाओ को नीचे की ओर लटकी हुयी (प्रलम्बबाहु) दिखाया जाता था (चित्र 3)। मध्यकाल मे कुछेक अपवादो को छोडकर पुन अतिरिक्त भुजाओ को उद्बाहु बनाया गया था। द्विभुज मूर्तियो की सख्या बहुत कम है हॉ अष्टभुजी विष्णु की मूर्तियॉ मध्यकाल मे अधिक बनाई जाने लगी थी।

आयुध

सभवत चतुर्भुजी स्वरूप की लोकप्रियता के कारण विष्णु के चार आयुध सर्वविदित है– शख चक्र गदा और पद्म। परन्तु इनमे पद्म विष्णु की मूर्तियो मे उत्तर मध्यकाल मे ही बनाया गया था। मल्हार से मिली शुगकालीन एक मात्र विष्णु मूर्ति के हाथो मे गदा शख चक्र और खडग है। कुषाणकालीन मूर्तियो के हाथो मे प्रथम तीन तो है परन्तु चौथा आयुध है सुराही जैसा जलपात्र अथवा बीजपूरक फल। चौथे हाथ मे अभय मुद्रा भी कुषाणकाल मे दिखाई जाने लगी थी (चित्र 2) ।

गुप्तकाल मे चौथे आयुध के रूप मे अभय के अतिरिक्त वरद मुद्रा का भी अकन पाया जाता है। मध्यकाल मे भी यही आयुध अधिक मूर्तियो पर दिखाए गए थे (चित्र 4) । पद्म का अकन बहुत बाद मे अपनाया गया था।

अधिकाश चर्तुभुजी मूर्तियो का सामान्य दाहिना हाथ अभय या वरद मुद्रा मे अतिरिक्त दाहिने मे गदा और सामान्य बाएँ मे शख तथा अतिरिक्त बाएँ मे चक्र दिखाया गया है।

आयुध पुरुष

गुप्तकाल से ही विष्णु की कुछ मूर्तियो पर उनके आयुधो का मानवीकरण पाया जाता है। शखपुरुष चक्रपुरुष और गदादेवी को इन आयुधो के साथ मानव रूप मे बनाया जाने लगा था।

वस्त्राभूषण

क उष्णीष धोती उत्तरीय

प्रारभिक कुछ मूर्तियो मे विष्णु के शीश पर उष्णीष का अकन किया गया था जो शीघ्र ही किरीट या मुकुट के रूप मे परिवर्तित हो गया था।

विष्णु की मूर्तियो मे अधोवस्त्र के रूप मे धोती और ऊर्ध्व वस्त्र के रूप मे उत्तरीय (कधो और भुजाओ से नीचे तक लहराने वाला वस्त्र) अधिक लोकप्रिय रहे है। मल्हार वाली मूर्ति को छोडकर प्राय कुषाणकाल से ही उत्तरीय को अग पर धारण करने के फैशन मे निरन्तर बदलाव आता गया। कभी कभी उत्तरीय केवल भुआजो से नीचे ही दिखाया गया और कभी केवल जघाओ के पास।

कानो मे कुण्डल भुजाओ पर केयूर कलाई मे कगन गले मे हार वक्ष पर मुक्तायज्ञोपवीत कटि पर कई लडियो वाली मेखला और गुप्तोत्तरकाल मे पैरो मे नूपुर प्राय सभी देवताओ की मूर्तियो के समान विष्णु-मूर्तियो की भी शोभा बढाते है।

ख किरीट

विष्णु की मूर्तियो मे किरीट का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऊँचा किरीट अथवा करण्ड मुकुट अपने कई सुरुचिपूर्ण रूपो मे उकेरा गया था। शुगकालीन मल्हारवाली मूर्ति के शीश पर भी कुलह टोपी के आकार का सादा मुकुट दिखाई देता है। कुषाण-गुप्तकाल मे मुकुट की सज्जा और आकार बढने लगे थे। पहले चौडे चौकोर और ऊँचे तथा बाद मे नीचे चौडे और क्रमश ऊपर पतले मुकुट बनाए गए थे। मध्यकालीन किरीट नाना प्रकार के रत्नो से जडे हुए दिखाई पडते हैं। विष्णु के किरीट मे मध्यमणि के स्थान पर सिह-मुख के समान कीर्त्तिमुख का अकन किया जाने लगा था। बडी बडी गोल ऑखे चौडे गोल और विकराल आकृति वाले मुख से उगलती मुक्तामाला वाले कीर्त्तिमुख आगे चलकर मदिरो के प्रवेशद्वारो के अदर भी अकित किए जाने लगे थे। विष्णु का ऊँचा किरीट वस्तुत एक शिखर मदिर सरीखा ही दिखाई देता है। मथुरा सग्रहालय मे 5वी-6ठी शती के एक विष्णुशीश के किरीट मे कीर्त्तिमुख दर्शनीय है (स०स०-13 283)।

ग वनमाला

वनमाला विष्णु का विशेष आभूषण है। इसी से विष्णु को 'वनमाली कहा जाता है। पुष्पो से बनी यह वनमाला पहले केवल गले के चारो ओर ग्रैवेयक (गुलूबन्द) के समान बनाई गई थी परन्तु गुप्तकाल से यह लम्बी होकर घुटनो तक (आजानु) अथवा उससे भी नीचे तक लटकती देखी जा सकती है। आजानु वनमाला विष्णु तथा उनकी अवतार मूर्तियो की पहचान का एक प्रमुख लक्षण है।

श्रीवत्स

गुप्तोत्तरकाल मे विष्णु की मूर्तियो पर वक्ष भूषा के रूप मे श्रीवत्स चिह्न को भी उसी प्रकार उकेरा जाने लगा था जिस प्रकार यह मथुरा के कुषाणकालीन जैन तीर्थकरो के वक्ष पर उकेरा जाता था। इससे पहले मथुरा से मिली शीशविहीन भू-वराह या नृ-वराह की कुषाणकालीन (द्वितीय शती ई०) मूर्ति तथा उदयगिरि (विदिशा मध्यप्रदेश) की एक गुफा मे उत्कीर्ण विष्णु की प्रारभिक गुप्तकालीन (चतुर्थ शती ई०) मूर्ति मे श्रीवत्स का अपवाद स्वरूप अकन उपलब्ध है। कतिपय विद्वानो ने कुछ अन्य गुप्तकालीन मूर्तियो की ओर भी ध्यान

आकर्षित किया है जिनके वक्ष पर श्रीवत्स का चिह्न उकेरा गया था। फिर भी अधिकाश गुप्तकालीन विष्णुमूर्तियो पर यह चिह्न अनुपस्थित है। श्रीवत्स वस्तुत एक मागलिक चिह्न था जो आगे चलकर महापुरुष लक्षणो मे गिना जाने लगा। विष्णु के वक्ष पर श्रीवत्स या कौस्तुभ मणि का और उस पर बैठी लक्ष्मी का उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रथो मे तथा बाद मे शिल्प ग्रथो मे पाया जाता है।[1]

प्रभामण्डल

अब तक प्राप्त कुषाणकाल तक की विष्णु मूर्तियो पर प्रभामण्डल नही पाया गया है। गुप्तकाल मे विष्णु की प्रतिमाओ के शीश के पीछे गोल पहले सादा और बाद मे गुरियो रेखाओ फूलो अथवा पदमदलो से इसे अलकृत भी किया जाने लगा था। कुषाणकाल मे बोधिसत्त्वो की आदमकद मूर्तियो के ऊपर गोल छत्र बनाने की परम्परा थी। मथुरा मे प्रथम शती ई० मे निर्मित बोधिसत्त्व की छत्रयुक्त एक मूर्ति सारनाथ सग्रहालय (वाराणसी) मे है। ऐसा जान पडता है कि गुप्तकालीन शिल्पी ने बोधिसत्त्व के छत्र को ही विष्णु के शीश के पीछे लगाकर प्रभामण्डल का निर्माण प्रारम्भ कर दिया। धीरे धीरे अनेक आकृतियो के विभिन्न अलकरणो से युक्त प्रभामण्डल बनाए जाने लगे।

गुप्तकालीन मथुरा की विष्णु मूर्तियो पर इनके सुरुचिपूर्ण अकन देखे जा सकते है। मथुरा से प्राप्त एक विष्णु प्रतिमा लखनऊ सग्रहालय मे है (स०स एच 111) जिसका प्रभामण्डल दर्शनीय है। मध्यकाल मे प्रभामण्डल मे पद्मदलो और नुकीली किरणो को बनाकर उसके नाम को सार्थक किया गया था। ये दोहरे तिहरे घेरे वाले भी बनाए जाते थे। कुछ मूर्तियो मे शीश के चतुर्दिक शिरश्चक्र भी अकित पाए गए है। यह प्रभामण्डल आगे चलकर प्राय सभी बडे देवी-देवताओ की मूर्तियो मे बनाए जाने लगे थे।

इन प्रभामण्डलो के दोनो पार्श्वो मे मालाधारी उडते हुए विद्याधर अथवा विद्याधर-दम्पति तथा शीर्ष पर मुकुट अथवा कीर्त्तिमुख भी बनाए गए थे। विद्याधरो की उपस्थिति गुप्तकाल से एकाध मूर्तियो पर उकेरी जाने लगी थी पर मध्यकाल मे यह एक अनिवार्य अग बन गई थी। गुप्तकालीन सारनाथ की धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा वाली बुद्ध की मूर्ति का अलकृत गोल प्रभामण्डल और उसके पार्श्वो मे उडते विद्याधर की उपस्थिति दर्शनीय है।

लक्ष्मी-सरस्वती

वैदिक विष्णु की दो पत्नियाँ श्री और लक्ष्मी मध्यकालीन मूर्तियो मे ऑकी गई थी (चित्र 4)। लक्ष्मी को भूदेवी भी कहा गया था। विष्णु की मूर्तियो मे इन दोनो देवियो का अकन विष्णु की आकृति की अपेक्षा काफी छोटा पाया गया है। परन्तु जब केवल लक्ष्मी के साथ विष्णु का अकन हुआ है तब बहुधा दोनो की आकृतियाँ समान है। इसके उदाहरण लक्ष्मी-नारायण की आलिगन मूर्तियो तथा अनन्तशायी विष्णु की मूर्तियो मे पाए जा सकते है (चित्र 5)।

ख गरुडासीन विष्णु-मूर्तियो के लक्षण

विष्णु का वाहन गरुड पक्षी माना जाता है। कुषाणकाल मे पक्षी के रूप मे गरुड का अकन मथुरा मे विष्णु की एकाध मूर्तियो पर किया गया था। पख फैलाए और गले मे माला पहने गरुड पक्षी पर आसीन गदा

1 *रामायण* (युद्धकाण्ड) तमस परमो धाता शखचक्र गदाधर।
श्रीवत्सवक्षो नित्यश्रीरजय्य शाश्वतो ध्रुव ।।

रघुवश प्रभानुलिप्तश्रीवत्स लक्ष्मीविभ्रमदर्पणम।
कौस्तुभाख्यमपा सार विभ्राण बृहतोरसा।।

बृहत्सहिता- कार्य्योअष्टभुजो भगवाश्चतुर्भुजो द्विभुज एव वा विष्णु।
श्रीवत्साकित वक्ष कौस्तुभमणि भूषितोरस्क ।।

एव शखधारी चतुर्भुज विष्णु को मथुरा की एक मूर्ति मे उकेरा गया है (स०स०-56 4200)। देवताओ के वाहन अपने देवताओ के प्रतिनिधि होते थे और इसीलिए देवो के समान उन्हे भी पूजनीय समझा जाता था। गरुड पक्षी और सर्प की शत्रुता भी प्रसिद्ध है। हाथो मे सर्प पकडे अथवा उससे सघर्ष करते और माला एव कुण्डलधारी गरुड पक्षी की मूर्तियॉ भी मथुरा कला मे उकेरी गई थी। इनमे कुछ मूर्तियॉ लखनऊ-सग्रहालय मे है (स०स० 59 170 जे० 547)। गरुड पक्षी का शिखा तथा कुण्डलयुक्त एक अकन सॉची शिल्प मे भी मिला है (विशाल स्तूप पूर्वी तोरण पृष्ठभाग)। गुप्तकाल मे गरुड का पक्षी रूप गुप्तवशी राजाओ के सिक्को पर दण्डशीर्ष के रूप मे अकित किया जाता था। उनकी राजमुद्राओ पर भी गरुड का चित्र उत्कीर्ण रहता था। तभी इन्हे क्रमश गरुडध्वज और गरुत्मदक कहा गया था। परन्तु कुषाणकाल के बाद विष्णु की मूर्तियो पर केवल गरुडपुरुष का ही अकन मिलता है गरुड पक्षी का नही।

मध्यकाल मे गरुड का अकन सर्वत्र पक्षी के स्थान पर पुरुष रूप मे ही किया गया था। केवल उसकी नाक नुकीली तथा कधो से जुडे हुए पख बना दिए जाते थे। वृषभासीन शिव के समान विष्णु की भी अनेक गरुडासीन मूर्तियॉ इस काल मे गढी गई थी। कुछ मूर्तियो मे विष्णु के साथ-साथ लक्ष्मी भी विराजमान है। आलिगन मुद्रा वाली ऐसी एक मध्यकालीन लक्ष्मी नारायण की गरुडासीन मूर्ति अरैल (इलाहाबाद) से प्राप्त और इलाहाबाद सग्रहालय मे प्रदर्शित है (स०स० ए०एम० 856 चित्र 5)।

गरुडासीन विष्णु का एक मनोहारी अकन देवगढ के दशावतार मदिर की एक रथिका मे उत्कीर्ण है। गुप्तकालीन इस मूर्ताकन मे गजेन्द्रमोक्ष का दृश्य है। चतुर्भुजी किरीटिन गरुडारूढ विष्णु ने गज की आर्त पुकार पर उसे ग्राह से मुक्त किया था। दृश्य मे अजलिबद्ध ग्राह दम्पति गज तथा ऊपर उडते पखधारी मानवाकार गरुड पर विष्णु दिखाई देते है। ऊपर अगल बगल एक एक विद्याधर दम्पति को मध्य मे स्थित किरीट को पकडे दिखाया गया है (चित्र 6)।

गरुडासीन चतुर्भुज विष्णु की गुप्तकालीन (5वी शती ई०) एक मनोज्ञ मूर्ति सिरपुर (रायपुर म०प्र०) मे मिली है। इसमे सपक्ष गरुड की ठिगनी बैठी आकृति है। उन्होने अपने कधे पर बैठे विष्णु के दोनो पैर पकड रख हैं। गरुड के गले मे सर्प की माला दर्शनीय है।

गरुडासीन विष्णु तथा गरुडासीन लक्ष्मी नारायण की कई मूर्तियॉ लखनऊ-सग्रहालय मे है। इनमे कुछ मूर्तियो पर उनके अन्य अवतारो का भी अकन है (द्रष्टव्य स०स०-जी-225)। शिखराकार ऊॅचा किरीट धारण किए मानवी गरुड पर ललितासन मे बैठे चतुर्भुज विष्णु की एक अति सुन्दर मूर्ति खजुराहो से प्राप्त हुई है और सम्प्रति इलाहाबाद सग्रहालय मे है (स०स० ए०एम० 265 चित्र 7)। ग्यारहवी शती ई० मे निर्मित इस मूर्ति पर विष्णु के अन्य अवतारो को भी अकित किया गया है। झॉसी सग्रहालय (स०स० 81 239 एव 81 148) मे भी गरुडासीन विष्णु तथा गरुडासीन लक्ष्मी नारायण की मध्ययुगीन मूर्तियॉ है जो ललितपुर जनपद के सिरोनखुर्द नामक स्थान से पाई गई है। सुल्तानपुर जनपद (उ०प्र०) के कूॅड नामक स्थान से भी गरुडासीन विष्णु (शीशविहीन) की एक सुन्दर मूर्ति मिली है। 11वी शती ई० की इस मूर्ति मे ललितासन मे बैठे विष्णु की सभी भुजाऍ खण्डित है। पद्मदलाकित गोल प्रभामण्डल उसके अगल बगल और ऊपर बैठे त्रिदेव तथा अन्य देवताओ से भरा परिकर है।

ग विष्णु की अवतार मूर्तियो के लक्षण

ऐसा विश्वास किया जाता है कि जब जब ससार मे असुरो का अत्याचार बढा तब तब विष्णु ने नाना रूपो मे अवतार लेकर उन असुरो का सहार किया और ससार की रक्षा की। इन अवतारो के उल्लेख रामायण महाभारत तथा अनेक पुराणो मे मिलते है। श्रीमद्भगवद्गीता मे इस तथ्य का उल्लेख स्वय भगवान वासुदेव के मुख से किया गया है–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम।।
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम।
धर्मसस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे।। 4 7

विष्णु के द्वारा अपने तीन पगो मे त्रिलोक नाप लेने का आख्यान और इसलिए उन्हे त्रिविक्रम कहने के उल्लेख वैदिक साहित्य मे ही मिलने लगते है। परोक्ष रूप से यह उनके वामनावतार का सकेत है। मौर्य शुग काल के विष्णु वासुदेव तथा सकर्षण बलराम की पूजा के अभिलेखीय साक्ष्य मथुरा विदिशा (म०प्र०) और नागरी (राजस्थान) से मिले है। मथुरा मे बलराम की शुगकालीन मूर्तियॉ पाई गई है। कुषाणकाल मे वराहावतार का एक अनूठा उदाहरण भी मथुरा सग्रहालय की निधि है। नृसिह और वामन अवतारो की छिटपुट मूर्तियॉ गढी जा चुकी थी।

परन्तु गुप्तकाल के पहले तक अवतारवाद का यह मात्र विकास क्रम था। विष्णु के अवतारो की सम्यक सकल्पना गुप्तकाल मे ही परिपक्व हुई थी। प्रारम्भ मे विष्णु के दस अवतारो की तथा कालान्तर मे चौबीस अवतारो की धारणा वैष्णव सम्प्रदाय मे मान्य हुई।

दशावतारो मे 1 मत्स्य 2 कूर्म या कच्छप 3 वराह 4 नृसिह 5 वामन 6 परशुराम 7 राम 8 कृष्ण 9 बुद्ध और 10 कल्कि की गणना है। कुछ पुराणो मे कृष्ण के स्थान पर बलराम का नाम पाया जाता है। इनमे प्रथम नौ अवतार हो चुके माने गए है किन्तु दसवॉ कल्कि का अवतार अभी होना बाकी माना गया है। प्रारम्भ के चार अवतार वैज्ञानिक व्याख्या के आधार पर सृष्टि की रचना और उसके विकास के प्रतीक माने जा सकते है।

1 मत्स्य

सृष्टि के आरम्भ मे केवल जल ही जल था। अत जगत के विकास मे मत्स्य ही पहला जीव था जिसने प्राणियो की रचना की अगुआई की। विष्णु का मत्स्यावतार सृष्टि के इसी विकास का प्रतीक है। एक पौराणिक आख्यान के अनुसार जब सागर के पुत्र शखासुर ने चारो वेदो का अपहरण कर लिया तब विष्णु ने मत्स्यावतार लेकर शखासुर से उन्हे मुक्त कराया था। शखासुर को मारकर विष्णु ने उसका शख छीन लिया था। तभी से शख विष्णु का एक आयुध बन गया। मत्स्यावतार प्राय विष्णु के दशावतार वैकुण्ठ और विश्वरूप वाली मूर्तियो मे पाया जाता है। लखनऊ-सग्रहालय मे भी मत्स्यावतार के कई फलक है परन्तु मत्स्य को प्रमुख रूप से अकित करने वाला 9वी शती ई० का एक चौकोर शिलापटट बृटिश सग्रहालय लन्दन मे है। मध्य भारत के इस मूर्ति-शिल्प को डा० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी ने प्राग्धारा पत्रिका के पहले अक मे प्रकाशित किया है[1] (चित्र 8)।

2 कूर्म या कच्छप

जल के बाद पर्वतो का प्रारम्भ हुआ। कूर्म की पीठ पर्वत जैसी कठोर होती है। ऐसा विश्वास है कि पृथिवी शेषनाग के फण पर और शेषनाग कूर्म की पीठ पर स्थित है। देवो और असुरो द्वारा जब सागर मथन किया गया था तब शेषनाग को रस्सी के समान मेरु पर्वत की मथानी मे लपेटा गया और उस मथानी को कूर्म की पीठ पर रखकर सागर मथन किया गया। सभवत सृष्टि के विकास का यह दूसरा सोपान था। कूर्मावतार की भी स्वतत्र मूर्तियॉ दुर्लभ है इसे भी दशावतार और विश्वरूप मूर्तियो मे स्थान दिया गया था।

1 *प्राग्धारा* अक 1 1990 91 पृ० 15-21 चित्र स० 1

3 वराह

ऐसा माना जाता है कि सृष्टि के विकास के तीसरे चरण मे समुद्र से पृथिवी ऊपर निकल आई। इसे एक पौराणिक आख्यान से समझा जा सकता है। आख्यान के अनुसार एक बार हिरण्याक्ष नामक दैत्य ने पृथिवी का अपहरण करके उसे पाताल लोक मे छिपा दिया। तब विष्णु ने वराह का अवतार लेकर दैत्य का सहार किया और पृथिवी का उद्धार किया। पृथिवी के उद्धारक रूप मे वराह अवतार की कल्पना की गई थी। विष्णु के इस अवतार को भूवराह तथा आदिवराह भी कहा जाता है। वराह का अकन कुषाणकाल मे मथुरा मे तथा गुप्तकाल मे मध्य प्रदेश के एरण (सागर) तथा उदयगिरि (विदिशा) मे स्वतत्र रूप से किया गया था (चित्र 9)।

वराह की मूर्तियॉ दो प्रकार से बनाई गई थी। पहले उन्हे पशु वराह के रूप मे उकेरा गया था। बाद मे मानव धड पर वराहमुख बनाया गया था। बाद की मूर्तियो को इसीलिए नृवराह कहा जाता है। पृथिवी का उद्धार करने वाली मूर्तियो को भूवराह और महावराह भी कहा जाता है। मथुरा-सग्रहालय मे शीशविहीन नृवराह की एक कुषाणकालीन (द्वितीय शती ई०) मूर्ति है जो सर्वाधिक प्राचीन है (स०स०-65 15)। इस चतुर्भुजी भूवराह मूर्ति के वक्ष पर श्रीवत्स का वैसा ही लाक्षन (महापुरुषलक्षण) है जैसा मथुरा की तत्कालीन जैन तीर्थकरो की मूर्तियो के वक्ष पर मिलता है (चित्र 92 97)। नृवराह की मूर्तियॉ लखनऊ तथा इलाहाबाद सग्रहालयो मे भी है किन्तु वे परवर्तीकाल की है।

4 नृसिह

नृसिह सभवत सृष्टि के उस कालखण्ड का सकेत देता है जब पशुवत जीवन से मानव जीवन भिन्न होने की स्थिति मे था। नृसिहावतार वस्तुत मानव के पूर्ण विकास का सूचक है। पौराणिक आख्यान के अनुसार हिरण्यकशिपु नामक दैत्य ने घोर तपस्या करके विष्णु से यह वरदान प्राप्त कर लिया कि उसे न देवता मार सके न मनुष्य न वह घर मे मारा जा सके न घर के बाहर न दिन मे मारा जा सके न रात मे न आकाश मे मारा जा सके न धरती पर न शस्त्र से मारा जा सके न अस्त्र से। यह वरदान पाकर अपने को अति सुरक्षित समझकर वह अहकारी बन गया और सब पर अनेक अत्याचार करने लगा। वह सबसे अपने को ससार का स्वामी कहलवाता था। धीरे धीरे वह भगवान विष्णु का भी घोर विरोधी हो गया। उनके भक्तो पर नाना प्रकार से अत्याचार करने लगा। अपने विष्णु-भक्त पुत्र प्रह्लाद पर भी उसने अनेक अत्याचार किए। यहॉ तक कि अपनी बहन होलिका के द्वारा उसे जला देना चाहा। अन्त मे विष्णु ने आधा सिह और आधा मनुष्य (नृसिह) का शरीर धारण करके हिरण्यकशिपु की राजसभा के एक मण्डप स्तभ को सध्या के समय चीरकर उसे अपने घुटनो पर चित लिटाकर अपने नाखूनो से उसका वध कर दिया। इस प्रकार उन्होने अपने वरदान और भक्त प्रह्लाद दोनो की रक्षा की।

नृसिहावतार की गुप्तकालीन मूर्तियॉ भी मध्यप्रदेश मे मिली है। पहलेजपुर से प्राप्त एक प्रतिमा को स्व० प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी ने अपनी पुस्तक सागर थ्रू द एजेज के पॉचवे फलक पर प्रकाशित किया था। गुप्तकालीन नृसिह की मूर्तियॉ ग्वालियर सग्रहालय मे तथा मध्यकालीन मूर्तियॉ लखनऊ (स०स० एच 125) और इलाहाबाद सग्रहालय (स०स०-ए०एम०-463) मे है। देवगढ से मिली सुखासन मे बैठी नृसिह की मूर्ति भी गुप्तकालीन है (चित्र 10)।

5 वामन

राक्षसराज बलि अपनी दानवीरता के लिए प्रसिद्ध था। वह किसी भी याचक को खाली हाथ नही लौटाता था। ससार मे सबसे बडा दानी होने का उसे अहकार हो गया था। कश्यप और अदिति की तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु ने उनके पुत्र के रूप मे अवतार लिया। वे वामन (बौने) थे। एक बार वामन एक ब्राह्मण बटुक

के वेश मे बलि के सामने याचना के लिए प्रस्तुत हुए। बलि के गुरु शुक्राचार्य वामनावतार का भेद जान गए। इसलिए उन्हान राजा बलि को दान देने से मना किया। परन्तु बलि ने वामन याचक से मॉगने को कहा। ब्राह्मणवशधारी वामन ने बलि स तीन पग भूमि देने को कहा। बौने के तीन पगो मे कितनी भूमि होती ही है इसका सहज अनुमान लगाते हुए बलि ने दान का सकल्प पढा। तब वामन ने अपना विशाल रूप प्रकट किया ओर एक ही पग मे सारी पृथिवी और दूसरे पग मे आकाश तक का अनन्त अतरिक्ष नाप लिया और तीसरा पग बलि के शीश पर रखकर उसका अहकार नष्ट किया। विष्णु ने तीन पगो की भूमि का दान मॉगा था इसीलिए उन्हे त्रिविक्रम भी कहा जाता है।

वस्तुत वामनावतार की मूर्तियॉ दो प्रकार की बनाई गई है– एक मे उन्हे विष्णु के आयुधो के साथ बौने (ठिगने) आकार का बनाया गया जो उन्हे याचक बटुक वामन के रूप मे प्रस्तुत करती है (चित्र 11) तथा दूसरे मे उन्हे सामान्य आकार मे एक पैर पर खडे और दूसरे को नाभि तक ऊपर उठाकर सीधा फैलाए हुए जो उन्हे त्रिविक्रम की पहचान देती है।[1]

त्रिविक्रम का उल्लेख वैदिक साहित्य और कुषाणकालीन हरिवशपुराण मे मिलता है परन्तु उनकी मूर्तियॉ गुप्तकाल से पहले दुर्लभ थी। त्रिविक्रम की गुप्तकालीन दो मूर्तियॉ मथुरा सग्रहालय (स०स० 70 58 एव 36 2664) मे ओर दो इलाहाबाद सग्रहालय (स०स० ए०एम० 245 त्रिविक्रम एव ए०एम० 253 वामन) मे है (चित्र 12)। मध्यकालीन वामन एव त्रिविक्रम की कुछ मूर्तियॉ झॉसी सग्रहालय मे भी है (स०स०-80 58 81 4 81 194 सभी वामन और 81 196 त्रिविक्रम)। वामन की एक मूर्ति मे दशावतारो के अकन भी है (स०स० 81 16)।

मेरठ के एक किसान द्वारा पाई गई लगभग 11वी शती ई० की एक समूची बटुक वामन की मूर्ति मथुरा सग्रहालय म हे। वरद गदा चक्र और शखधारी इस मूर्ति के दाहिनी ओर एक स्त्री और बायी ओर एक पुरुष को त्रिभग मुद्रा मे खडा दिखाया गया है जिन्हे गदादेवी और शखपुरुष के रूप मे पहचाना जा सकता है। सादे प्रभामण्डल कुचित केश मस्तक पर तिलक लम्बे गोल कुण्डल चौडा कण्ठा भुजबन्ध कगन यज्ञोपवीत और आजानु लम्बी वैजयन्ती माला से विभूषित यह मूर्ति भी झॉसी सग्रहालय (स०स० 81 16) जैसी ही जान पडती है। मध्य प्रदेश मे त्रिविक्रम की मूर्तियॉ गुप्तकाल से लेकर प्रतिहार परमार राष्ट्रकूट चन्देल तथा कच्छपघात काल तक गढी गई थी।[2] मध्यप्रदेश मे विशेषकर एरण मे वराह नृसिह और वामन के स्वतत्र मदिर होने के साक्ष्य मिलते है। उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र से मिली मूर्तियो से भी ऐसा ही आभास होता है।

6 परशुराम

जमदग्नि ऋषि के पुत्र परशुराम ब्राह्मण थे। वे क्रोधी स्वभाव के थे। पृथिवी को क्षत्रिय राजाओ के अनाचारो से बचाने के लिए विष्णु ने परशुराम का अवतार लिया और सन्त तुलसीदास के अनुसार उन्होने इक्कीस बार पृथिवी के सभी क्षत्रिय राजाओ का विनाश किया। ब्राह्मण होकर क्षत्रिय धर्म अपनाने वाले परशुराम को भारतीय मूर्तिकला मे उनके आयुध परशु यानी फरसे से पहचाना जाता है। उनके प्रमुख शस्त्र परशु के आधार पर ही वे परशुराम कहलाए। उनकी स्वतत्र मूर्तियो के अकन विरल है। उन्हे विष्णु के

1 त्रिविक्रम वक्ष्ये वामपादेन मेदिनीम।
आक्रामन्त द्वितीयेन साकल्येन नभस्थलम।।
शिल्परत्न पचविशपटल

2 नरेश पाठक मध्यप्रदेश की त्रिविक्रम प्रतिमाएँ *पचाल* 8 (1995) पृ० 61 65

दशावतार अथवा विश्वरूप वाली मूर्तिया मे अकित किया गया है। ललितपुर जनपद (उ०प्र०) के सिरोन खुर्द नामक स्थान से लगभग 10वी 11वी शती ई० की परशुराम की एक चतुभुजी मूर्ति मिली है जो झॉसी सग्रहालय मे प्रदर्शित है (स०स० 81 166)। करण्ड मुकुट और आजानु वनमाला से विभूषित इस मूर्ति के सामान्य दाएँ हाथ मे परशु है ओर बायॉ जघा पर स्थित है।

7 राम

रावण तथा अन्य राक्षसो के अत्याचारो से ऋषि मुनिया की रक्षा करने के लिए तथा सामाजिक मर्यादाआ की स्थापना के लिए विष्णु ने अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र के रूप मे अवतार लिया था जिसका आख्यान सर्वविदित है। इन्हे राम या दाशरथी राम कहते है। राम की पहचान उनके मुख्य आयुध धनुष बाण से की जाती है।

राम की स्वतत्र मूर्तियॉ और मदिर गुप्तकाल के बाद ही बनाए गए थे। उनकी सख्या भी अधिक नही है। राम लक्ष्मण सीता तथा हनुमान आदि के अकन प्राय रामाख्यान पर आधारित शिल्प मे मिलते है। इलाहाबाद के निकट श्रृगवेरपुर से वनवासी राम लक्ष्मण तथा सूर्पणखा आख्यान के उत्कीर्ण फलक (गुप्तकालीन) पाए गए है। मध्यप्रदेश दक्षिण भारत तथा दक्षिण पूर्व एशिया मे राम के विविध अकन मिलते है। मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ क्षेत्र (दक्षिण कोसल) मे राजिम (जनपद रायपुर) मे राम का राजीवलोचन और सिरपुर (श्रीपुर रायपुर) मे रामदेउल तथा लक्ष्मणदेउल पूर्वमध्यकाल के है। इनमे पचवटी मे शूपर्णखा आख्यान तथा सीता हरण आख्यान मदिर की भित्तियो पर उत्कीर्ण है। सिरोनखुर्द (ललितपुर उ०प्र०) से प्राप्त राम की एक खण्डित मूर्ति झॉसी सग्रहालय मे है (स०स० 81 180)। लगभग 9वी शती ई० की इस खण्डित मूर्ति मे राम का आयुध धनुष स्पष्ट दिखाई देता है।

8 कृष्ण

कस की बहन देवकी और वसुदेव की आठवी सन्तान के रूप मे कृष्ण का अवतार लेकर विष्णु ने पापी कस के विनाश से मथुरावासियो को छुटकारा दिलाया था। कृष्ण का अकन भी कृष्ण लीलाओ के दृश्याकनो मे गुप्तकाल से मिलने लगता है। वशी और मोर मुकुट धारी कृष्ण की स्वतत्र मूर्तियॉ और उनके मन्दिर बहुत बाद मे बनाए गए थे। दृश्याकनो मे लीलाओ के आधार पर उनकी पहचान की जाती है।

डा० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी के अनुसार मथुरा से मिली चतुर्भुजी विष्णु की तथा मल्हार (म०प्र०) से मिली गोपवेशधारी चतुर्भुजी विष्णु की मूर्तियो को कृष्ण (विष्णु वासुदेव) के रूप मे पहचाना जा सकता है। महाभारत मे शख चक्र तथा गदाधारी चतुर्भुज रूप मे कृष्ण का उल्लेख मिलता है। कृष्ण और बलराम के बीच उनकी बहन एकानशा का अकन करने वाले मथुरा के कुषाणकालीन फलको पर कृष्ण का यही चतुर्भुजी रूप देखा जा सकता है (स०स० 67 529 चित्र 65)।

बलराम

दशावतार की कुछ सूचियो मे कृष्ण के स्थान पर बलराम का उल्लेख मिलता है। उन्हे सकर्षण और बलदेव बलदाऊ या बलभद्र भी कहा जाता है। मौर्य-शुगकाल मे भागवत धर्म (पाचरात्र सम्प्रदाय) मे जिन पॉच देवो की उपासना प्रचलित थी उनमे बलराम का पहला नाम था। उन्हे सकर्षण इसलिए कहा जाता था क्योकि वे देवकी के गर्भ से सकर्षित (खीचे) किए गए थे और रोहिणी के गर्भ मे स्थापित किए गए थे।[1] सकर्षण नाम की सार्थकता सभवत इसलिए भी है क्योकि वे कृषि कर्म मे निपुण भी थे। वे बली भी थे तभी बलराम

1 गर्भसकर्षणात् त वै प्राहु सकर्षण भुवि।
रामेति लोकरमणाद् बल बलवदुच्छ्रयात।।
श्रीमद्भागवतपुराण 10/2/13

बलदाऊ और बलभद्र कहलाए। उनके इन गुणो के परिचायक उनके आयुध हल और मुसल थे। विष्णुधर्मोत्तरपुराण बलराम को विष्णु का अवतार मानता है केवल गदा के स्थान पर मुसल और चक्र के स्थान पर हल उनके आयुध बने थे। बलराम शेषनाग के अवतार भी माने गए है तभी उनकी मूर्तियो मे उनके शीश के ऊपर सर्प फणो का छत्र मिलता है। त्रेता युग मे वे राम के छोटे भाई लक्ष्मण थे और द्वापर मे कृष्ण के बडे भाई बलराम थे। बलराम मद्यपायी भी थे और केवल एक कान मे आभूषण पहनते थे (एककुण्डलधर)। मथुरा से मिली मूर्तियॉ इन तथ्यो के साक्ष्य प्रस्तुत करती है।

बलराम की स्वतत्र मूर्तियॉ मथुरा मे शुगकाल से ही गढी जाने लगी थी। ऐसी एक मूर्ति लखनऊ के राज्य-सग्रहालय मे है (स०स० जी-215)। अपने दाएँ हाथ मे मुसल और बाएँ मे हल लिए और शुगकालीन वेशभूषा वाली पगडी धोती कुण्डल कगन पहने इस खडी मूर्ति के शीश के ऊपर सातफणो का छत्र है जिसके दो फण टूट गए है। मथुरा से ही प्राप्त कुषाणकाल की एक बलराम की मूर्ति का केवल शीश भाग इसी सग्रहालय मे है (स०स० 57 457)। इस मूर्तिखण्ड मे बलराम का दायॉ ऊपर उठा हुआ हाथ खण्डित मुख शीश पर तीन वलयो वाला मुकुट और उसके ऊपर सर्पफणो का छत्र ही बचा है।

मथुरा से कुषाणकालीन जेन तीर्थकरो की कुछ ऐसी मूर्तियॉ भी मिली है जिनके प्रभामण्डल के पार्श्वो मे कृष्ण और बलराम का अकन है। जैन धर्मावलम्बी 24 तीर्थकरो 12 चक्रवर्ती 9 वासुदेवो 9 प्रतिवासुदेवो और 9 बलदेवो मे विश्वास करते है। इन्हे वे शलाका पुरुष कहते है जिनकी सख्या कुल तिरसठ है। समवायॉग सूत्र मे 9 बलदेवो की सूची दी गई है। इनमे 'राम नामक बलदेव का नेमिनाथ तीर्थकर के ससर्ग मे उल्लेख है। मथुरा मे कुषाणकाल से ही नेमिनाथ की कुछ मूर्तियो के प्रभामण्डल के पार्श्वो मे हल मुसल लिए बलराम और चर्तुर्भुजी कृष्ण का अकन मिलता है। ऐसी एक मूर्ति लखनऊ-सग्रहालय मे है (स०स०-ए०एम० 858)।

द्विभुज एव चतुर्भुज दोनो प्रकार की बलराम की मूर्तियो के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित है–

1 सिहमुखी हल तथा मुसल आयुध
2 शीश के ऊपर सर्पफणो का छत्र
3 तीन वर्तुलो वाला मुकुट
4 केवल एक कान मे आभूषण
5 एक हाथ मे मदिरा पात्र
6 वनमाला

9 बुद्ध

जीवन के कष्टो से मानव को छुटकारा दिलाकर निर्वाणपद (मुक्ति) प्राप्त कराने के कारण बुद्ध को भी आगे चलकर विष्णु का एक अवतार मान लिया गया था।

10 कल्कि

ऐसा माना जाता है कि कलियुग के अन्त मे जब इस युग के अत्याचार बढ चुके होगे तब घोडे पर सवार खडगधारी कल्कि के रूप मे विष्णु का अवतार होगा। कल्कि की मूर्तियो को दशावतार प्रतिमाओ पर यदा कदा बना दिया गया है।

घ विष्णु की विशिष्ट मूर्तियॉ

अनन्तशायी अथवा शेषशायी विष्णु

अनन्त अथवा शेष नाग की कुण्डलियो के ऊपर शयन मुद्रा मे प्राय अपने दाएँ हाथ का तकिया लगाकर लेटे हुए विष्णु की मूर्तियो को अनन्तशायी मूर्ति कहा जाता है। इन मूर्तियो मे प्राय उनका चतुर्भुज स्वरूप

उनके गदा शख और चक्र आयुध वनमाला तथा किरीट समेत विशिष्ट वेशभूषा रहनी हे। उनके एक पैर को अपने अक (गोद) मे लेकर बैठी लक्ष्मी विष्णु की नाभि से निकले कमल पर विराजमान चतुर्मुख एव चतुर्भुज ब्रह्मा तथा अन्य देवी देवताओ का अकन भी इन मूर्तियो मे पाया जाता हे। विष्णु के ऊपर अनन्त नाग के सप्तफणो का छत्र भी अकित रहता है। देवगढ (ललितपुर उत्तरप्रदेश) के दशावतार मदिर की एक भित्ति की रथिका मे अनन्तशायी विष्णु का अतीव सुन्दर अकन हुआ (चित्र 14)। लखनऊ सगहालय मे भी विष्णु की अनन्तशायी प्रकार की कई मूर्तियॉ है (स०स० एच 120 56 359 63 357 आदि)। गुर्गी (रीवा म०प्र०) से प्राप्त अनन्तशायी विष्णु की एक मध्ययुगीन मूर्ति इलाहाबाद-सग्रहालय मे है (स०स० ए०एम० 617)। इस फलक की ऊपरी पटिटका पर गणेश एव वीरभद्र के साथ सप्तमातृकाओ को भी बैठे दिखाया गया है।

दशावतार विष्णु

दशावतार विष्णु की मूर्तियॉ प्राय उत्कीर्ण फलक के रूप मे ही मिलती है। गुप्तकाल तथा प्रारम्भिक मध्यकाल से ही ऐसे मूर्ति फलक मिलने लगे थे। इनमे मध्य मे विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति समपाद स्थानक मुद्रा मे तथा उनके पार्श्वो मे और प्रभामण्डल के चतुर्दिक परिकर मे उनकी अवतार मूर्तियो को उकेरा गया था। गुप्तकाल मे विष्णु का दशावतार रूप अत्यन्त लोकप्रिय था। देवगढ (ललितपुर उ०प्र०) का दशावतार मदिर इस बात का साक्षी है। प्रतिहार युग मे कन्नौज क्षेत्र मे भी ऐसी मूर्तियो का अकन लोकप्रिय था। 12वी शती ई० का कडा (इलाहाबाद) से प्राप्त विष्णु दशावतार का एक फलक इलाहाबाद-सग्रहालय मे है (स०स०-ए०एम० 452)। इसी सग्रहालय मे खजुराहो से प्राप्त चन्देलकालीन एक विष्णु की मूर्ति (स०स० ए०एम 377) तथा एक अन्य मूर्ति के परिकर (स०स० ए०एम० 1090) मे भी दशावतारो का अकन किया गया था।

चतुर्व्यूह विष्णु

पाचरात्र सहिता मे जिस भागवत सम्प्रदाय की विवेचना है उसमे सकर्षण वासुदेव प्रद्युम्न और अनिरुद्ध चार प्रमुख देवो की उपासना प्रचलित थी। इन्हे ही विष्णु का चतुर्व्यूह रूप कहा जाता है। विष्णु के इस स्वरूप की मूर्तियॉ बहुत कम पाई गई हैं। द्वितीय शती ई० के प्रारम्भिक काल की बनी एक अत्यन्त सुन्दर विष्णु की मूर्ति मथुरा के सप्तसमुदरी कुऍ से मिली थी जो मथुरा-सग्रहालय मे प्रदर्शित है (स०स० 14 392-395)। इन्द्र जैसा ऊॅचा चौकोर किरीट गले मे चौडी पुष्पमाला केयूर कगन कर्णाभूषण पहने इस मूर्ति का दायॉ हाथ अभय मुद्रा मे उठा है तथा बाऍ मे फल है। मूर्ति के मस्तक पर गोल तिलक सभवत बुद्ध-मूर्तियो की ऊर्णा से प्रेरित है। विष्णु की मूर्ति के दाऍ कधे से निकलते हुए सकर्षण (बलराम) की मूर्ति है। विष्णु के किरीट के ऊपर भी एक शीश-विहीन आकृति है। मथुरा तथा लखनऊ सग्रहालयो के पूर्व निदेशक एव प्रख्यात मूर्ति विज्ञानी डा० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी का विचार है कि मुख्य मूर्ति के बाऍ कधे से निकलती हुई चौथी मूर्ति भी पहले रही होगी जो अब अनुपस्थित है। इस प्रकार इस मूर्ति मे वासुदेव सकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध को मिलाकर विष्णु का चतुर्व्यूह स्वरूप गढा गया था।

वैकुण्ठ विष्णु

महाभारत और पुराणो मे विष्णु के सहस्त्रनामो मे एक नाम 'वैकुण्ठ भी है। गुप्तकालीन एक पाचरात्र सहिता (जयाख्य सहिता 6/73-76)[1] मे पहली बार चार मुखो (वैकुण्ठ नृसिह वराह तथा कपिल) और शख

1 अनादिनिधन देव जगत्सृष्टारमीश्वरम। ध्यायेच्चतुर्भुज विप्र शखचक्रगदाधरम।।
चतुर्वक्त्र सुनयन सुकान्त पद्मपाणिनम। वैकुण्ठ नरसिहास्य वाराहकपिलाननम।।
-*जयाख्य सहिता* (गवर्नमेण्ट ओरियण्टल सीरीज बडौदा 1931) 6 / 73 74

चक्र गदा तथा पदमधारी चार हाथो वाले श्वेत गरुडासीन वैकुण्ठ विष्णु का वर्णन मिलता है। गुप्तकालीन शिल्पग्रथ विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3/44/11-12)[1] मे इन्ही चार मुखो का वर्णन मिलता है। वहॉ वैकुण्ठ मुख को सोम्य मुख कहा गया है। अपराजितपृच्छा[2] रूपमण्डन[3] तथा देवतामूर्तिप्रकरण मे भी अष्टभुजी वैकुण्ठ विष्णु का लगभग ऐसा ही उल्लेख है। यहॉ वैकुण्ठ के स्थान पर पुरुषमुख और कपिल के स्थान पर श्रीमुख अथवा स्त्रीमुख बनाने का निर्देश है।

मथुरा क्षेत्र मे पाश्र्वो मे वराह और नृसिह मुखो वाली वैकुण्ठ विष्णु की मूर्तियॉ गुप्तकाल से ही ऑकी गई थी जो कालान्तर मे पजाब हरियाणा कश्मीर हिमाचल प्रदेश मे भी उकेरी गई थी। कपिल का चौथा मुख कश्मीर को छोड अन्यत्र कही नही दिखाई पडता हे। जिस प्रकार चतुर्मुखी शिवलिगो मे केवल तीन मुख ही दर्शनीय होते है उसी प्रकार वैकुण्ठ विष्णु की मूर्तियो मे भी बीच मे विष्णु का मानव मुख तथा अगल बगल वराह तथा नृसिह मुख दिखाई देते है। वैकुण्ठ विष्णु क ये तीन मुख क्रमश सृजन पालन और सहार के प्रतीक है (स०स० 34 2525 34 2480 54 3836 आदि)।

लखनऊ सग्रहालय मे भी वैकुष्ठ विष्णु के दो मूर्ति फलक है। (स०स० 55 304 62 117)। कन्नौज सग्रहालय की चतुर्भुजी वैकुण्ठ विष्णु की गुप्तकालीन मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है। डा० देवेन्द्र हाण्डा ने चण्डीगढ के निकट (पजाब) कई स्थानो से मिली लगभग एक दर्जन वैकुण्ठ विष्णु की मूर्तियो को प्रो० अजयमित्र शास्त्री अभिनन्दन ग्रथ अजय श्री मे प्रकाशित किया है। इनमे एक मूर्ति फलक लक्ष्मी वैकुण्ठ का भी है (चित्र -15)[4]। विष्णु के लक्षणो के अतिरिक्त उनके मुख के अगल बगल वराह और नृसिह मुखो का अकन ही वैकुण्ठ विष्णु की प्रमुख पहचान है।

विश्वरूप विष्णु

सर्वव्यापी विष्णु के स्वरूप को विश्वरूप कहा जाता है। अपने इस रूप को समय समय पर विष्णु ने बलि परशुराम कौशल्या यशोदा अर्जुन आदि को दिखाया है। भारतीय मूर्तिकला मे विष्णु के इस विश्वरूप का अकन गुप्तकाल से प्रारम्भ हुआ था। वस्तुत वैकुण्ठ विष्णु का ही विस्तृत स्वरूप विश्वरूप बन जाता है। इसमे कुछ अन्य देवताओ तथा ऋषियो को विष्णु के प्रभामण्डल मे तथा रुद्रमुखो को प्रभामण्डल के घेरे मे पक्तिबद्ध बनाया गया था।

मथुरा से मिली गुप्तकालीन विश्वरूप विष्णु की प्रतिमा यद्यपि खण्डित है तथापि अत्यन्त सुन्दर है (स०स०-42-43 2989) । इस मूर्ति फलक मे विष्णु की कटि समेत नीचे का भाग और उनके मुख के बायी

1 सौम्य तु वदने पूर्वं नारसिह तु दक्षिणम। कापिल पश्चिम वक्त्र तथा वाराहमुत्तमम।।
विष्णुधर्मोत्तरपुराण 3/44/9 10
एकमूर्तिधर कार्यो वेकुण्ठेत्याभिशब्दित । चतुर्मुख स कर्त्तव्य प्रागुक्तवदन प्रभु ।।
चतुर्मूर्ति सभवति कत मुखचतुष्टये।।
वि०ध० 3/44/10 11
पूर्व सौम्यमुख कार्यं यत्तु मुख्यतम विदु ।।
कर्त्तव्य सिहवक्त्राभ ज्ञानवक्त्र तु दक्षिणम। पश्चिम वदन रौद्र यत्तदैश्वर्यमुच्यते।।
वि०ध०पु० 3/85/44 46

2 पूवत पुरुषाकारो नरसिहश्च दक्षिणे। अपरो श्रीमुखाकारो वाराहास्यतथोत्तरे।।
अपराजितपृच्छा 219/27

3 अग्रत पुरुषाकार नारसिहश्च दक्षिणे। अपरे श्रीमुखाकार वाराहास्यतथोत्तरे।।
रूपमण्डन 3/54

4 देवेन्द्र हाण्डा (स०) *अजय श्री प्रो० अजयमित्र शास्त्री अभिनन्दन ग्रथ* वाल्यूम 2 नई दिल्ली 1989 पृ० 502 503

ओर का कुछ भाग छोडकर शेष प्रभामण्डल भी खण्डित हो चुका है। विष्णु की सभी भुजाएँ भी खण्डित है। परन्तु उनकी सामान्य भुजाओ के ऊपर से लटकती वनमाला गले मे हार किरीट मुकुट अब नी अविशिष्ट है। विष्णु के दाये कधे के ऊपर सिहमुखी नृसिह तथा बाये कधे के ऊपर वराहमुख प्रभामण्डल मे अन्य देवमूर्तियाँ तथा मुख्य मूर्ति के बाएँ प्रभामण्डल के घर मे पक्तिबद्ध चार रुद्र मूर्तियाँ दशनीय हे (चित्र 16)। लखनऊ सग्रहालय मे भी गढवा (इलाहाबाद) से प्राप्त एक द्वार वेष्टनी पर विश्वरूप विष्णु का अकन द्रष्टव्य है (स०स० बी 223 बी सी)। षडभुजी इस मूर्ति मे विष्णु के शीश के ऊपर एक घोडे का मुख (हयग्रीव विष्णु का एक अन्य अवतार) भी है। कन्नौज क्षेत्र मे प्रतिहारकाल (9वी-10वी शती ई०) की कई विश्वरूप विष्णु की विशाल सुन्दर और सजीव मूर्तियाँ मिली ह। उनमे से दो अब भी कन्नौज के मकरन्दनगर मोहल्ले मे 'राम लक्ष्मण मदिर मे रखी हुई है। लगभग पौने दो मीटर ऊँची इन मूर्तियो मे अष्टभुजी विष्णु के पॉच मुख है। बीच मे उनके मानवमुख के बाये सिह और वराह के तथा दाहिनी ओर कच्छप और मत्स्य के मुख है। जिन अन्य देवो का अकन किया गया है उनमे हयग्रीव परशुराम वायु अग्नि नैऋत वरुण इन्द्र यम ग्यारह रुद्र ओर बारह आदित्य उल्लेखनीय है (चित्र 17)। इनमे से एक मूर्ति मे धनुर्धारी अर्जुन का भी अकन किया गया है जिसे कृष्ण ने अपना विश्वरूप दिखाया था। एक अन्य मूर्ति कन्नौज निवासी स्व० रामनारायण कपूर के निजी सग्रह मे है।

लगभग इसी काल की (7वी 8वी शती) बनी विश्वरूप विष्णु की इसी शैली की दो प्रतिमाएँ लखनऊ सग्रहालय मे है (स०स० 44 46 तथा एच 124) । पहली मूर्ति डलमऊ (रायबरेली) से तथा दूसरी मनवाडीह (सीतापुर) से मिली है। मत्स्य वराह वामन राम नृसिह परशुराम बलराम बुद्ध और कल्कि को परिकर मे प्रदर्शित करने वाली लगभग 11वी शती ई० की एक चतुर्भुजी विष्णु मूर्ति मेजा (इलाहाबाद) से मिली है और इलाहाबाद सग्रहालय मे सग्रहीत है (स०स० ए०एम० 410)। वरद गदा चक्र और खण्डित भुजा वाले विश्वरूप विष्णु के पार्श्वस्तभो पर रथिकाओ मे ब्रह्मा एव शिव का भी अकन है।

विश्वरूप विष्णु की वीरासन मुद्रा वाली दो मूर्तियाँ शामला जी (सौराष्ट्र) से प्राप्त हुई है। लगभग 6ठी शती ई० की एक अखण्डित मूर्ति शामलाजी के विश्रामघाट मे एक मन्दिर मे पूजी जाती है और दूसरी बडौदा सग्रहालय मे है (स०स०-2 550)। दोनो मूर्तियो मे ऊँचे मुकुटधारी तीन तीन मानव मुख है और आठ-आठ हाथ हैं। चौथा मुख पीछे होने के कारण अकित नही है। विश्रामघाट के मन्दिर वाली मूर्ति का अण्डाकार बडा परिकर विभिन्न अवतारो ऋषियो तथा देवताओ से भरा है। केवल चक्रधारी एक बाएँ हाथ को छोड शेष खण्डित है। बडौदा सग्रहालय वाली मूर्ति का परिकर भाग अशत खण्डित है और नीचे का भाग भी खण्डित है। इस मूर्ति की भी सभी भुजाएँ टूट चुकी है।[1]

योगनारायण

भारतीय वाडमय मे शिव को योगीश्वर अर्थात योगियो के स्वामी कहा गया है और विष्णु को योगेश्वर अर्थात योग के ज्ञाता-विशेषज्ञ। भारतीय मूर्तिकला मे पालथी मारकर योग अथवा ध्यान मुद्रा मे बैठे विष्णु की मूर्तियाँ पाई गई है यद्यपि उनकी सख्या बहुत कम है। योगनारायण विष्णु का मूर्ताकन प्राय मध्यकाल मे हुआ था। लखनऊ तथा इलाहाबाद सग्रहालयो मे वास्तुखण्डो अथवा मुख्य मूर्ति के रथिका बिम्बो मे योगासन मुद्रा मे विष्णु का अकन मिलता है। उन्हे मुख्यरूप से अकित करने वाला एक शिला फलक सिरोनखुर्द (ललितपुर उ०प्र०) से मिला है और झॉसी सग्रहालय की निधि है (स०स० 81 188)। इस मूर्ति मे विष्णु के सामान्य हाथ गोद मे ध्यानमुद्रा मे रखे दिखाई दे रहे है और उनके अतिरिक्त दाये तथा बाये हाथो मे गदा तथा चक्र

1 उमाकान्त प्रेमानन्द शाह *स्कल्पचर्स फ्राम शामलाजी ऐण्ड रोडा* (बुलेटिन आव बडौदा म्यूजियम एण्ड पिक्चर गैलरी) 1960 चित्र 48 50

आयुध प्रदर्शित है। दोनो आयुधो के ऊपर मालाधारी विद्याधर उपस्थित है। देहरादून के लेफ्टिनेण्ट कर्नल कुलदीप चन्द्र शर्मा के निजी सग्रहालय की एक योगनारायण मूर्ति डा० शिवदयाल त्रिवेदी ने पचाल पत्रिका के पॉचवे अक (प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी स्मृति विशेषाक) मे प्रकाशित की है। कमलगटटे पर पद्मासन पर योगमुद्रा मे बैठे वनमाला और किरीटधारी विष्णु के दाएँ हाथो मे वरदाक्ष और शख तथा बाएँ हाथो मे गदा एव चक्र है (चित्र 18)। मथुरा जोधपुर तथा इन्दौर सग्रहालयो मे भी योगनारायण की मूर्तियॉ प्रदर्शित है।

कुल मिलाकर विष्णु की मूर्तियो के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित है–

1 प्राय चतुर्भुज स्वरूप
2 आयुध शख चक्र गदा और पद्म या अभय
3 विशेष आभूषण किरीट कुण्डल
4 वक्ष पर घुटनो तक लम्बी वनमाला या वैजयन्ती माला
5 वक्ष पर श्रीवत्स प्रतीक
6 वाहन गरुड

2 ब्रह्मा

भारतीय देवमण्डल मे पौराणिक त्रिमूर्ति का महत्त्व बढ गया था। ब्रह्मा का इस त्रिमूर्ति मे पहला स्थान था। वे सृष्टिकर्ता प्रजापति थे। पुराणो मे उन्हे स्वय जन्म लेने के कारण स्वयभू कहा गया है। महाभारत मे प्रजापति धाता विधाता पितामह सृष्टा आदि उनके अनेक नामो का उल्लेख है। ब्रह्मपुराण मे उन्हे सृष्टिकर्ता पालनकर्ता और सहारकर्ता रूप मे अकित किया गया था। परन्तु धीरे धीरे उनकी महत्ता कम होने लगी और उन्हे केवल सृष्टिकर्ता के रूप मे ही मान्यता मिल सकी।

विष्णु ब्रह्मा मत्स्य अग्नि तथा श्रीमद्भागवत पुराणो के अनुसार नारायण (विष्णु) की नाभि से निकले कमल पर ब्रह्मा का उद्भव हुआ। इसीलिए उन्हें कमलयोनि अथवा पद्मयोनि कहा जाता है। बृहत्सहिता मे ब्रह्मा को कमल पर आसीन कमण्डल लिए दो भुजा तथा चार मुखो वाला बताया गया है किन्तु विष्णुधर्मोत्तरपुराण मे उन्हे कमण्डलु और अक्षमाला लिए हुए चार भुजाओ तथा चार मुखो वाला जटाधारी स्वरूप दिया गया है। मत्स्यपुराण मे ब्रह्मा को चतुर्मुख और कमण्डलु स्रुव दण्ड आदि धारण किए चार भुजाओ वाला हस पर आरूढ अथवा कमलासीन बताया गया है। उनके बाएँ पार्श्व मे सावित्री तथा दाये पार्श्व मे सरस्वती का भी उल्लेख है। अग्निपुराण (149/3) मे उन्हे बडे उदर वाला (बृहज्जठरमण्डल) तथा लम्बी दाढी-मूँछ वाला (लम्बकूर्च) कहा गया है। वस्तुत ब्रह्मा की सकल्पना वृद्ध ब्राह्मण के रूप मे की गई थी। यज्ञकर्ता ब्राह्मण के स्रुक और स्रुवा तभी उनके आयुध माने गए। माला कमण्डलु और वेद (पुस्तक) भी उनके ब्राह्मण होने के परिचायक है। सक्षेप मे ब्रह्मा की मूर्तियो के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं–

1 चतुर्मुख चतुर्भुज और बृहतोदर (बडे पेट वाला)
2 कमण्डलु स्रुव अक्षमाला दण्ड अथवा पुस्तकाकार वेद धारण करने वाला
3 कमलासन तथा हस वाहन
4 जटाधारी अथवा मुकुटधारी एव श्मश्रुयुक्त (दाढी मूँछ समेत)। किन्तु दाढी मूँछे केवल बीच वाले मुख मे ही दिखाई गई है पार्श्वमुखो मे नही।

प्रमुख देवो मे तथा त्रिमूर्ति मे प्रथम होने पर भी ब्रह्मा की स्वतत्र उपासना इतना विस्तार न पा सकी कि शिव विष्णु सूर्य और गणेश देवो जैसा उनका भी पृथक सम्प्रदाय विकसित हो पाता। इसीलिए ब्रह्मा के मन्दिर भी विरल है। एक मात्र राजस्थान मे पुष्कर तीर्थ मे ब्रह्मा का मन्दिर है जहॉ उनकी स्वतत्र पूजा

की जाती है। इसी प्रकार गुजरात मे खेडा ब्रह्म ब्रह्मा का पवित्र केन्द्र माना जाता है। परन्तु फिर भी देश भर मे मिली ब्रह्मा की मूर्तियॉ उनके प्रतिष्ठित अस्तित्त्व का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं। रामायण और महाभारत बोद्ध ग्रथ ललितविस्तर और दिव्यावदान तथा जैन ग्रथ अगविज्जा म ब्रह्मा का पूजनीय उल्लेख मिलता हे।

यद्यपि पचाल-नरेश प्रजापतिमित्र के सिक्को पर और बुद्ध के ससर्ग मे सॉची शिल्प मे ब्रह्मा को उकेरा जा चुका था तथापि उनकी लक्षणयुक्त स्वतत्र मूर्तियो का निमाण गुप्तकाल से प्रारम्भ हुआ था। उन्हे प्राय तीन मुखो वाला उकेरा गया है। क्योकि पीछे वाला चौथा मुख दिखाई नही पडता है। परन्तु मथुरा से मिली एकाध मूर्तियो मे ऊपर की ओर चौथा मुख भी बना दिया गया है। मथुरा के अतिरिक्त दशावतार मन्दिर देवगढ उदयगिरि (विदिशा) खजुराहो तथा भारतीय सग्रहालय कलकत्ता भारत कला भवन वाराणसी राज्य सग्रहालय लखनऊ और झॉसी एव इलाहाबाद के सग्रहालयो मे ब्रह्मा की मूर्तियॉ देखी जा सकती है। वे स्थानक तथा आसनस्थ दोनो रूपो मे है। उमामहेश्वर मूर्तिशिल्प के प्रभाव मे आकर भारतीय शिल्पियो ने ब्रह्मा का अकन ब्रह्माणी के साथ आलिगन मुद्रा मे भी किया है। ऐसे अकन उमामहेश्वर सूर्य विष्णु आदि की मूर्तियो के रथिकाबिम्ब के रूप मे पाए गए है।

❑

आयुध प्रदर्शित है। दोनो आयुधो के ऊपर मालाधारी विद्याधर उपस्थित है। देहरादून के लेफ्टिनेण्ट कर्नल कुलदीप चन्द्र शर्मा के निजी सग्रहालय की एक योगनारायण मूर्ति डा० शिवदयाल त्रिवेदी ने पचाल पत्रिका के पॉचवे अक (प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी स्मृति विशेषाक) मे प्रकाशित की है। कमलगटटे पर पद्मासन पर योगमुद्रा मे बैठे वनमाला और किरीटधारी विष्णु के दाएँ हाथो मे वरदाक्ष और शख तथा बाएँ हाथो मे गदा एव चक्र है (चित्र 18)। मथुरा जोधपुर तथा इन्दौर सग्रहालयो मे भी योगनारायण की मूर्तियॉ प्रदर्शित है।

कुल मिलाकर विष्णु की मूर्तियो के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित है–

1 प्राय चतुर्भुज स्वरूप
2 आयुध शख चक्र गदा और पद्म या अभय
3 विशेष आभूषण किरीट कुण्डल
4 वक्ष पर घुटनो तक लम्बी वनमाला या वैजयन्ती माला
5 वक्ष पर श्रीवत्स प्रतीक
6 वाहन गरुड

2 ब्रह्मा

भारतीय देवमण्डल मे पौराणिक त्रिमूर्ति का महत्त्व बढ गया था। ब्रह्मा का इस त्रिमूर्ति मे पहला स्थान था। वे सृष्टिकर्ता प्रजापति थे। पुराणो मे उन्हे स्वय जन्म लेने के कारण स्वयभू कहा गया है। महाभारत मे प्रजापति धाता विधाता पितामह सृष्टा आदि उनके अनेक नामो का उल्लेख है। ब्रह्मपुराण मे उन्हे सृष्टिकर्ता पालनकर्ता और सहारकर्ता रूप मे अकित किया गया था। परन्तु धीरे धीरे उनकी महत्ता कम होने लगी और उन्हे केवल सृष्टिकर्ता के रूप मे ही मान्यता मिल सकी।

विष्णु ब्रह्मा मत्स्य अग्नि तथा श्रीमद्भागवत पुराणो के अनुसार नारायण (विष्णु) की नाभि से निकले कमल पर ब्रह्मा का उद्भव हुआ। इसीलिए उन्हें कमलयोनि अथवा पद्मयोनि कहा जाता है। बृहत्सहिता मे ब्रह्मा को कमल पर आसीन कमण्डल लिए दो भुजा तथा चार मुखो वाला बताया गया है किन्तु विष्णुधर्मोत्तरपुराण मे उन्हे कमण्डलु और अक्षमाला लिए हुए चार भुजाओ तथा चार मुखो वाला जटाधारी स्वरूप दिया गया है। मत्स्यपुराण मे ब्रह्मा को चतुर्मुख और कमण्डलु स्रुव दण्ड आदि धारण किए चार भुजाओ वाला हस पर आरूढ अथवा कमलासीन बताया गया है। उनके बाएँ पार्श्व मे सावित्री तथा दाये पार्श्व मे सरस्वती का भी उल्लेख है। अग्निपुराण (149/3) मे उन्हे बडे उदर वाला (बृहज्जठरमण्डल) तथा लम्बी दाढी मूँछ वाला (लम्बकूर्च) कहा गया है। वस्तुत ब्रह्मा की सकल्पना वृद्ध ब्राह्मण के रूप मे की गई थी। यज्ञकर्ता ब्राह्मण के स्रुक और स्रुवा तभी उनके आयुध माने गए। माला कमण्डलु और वेद (पुस्तक) भी उनके ब्राह्मण होने के परिचायक है। सक्षेप मे ब्रह्मा की मूर्तियो के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं–

1 चतुर्मुख चतुर्भुज और बृहतोदर (बडे पेट वाला)
2 कमण्डलु स्रुव अक्षमाला दण्ड अथवा पुस्तकाकार वेद धारण करने वाला
3 कमलासन तथा हस वाहन
4 जटाधारी अथवा मुकुटधारी एव श्मश्रुयुक्त (दाढी मूँछ समेत)। किन्तु दाढी मूँछे केवल बीच वाले मुख मे ही दिखाई गई है पार्श्वमुखो मे नही।

प्रमुख देवो मे तथा त्रिमूर्ति मे प्रथम होने पर भी ब्रह्मा की स्वतत्र उपासना इतना विस्तार न पा सकी कि शिव विष्णु सूर्य और गणेश देवो जैसा उनका भी पृथक सम्प्रदाय विकसित हो पाता। इसीलिए ब्रह्मा के मन्दिर भी विरल हैं। एक मात्र राजस्थान मे पुष्कर तीर्थ मे ब्रह्मा का मन्दिर है जहॉ उनकी स्वतत्र पूजा

की जाती है। इसी प्रकार गुजरात मे खेडा ब्रह्म ब्रह्मा का पवित्र केन्द्र माना जाता है। परन्तु फिर भी देश भर मे मिली ब्रह्मा की मूर्तियॉ उनके प्रतिष्ठित अस्तित्त्व का साक्ष्य प्रस्तुत करती हे। रामायण और महाभारत बोद्ध ग्रथ ललितविस्तर ओर दिव्यावदान तथा जैन ग्रथ अगविज्जा म ब्रह्मा का पूजनीय उल्लेख मिलता हे।

यद्यपि पचाल-नरेश प्रजापतिमित्र के सिक्को पर और बुद्ध के ससर्ग म सॉची शिल्प मे ब्रह्मा को उकेरा जा चुका था तथापि उनकी लक्षणयुक्त स्वतत्र मूर्तियो का निर्माण गुप्तकाल से प्रारम्भ हुआ था। उन्हे प्राय तीन मुखो वाला उकेरा गया है। क्योकि पीछे वाला चौथा मुख दिखाई नही पडता है। परन्तु मथुरा से मिली एकाध मूर्तियो मे ऊपर की ओर चौथा मुख भी बना दिया गया है। मथुरा के अतिरिक्त दशावतार मन्दिर देवगढ उदयगिरि (विदिशा) खजुराहो तथा भारतीय सग्रहालय कलकत्ता भारत कला भवन वाराणसी राज्य सग्रहालय लखनऊ और झॉसी एव इलाहाबाद के सग्रहालयो मे ब्रह्मा की मूर्तियॉ देखी जा सकती है। वे स्थानक तथा आसनस्थ दोनो रूपो मे है। उमामहेश्वर मूर्तिशिल्प के प्रभाव मे आकर भारतीय शिल्पियो ने ब्रह्मा का अकन ब्रह्माणी के साथ आलिगन मुद्रा मे भी किया है। ऐसे अकन उमामहेश्वर सूर्य विष्णु आदि की मूर्तियो के रथिकाबिम्ब के रूप मे पाए गए है।

❑

चतुर्थ अध्याय
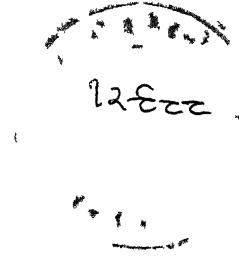
शैव देव-मूर्तियो के प्रमुख लक्षण

1 शिव

शिव भारत के सर्वाधिक पूज्य दव है। उन्हे देवाधिदेव महादेव कहा जाता है। वे सर्वव्यापी है। गोल आकाश ही उनका शीश है उसकी कालिमा ही उनके केश है और चन्द्र उनकी शिरोभूषा है। तभी उन्हे व्योमकेश और चन्द्रशेखर कहा जाता है। उन्हे सर्वज्ञ माना गया है। उनके तीन नेत्र ही तीन वेद (ऋक यजुर और साम) तीन गुण (सत रज तम) तीन शक्तियॉ (ज्ञान इच्छा और क्रिया) और सृजन पालन तथा सहार तीन क्रियाशील स्वरूप है। तभी कालिदास ने कुमारसभव (7/44) मे कहा था– एकेव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा। शिव का मुख्य आयुध त्रिशूल भी उनकी त्रिगुणात्मक शक्ति का ही प्रतीक जान पडता है।

शिव ज्ञान के मूल श्रोत है। उनकी दया से अज्ञान का विनाश होता है। अज्ञान का विनाश यानी कामनाओ इच्छाओ का विनाश। यही कामदहन है यही उनका सहार रूप है। शिव अजन्मा स्वयभू सनातन सर्वव्यापी और त्रिकालदर्शी माने जाते है। वृषभ शिव का वाहन है। वृषभ वस्तुत धर्म का प्रतीक है। वे कैलास पर्वत पर निवास करते हैं शीश पर गगा और चन्द्र धारण करते है। यह तीनो शीतलता प्रदान करते है और विषपान करने वाले नीलकण्ठ शिव का ताप दूर करते है। चन्द्र और गगा निर्मलता तथा पवित्रता के प्रतीक भी है। उनका आयुध त्रिशूल त्रिताप (दैहिक दैविक भोतिक) को दूर करता है। सर्प उनके आभूषण है जो शिव के कालजयी होने का प्रमाण प्रस्तुत करते है। उनके शरीर पर लगी भस्म ससार की नश्वरता का प्रतीक है और उनका डमरू सगीत कला और साहित्य का स्रोत है।

इस प्रकार शिव की सामान्य मूर्तियो के प्रमुख लक्षण निम्न है–

1 अक्षमालाओ तथा अर्द्धचन्द्र से सुसज्जित ऊँचा जटाजूट
2 गले भुजाओ आदि पर सर्प एव रुद्राक्ष आभूषण
3 शीश पर गगा की धारा (इसका अकन गुप्तकाल से पहले नही पाया जाता है)।
4 वृषभ (बैल) वाहन
5 त्रिशूल तथा डमरू मुख्य आयुध
6 मस्तक पर तीसरा नेत्र जो कुषाणकाल मे आडा किन्तु गुप्तकाल से खडा बनाया जाने लगा।
7 ऊर्ध्वलिग।

इन लक्षणो से सयुक्त शिव की मूर्तियॉ लखनऊ के राज्य सग्रहालय झॉसी सग्रहालय मथुरा सग्रहालय एव इलाहाबाद सग्रहालय मे बहुत बडी सख्या मे सग्रहीत है। शामलाजी (सौराष्ट) से प्राप्त और बडौदा सग्रहालय मे प्रदर्शित स्थानक चतुर्भुजी शिव की एक अत्यन्त सुन्दर गुप्तकालीन 5वी शती की मूर्ति है (स०स०-2 544)। त्रिभगमुद्रा मे खडे शिव के हाथो मे क्रमश रुद्राक्षमाला त्रिशूल सर्प और कटिहस्त है। सादे गोल प्रभामण्डल अलकृत जटाजूट त्रिनेत्र कुण्डल वलय कगन कण्ठा से विभूषित हल्की मुस्कान बिखेरते शिव के पीछे उनका वाहन खडा है। मूर्ति अत्यत आकर्षक है और गुप्तकला का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है (चित्र 28) ।[1]

1 उमाकान्त प्रेमानन्द शाह *स्कल्पचर्स फ्राम शामलाजी ऐण्ड रोडा* (बुलेटिन ऑव बडौदा म्यूजियम ऐण्ड पिक्चर गैलेरी) 1960 चित्र 1

शिव के सहस्रनाम महाभारत म गिनाए गए है। नामो के ही समान उनके सहस्रो रूप भारतीय मूर्तिकला म दिखाई देते है। मोटे तौर पर शिव का मूर्ताकन दो कोटियो म रखा जा सकता है–

लिग विग्रह और प्रतिमा विग्रह।

लिग विग्रह

भारत के कोने-कोने मे शिव के मन्दिर शिवालय मौजूद है जिनमे शिवलिग स्थापित है। शिव की प्रतिमाओ से पहले लिग रूप मे ही उनकी पूजा प्रचलित थी और वह प्रतिमाओ के निर्माण के बाद भी आज तक लोकप्रिय है। शिव अनादि और अनन्त माने जाते हैं। लिग मे भी कोई ओर छोर नही होता है। शिवलिग मे दो भाग होते है– एक नीचे की गोल पीठिका या वेदी और दूसरा इसके बीच मे स्थापित सुडौल गोल लिग। इस लिग का ऊपरी सिरा भी गोल ही रहता है। वेदी शक्ति का और लिग शिव का प्रतीक है। दोनो का मिलन सृष्टि का कारण बनता है। शिवशक्तिसमायोगात जायते सृष्टि कल्पना'। इन्ही की प्रार्थना करते हुए कालिदास ने अपने काव्य ग्रथ रघुवश (1/1) मे उन्हे जगत का माता पिता कहा है- जगत पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।

शिवलिग के तीन भाग होते है जो तीनो शक्तियो (सृजन पालन और सहार) के एकात्मक स्वरूप के परिचायक है। गोल आधार को ब्रह्मभाग कहा जाता है। इसे गौरीपटट और योनिपीठ भी कहते है। शैव आगम इसे प्रकृति तथा इसके बीच स्थापित लिग को पुरुष मानते है। लिग का ऊपरी भाग रुद्रभाग कहलाता है और यही भाग पूजनीय होता है। उसके नीचे बीच वाला भाग विष्णुभाग के नाम से जाना जाता है। शिल्पग्रथ विष्णुधर्मोत्तरपुराण मे इन्हे भोगपीठ भद्रपीठ और ब्रह्मपीठ कहा गया है तथा इन्हे क्रमश गोल अठपहलू तथा चौपहलू बनाने का निर्देश दिया गया है। मयमत शिल्पग्रथ मे लिग विग्रह तीन प्रकार के बताए गए हैं– निष्कल सकल मिश्र लिग चेति त्रिधा मतम अर्थात

निष्कल लिग	सादे बिना किसी मूर्ति के (स्थाणुलिग)
सकल लिग	मूर्ति के साथ लिग (विग्रहलिग)
मिश्र लिग	केवल मुख सहित लिग (मुखलिग)

निष्कल लिग तो समूचे देश मे मिलते हैं। द्वितीय-प्रथम शती ई०पू० के सकल लिग भीटा कौशाम्बी मथुरा (सभी उ०प्र०) नॉद (राजस्थान) आदि स्थानो से मिले हैं। सकल लिग का सबसे अधिक सुन्दर और उपयुक्त उदाहरण दक्षिण भारत के गुडीमलम मे है। प्रथम शती ई०पू० के इस शिवलिग के सहारे शिव की आपादमस्तक मूर्ति भी बनाई गई है (चित्र 19)। लगभग ऐसा ही एक शिवलिग (कुषाणकालीन) मथुरा-सग्रहालय मे है तथा दूसरा सप्रति फिलाडेल्फिया-सग्रहालय (अमरीका) की शोभा बढा रहा है। कामा (भरतपुर राजस्थान) से प्राप्त और अजमेर-सग्रहालय मे सरक्षित दो ऐसे ही शिवलिग हैं। एक पर लिग की चार दिशाओ मे ब्रह्मा (उत्तर) विष्णु (पश्चिम) शिव (दक्षिण) और सूर्य (पूर्व) अन्य आकृतियो के साथ बैठे दिखाए गए हैं (स०स० 1-25-16)। दूसरे लिग मे ऊपर चतुर्मुख बने हैं और उसके नीचे इन चारो देवो की आपादमस्तक मूर्तियॉ स्थानक मुद्रा मे उकेरी गई है (स०स० 1-26-15)। ये दोनो शिवलिग गुप्तकाल के है। चतुर्मुख शिवलिग के नीचे स्थानक मुद्रा मे चारो दिशाओ मे अकित देव-मूर्तियो वाला एक अन्य सकल लिग (9वी 10वी शती) मेवाड क्षेत्र के कल्याणपुर नामक गॉव मे मिला है और आज भी पूजा जाता है।

मिश्र लिग भी देश मे बहुत बडी सख्या मे मिले हैं। इन्हे मुखलिग भी कहा जाता है। मुखलिग भी कई प्रकार के होते है– एकमुखलिग द्विमुखलिग चतुर्मुखलिग और पचमुखलिग अथवा पचास्य लिग। पचमुखलिग भी बहुत कम मिले हैं। पचमुखलिग शिव के सद्योजात वामदेव अघोर तत्पुरुष तथा ईशान रूपो का समेकित प्रदर्शन है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण मे इन सभी की मूर्तियो की प्रतीकात्मकता का विवेचन मिलता है। सद्योजात=पृथिवी

वामदेव=जल (जिसे स्त्री रूप मे माना गया है) अघोर=अग्नि तत्पुरुष=वायु तथा ईशान=आकाश। इन्ही पचतत्त्वा को शिव के पॉच मुखो के माध्यम से अकित किया जाता है। वस्तुत ये पॉच मुख पॉच तत्त्वो के और लिग ससार की सृष्टि का प्रतीक है।

कुषाणकाल तथा गुप्तकाल मे एक से बढकर एक सुन्दर मुखलिगो का निर्माण किया गया था। मथुरा कौशाम्बी कन्नोज भीटा (सभी उ०प्र०) ग्वालियर नचना कुठार खोह (सभी म०प्र०) तथा नॉद (राजस्थान) आदि स्थानो से सुन्दर मुखलिग पाए गए है (चित्र 20 24 26)। पॉच मुखो को अकित करने वाला एक पचास्य शिवलिग भीटा इलाहाबाद (उ०प्र०) से मिला है। चार दिशाओ मे बने चार मुखो के ऊपर पॉचवॉ धढ है। शुगकालीन यह पचास्य लिग विरल कोटि का है। ठठिया (कन्नौज उ०प्र०) के एक मध्यकालीन शिवालय मे स्थापित शिवलिग मे पॉच मुख बने है। चार दिशाओ मे चार मुख और पॉचवॉ ऊपर स्त्रीमुख (वामदेव) बना है। आगरे मे सन 1985 ई० मे पुलिस द्वारा चोरो से बरामद की गई मूर्तियो मे भी एक पचमुखी शिवलिग था। इसमे पॉचो मुख जटाजूट दाढी तथा मूॅछो वाले थे (चित्र 25)।[1]

अष्टमूर्ति

शैव सम्प्रदाय के पॉच पथो मे पाशुपत पथ मे शिव के आठ आकार माने गए है।[2] इनका उल्लेख कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल नामक ग्रथ (1/1) मे और तेवर भेडाघाट तथा शिवरीनारायण (सभी म०प्र०) अभिलेखो मे पाया गया है। अभिज्ञान शाकुन्तल के आधार पर वासुदेव विष्णु मिराशी ने भेडाघाट अभिलेख (1125 ई०) मे वर्णित शिव के आठ शरीर की व्याख्या आकाश सूर्य चन्द्र अग्नि पृथिवी याजक और जल के रूप मे की है। इसकी पुष्टि शिवरीनारायण अभिलेख (1167-68 ई०) से भी होती है (सूर्यचन्द्रमसौ सम हुतभुजा यस्य त्रयी चतुषामुच्छ्रवासेषु मरुत्तनौ वसुमती सौष्टमूर्ति शिवम)। किन्तु विश्वम्भर शरण पाठक ने तेवर अभिलेख (जिला गुना म०प्र०) मे आए अष्टमूर्ति के उल्लेख का अर्थ शर्व भव ईशान रुद्र उग्र भीम पशुपति और महादेव आकारो से ग्रहण किया है। स्व० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अष्टमूर्ति के लिए आठ वसुओ को माना है जिसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण (6/1/3/1-18) तथा साख्यायन सूत्र मे किया गया है। शिव पचतत्त्व मन अहकार तथा स्थूल पदार्थ से समानता रखने वाले आठ रूपो को धारण करने वाले है।[3]

अष्टमूर्ति शिव के गुप्तयुगीन दो शिवलिग कामा (भरतपुर राजस्थान) से मिले है जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। आठ मुखलिगो वाला एक शिवलिग मन्दसौर (म०प्र०) मे लगभग 40 वर्ष पहले शिवना नदी मे एक धोबी को मिला था। 2 33 मीटर ऊॅचा और 3 55 मी० परिधि वाले इस अष्टमुख शिवलिग को पशुपतिनाथ के नाम से एक नए मन्दिर में स्थापित कर दिया गया है। यह शिवलिग छठी शती का माना जाता है।

प्रतिमा विग्रह

शिव की प्रतिमाएॅ भी नाना रूपो मे ऑकी गई है। मोटे तौर पर शिव की मूर्तियो को निम्न कोटियो मे रक्खा जा सकता है–

1 एकल मूर्तियॉ

इनमे शिव का एकाकी अकन पाया जाता है। ऐसी मूर्तियो मे शिव को नीलकण्ठ चन्द्रशेखर वृषवाहन दक्षिणामूर्ति लिगोद्भव भिक्षाटन अजएकपाद सदाशिव लकुलीश नटराज भैरव महाकाल आदि अनेक रूपो मे उकेरा गया है।

1 *साप्ताहिक हिन्दुस्तान* नई दिल्ली 15 मार्च 1986 मे प्रकाशित छायाचित्र की अनुकृति।

2 *रघुवश 2/35*

3 वासुदेवशरण अग्रवाल शिव का स्वरूप *कालिदास ग्रथावली* एव अष्टमूर्तिशिव *महादेव द ग्रेट गॉड शिव* वाराणसी *1966*

2 युगुल मूर्तियॉ

युगुल मूर्तियो मे अर्द्धनारीश्वर हरिहर कल्याणसुन्दर वीणाधर अक्षक्रीडा उमामहेश्वर रावणानुग्रह आदि स्वरूपो की गणना है।

3 सहार मूर्तियॉ

समय समय पर शिव ने अनक असुरो का सहार किया था। उनके इस स्वरूप का अकन करने वाली मूर्तियो मे कामान्तक गजान्तक अन्धकान्तक ओर त्रिपुरान्तक शिव मुख्य हे। शिव मूर्तियो को सौम्य अनुग्रह नृत्य उग्र सहार और दम्पति कोटि मे भी रक्खा जा सकता है। अब नीचे शिव के विभिन्न स्वरूपो की मूर्तियो के सक्षेप मे लक्षण दिये जा रहे है।

नीलकण्ठ

पौराणिक आख्यान के अनुसार देवो और असुरो ने मिलकर जब समुद्र का मथन किया तब उसमे से जो चौदह रत्न निकले उनमे विष भी था। अमृत तो देव और असुर सभी पीना चाहते थे पर विष कौन पिए? अन्त मे ससार की भलाई को ध्यान मे रखकर देवाधिदेव महादेव शिव ने विषपान किया । विष से मृत्यु होना स्वाभाविक है इसलिए उन्होने विष को अपने कण्ठ मे ही रोक लिया पिया नही। विष के प्रभाव से शिव का गला जलकर नीला पड गया और तभी वे नीलकण्ठ कहलाए।

नीलकण्ठ शिव का अकन चित्रकला मे तो सहज सरल है परन्तु मूर्तिकला मे रग का अभाव रहने से ऐसी मूर्तियॉ विरल है। फिर भी हमे कालिजर (बॉदा उ०प्र०) तथा पाली (ललितपुर उ०प्र०) मे एक एक नीलकण्ठ मन्दिर होने की जानकारी है। कालिजर मन्दिर के गर्भगृह मे गहरे नीले रग के पत्थर का एक बेलनाकार एकमुखी शिवलिग है। लिग के मध्य मे कोणाकार रूप मे जटाजूटधारी शिव का मुख है जो विषपान की जलन के कारण खुला हुआ है और उनके विस्फारित नेत्र इसका साक्ष्य प्रकट करते हैं। श्मश्रुधारी (दाढीयुक्त) शिव का यह स्वरूप नीलकण्ठ का है। पाली के नीलकण्ठ मन्दिर मे एक विशाल त्रिमूर्ति है। बायी ओर के मुख के खुले अधरो से विष की धार लगी है जो शिव के एक बाएँ हाथ मे पकडे हुए प्याले से आ रही है। उनके अन्य हाथो मे खटवाग डमरू अक्षमाला समेत अभयमुद्रा अग्निपुज समेत बीजपूरक त्रिशूल अक्षमाला और शूल है (चित्र 27)[1] । विषपायी नीलकण्ठ की ये मूर्तियॉ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शिव के इस स्वरूप मे विषपात्र विस्फारित नेत्र खुला मुख और विषधारा उनके नीलकण्ठ होने के प्रमुख लक्षण है।

चन्द्रशेखर

जब शिव के जटाजूट मे मस्तक के ऊपर अर्द्धचन्द्र की शिरोभूषा हो तो उन्हे चन्द्रशेखर कहा जाता है। शिव के मस्तक पर चन्द्र की उपस्थिति उनके विषपान से उत्पन्न जलन को शान्त करने के लिए है क्योकि चन्द्र अपनी शीलता के लिए प्रसिद्ध है (चित्र 28)।

वृषवाहन

जब शिव की मूर्ति को उनके वाहन वृष (बैल) के साथ बनाया जाता है तब वह उनका वृषवाहन रूप कहलाता है। अधिकाश शिव-मूर्तियो मे वृष का अकन किया गया है (चित्र 28)।

दक्षिणामूर्ति

शिव योग ज्ञान और सगीत के परम ज्ञाता माने जाते है। जब योग ज्ञान अथवा सगीत विद्या का उपदेश देते हुए उन्हे अकित किया जाता है तब वे दक्षिणामूर्ति कहलाते है। कहा जाता है कि उपदेश देते समय शिव दक्षिणाभिमुखी रहते है इसीलिए उन्हे दक्षिण शिव अथवा दक्षिणामूर्ति शिव कहा गया है। मन्दिरो मे

1 महेन्द्र वर्मा बुन्देलखण्ड के नीलकण्ठ मन्दिर *पचाल* 8 (1995) पृ० 53 55 चित्र 11

दक्षिणामूर्ति शिव को प्राय दक्षिणी भित्ति पर ही प्रतिस्थापित किया गया है। शिल्पग्रथ विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3/108/17) भी ऐसा ही निर्देश देता है– ज्ञान मुनिभ्य प्रतिपादयन्त त दक्षिणामूर्तिमुदाहरन्ति । दक्षिणामूर्ति शिव दक्षिण भारत मे अधिक लोकप्रिय थे। वहॉ उनकी मूर्तियॉ अधिक सख्या मे उकेरी गई थी। उत्तरी भारत मे उनकी मूर्तियॉ विरल है। फिर भी दक्षिणामूर्ति शिव के कुछ उदाहरण उत्तर भारत मे भी मिले है। इनमे सर्वाधिक उल्लेखनीय और प्राचीन उदाहरण उत्तर प्रदेश के बरेली जिले मे अहिच्छत्रा से प्राप्त एक मृण्मूर्ति है (स०स० 10170)। इसमे चतुर्भुजी शिव के अतिरिक्त हाथो मे अक्षमाला (?) तथा मगलघट है सामान्य दायॉ हाथ खण्डित है तथा बायॉ जघा पर अवस्थित सदर्शन मुद्रा मे है। शिव के बाएँ पार्श्व मे अजलिमुद्रा मे सभवत पार्वती और उसके पीछे एक पुरुष अनुचर है (चित्र 29)। मध्ययुगीन वीणाधर दक्षिणामूर्ति की मूर्तियॉ भदरवार रेवान (झॉसी) तथा कालिजर (बॉदा) मे भी पाई गई है।[1]

लिगोद्भव

लिगोद्भव जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है यह शिव के लिग से प्रकट होने वाला रूप है। वायु कूर्म और लिग पुराण के अनुसार एक बार जब ब्रह्मा और विष्णु लिग का आदि और अन्त नही ढूँढ पाए तब शिव स्वय लिग से प्रकट होकर देवाधिदेव महादेव बने। उनके इस रूप का अकन भी प्राय दक्षिण भारत मे ही अधिक लोकप्रिय हुआ था। कॉची के कैलासनाथ मन्दिर पटटदकल के विरूपाक्ष मन्दिर एलोरा की कैलास गुफा आलमपुर के स्वर्गब्रह्मा मन्दिर तथा तिरूमेयम के सत्यगिरीश्वर मन्दिर मे लिगोद्भव शिव के अकन पाए गए है (चित्र 30)। उत्तरी भारत मे भी इनके कई अकन मिले हैं।

सभवत लिगोद्भव का प्राचीनतम अकन रगमहल (राजस्थान) से गुप्तकालीन एक मृत्फलक पर पाया गया है। इसमे लिग का ओर छोर न पाकर ब्रह्मा और विष्णु उसके अगल बगल खडे होकर शिव का स्तवन करते हुए दिखाए गए है। यह अकन लिगोद्भव कथा का समूचा अकन प्रस्तुत करता है।[2] गुप्तकालीन दो लिगोद्भव मूर्ति-फलको की ओर हमारा ध्यान नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी ने खीचा है।[3] उनमे एक भारत कला भवन (स०स० 154) मे प्रदर्शित है और दूसरा वाराणसी के मीरघाट मुहल्ले के एक घर की दीवार मे चिपका है (चित्र 31)। राजस्थान से 10वी शती का एक ऐसा ही सुन्दर प्रस्तर फलक सीकर जनपद से मिला है जो अजमेर के राजपूताना-सग्रहालय मे है (स०स०-1 (27) 324)।

शिव के लिगोद्भव रूप मे प्राय उन्हे लिग के बीच खडे पद्मदल जैसे फलक मे बनाया जाता है। लिग के दोनो ओर ज्योति-स्वरूप ज्वालाओ का अकन होता है और प्राय ब्रह्मा तथा विष्णु को भी उकेरा जाता है। परन्तु सीकर जिले की हर्षगिरि नामक पहाडी से प्राप्त और राजपूताना-सग्रहालय अजमेर मे प्रदर्शित इस प्रस्तर शिवलिग मे शिव का अकन नही है। इस लिग के बीच मे एक स्थाणु (स्तभ) है। बायी ओर चतुर्मुखी चतुर्भुजी ब्रह्मा और दायी ओर चतुर्भुजी किरीटधारी विष्णु त्रिभग मुद्रा मे खडे है। उनके ऊपर क्रमश उडते हुए ब्रह्मा को और नीचे की ओर उल्टे गिरते हुए विष्णु का अकन है। सबसे ऊपर मालाधारी विद्याधर है।[4]

1 जितेन्द्र कुमार नवीन शैव प्रतिमाएँ *सग्रहालय पुरातत्त्व पत्रिका* स० 45-46 1990 पृ० 107 108
2 नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी *प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान* पटना 1977 पृ० 54
3 *वही* रेखाचित्र 40 32 पृ० 51 58
4 यू०सी० भटटाचार्य *अजमेर म्यूजियम कैटेलॉग* फलक 7

भिक्षाटनमूर्ति

शिव को भिक्षाटन करने वाले स्वरूप मे भी अकित किया गया है। इसकी कथा पदमपुराण के सृष्टिखण्ड (17/35-48) मे आती है।[1] सहस्रो वर्षो तक चलने वाले ब्रह्मा के यज्ञ मे शिव भिक्षाटन के लिए पहुँचे। ब्रह्मा ने जब हॉ कह दिया तब शिव अपना कपालपात्र (भिक्षापात्र) वही रखकर पुष्कर तीर्थ मे स्नान करने के लिए चले गए। उनके जाने पर ब्रह्मा ने अपवित्र कपाल को यज्ञमण्डप से हटवाने का प्रयत्न किया किन्तु एक कपाल के हटाने पर वहॉ दूसरा कपाल प्रकट होने लगा। अत विवश होकर ब्रह्मा को शिव के लिए भिक्षा मे पुरोडाश का भाग देना पडा।

शिव की भिक्षाटन मूर्ति का एक फलक लखनऊ सग्रहालय (स०स०एच-104) मे है। इसमे शिव के त्रिशूल को आयुधपुरुष के रूप मे दिखाया गया है। मथुरा से मिली यह मूर्ति परवर्ती गुप्तकाल की है।[2]

अजएकपाद

शिव की कुछ मूर्तियो मे उनका केवल एक पैर ही दिखाया गया है और उनका मुख अज (बकरे) का बनाया गया है। उनके इस स्वरूप के कारण ही उन्हे अजएकपाद कहा गया है। महाभारत के शान्तिपर्व मे (208 19) उन्हे कुबेर और अहिर्बुधन्य के साथ धन सरक्षण करने वाला माना गया है।

अजएकपाद का एक मृत्फलक रगमहल से प्राप्त और बीकानेर सग्रहालय मे प्रदर्शित है (स०स० 224 बी०एम०)। द्विभुजी अज मुख वाली इस मूर्ति मे हाथी का एक ही पैर बनाया गया है। मूर्ति के वक्ष पर यज्ञोपवीत का अकन है[3] (चित्र 32) ।

सदाशिव

ब्रह्मा विष्णु और महेश के गुणो के समन्वित स्वरूप मे सदाशिव चतुष्पाद का अकन पाया जाता है। इसमे प्राय दो स्तरो मे तीन तीन के छ मुख होते है और ऊपर लिग रहता है। प्राय मूर्ति चतुर्भुजी और चतुष्पाद वाली रहती है। दो पैर पद्मासन मुद्रा मे तथा दो प्रलम्बपाद मुद्रा मे होते है। ये चारो पैर चारो शैव सिद्धान्तो के प्रतीक हैं। शिव पुराण की वायवीय सहिता (2/10/30) मे धर्म को चतुष्पाद कहा गया है जिसमे ज्ञान चर्या क्रिया और योग की गणना है। खजुराहो से 10वी-11वी शती ई० की कुछ सदाशिव प्रतिमाएँ मिली हैं जो षण्मुखी अष्टभुजी और चतुष्पाद वाली हैं।

लकुलीश

लकुलीश शिव पशुपति सम्प्रदाय के प्रमुख देव हैं। इस मत की प्रतिस्थापना लकुलीश नामक आचार्य ने की थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय के मथुरा स्तभ लेख मे इस पथ की गुरु शिष्य परपरा का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि इस पथ का प्रारभ बहुत पहले हो चुका था।

लकुलीश शब्द लकुट या लगुड (दण्ड) से बना है। इसी आधार पर शिव के इस स्वरूप की पहचान होती है। लकुलीश की मूर्ति के दो प्रमुख लक्षण हैं– एक उनका दण्ड और दूसरा ऊर्ध्वलिग। गुप्तकालीन लकुलीश की बैठी और खडी मुद्रा मे एक एक मूर्ति मथुरा सग्रहालय मे है (स०स०-45 3211 एव 29 1931 चित्र 33)। हिगजालजगढ से 12वी शती की एक सुन्दर लकुलीश की मूर्ति मिली है जो केन्द्रीय सग्रहालय इन्दौर मे है।

1 नी० पु० जोशी० *प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान* पृ० 41
2 *वही* चित्र 18
3 *वही* पृ० 31

दक्षिणामूर्ति शिव को प्राय दक्षिणी भित्ति पर ही प्रतिस्थापित किया गया है। शिल्पग्रथ विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3/108/17) भी ऐसा ही निर्देश देता है– ज्ञान मुनिभ्य प्रतिपादयन्त त दक्षिणामूर्तिमुदाहरन्ति। दक्षिणामूर्ति शिव दक्षिण भारत मे अधिक लोकप्रिय थे। वहॉ उनकी मूर्तियॉ अधिक सख्या मे उकेरी गई थी। उत्तरी भारत मे उनकी मूर्तियॉ विरल है। फिर भी दक्षिणामूर्ति शिव के कुछ उदाहरण उत्तर भारत मे भी मिले है। इनमे सर्वाधिक उल्लेखनीय और प्राचीन उदाहरण उत्तर प्रदेश के बरेली जिले मे अहिच्छत्रा से प्राप्त एक मृण्मूर्ति है (स०स० 10170)। इसमे चतुर्भुजी शिव के अतिरिक्त हाथो मे अक्षमाला (?) तथा मगलघट है सामान्य दायॉ हाथ खण्डित है तथा बायॉ जघा पर अवस्थित सदर्शन मुद्रा मे है। शिव के बाऍ पार्श्व मे अजलिमुद्रा मे सभवत पार्वती और उसके पीछे एक पुरुष अनुचर है (चित्र 29)। मध्ययुगीन वीणाधर दक्षिणामूर्ति की मूर्तियॉ भदरवार रेवान (झॉसी) तथा कालिजर (बॉदा) मे भी पाई गई हैं।[1]

लिगोद्भव

लिगोद्भव जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है यह शिव के लिग से प्रकट होने वाला रूप है। वायु कूर्म और लिग पुराण के अनुसार एक बार जब ब्रह्मा और विष्णु लिग का आदि और अन्त नही ढूँढ पाए तब शिव स्वय लिग से प्रकट होकर देवाधिदेव महादेव बने। उनके इस रूप का अकन भी प्राय दक्षिण भारत मे ही अधिक लोकप्रिय हुआ था। कॉची के कैलासनाथ मन्दिर पटटदकल के विरूपाक्ष मन्दिर एलोरा की कैलास गुफा आलमपुर के स्वर्गब्रह्मा मन्दिर तथा तिरूमेयम के सत्यगिरीश्वर मन्दिर मे लिगोद्भव शिव के अकन पाए गए है (चित्र 30)। उत्तरी भारत मे भी इनके कई अकन मिले हैं।

सभवत लिगोद्भव का प्राचीनतम अकन रगमहल (राजस्थान) से गुप्तकालीन एक मृत्फलक पर पाया गया है। इसमे लिग का ओर छोर न पाकर ब्रह्मा और विष्णु उसके अगल बगल खडे होकर शिव का स्तवन करते हुए दिखाए गए है। यह अकन लिगोद्भव कथा का समूचा अकन प्रस्तुत करता है।[2] गुप्तकालीन दो लिगोद्भव मूर्ति फलको की ओर हमारा ध्यान नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी ने खीचा है।[3] उनमे एक भारत कला भवन (स०स० 154) मे प्रदर्शित है और दूसरा वाराणसी के मीरघाट मुहल्ले के एक घर की दीवार मे चिपका है (चित्र 31)। राजस्थान से 10वी शती का एक ऐसा ही सुन्दर प्रस्तर फलक सीकर जनपद से मिला है जो अजमेर के राजपूताना-सग्रहालय मे है (स०स० 1 (27) 324)।

शिव के लिगोद्भव रूप मे प्राय उन्हे लिग के बीच खडे पद्मदल जैसे फलक मे बनाया जाता है। लिग के दोनो ओर ज्योति-स्वरूप ज्वालाओ का अकन होता है और प्राय ब्रह्मा तथा विष्णु को भी उकेरा जाता है। परन्तु सीकर जिले की हर्षगिरि नामक पहाडी से प्राप्त और राजपूताना-सग्रहालय अजमेर मे प्रदर्शित इस प्रस्तर शिवलिग मे शिव का अकन नही है। इस लिग के बीच मे एक स्थाणु (स्तभ) है। बायी ओर चतुर्मुखी चतुर्भुजी ब्रह्मा और दायी ओर चतुर्भुजी किरीटधारी विष्णु त्रिभग मुद्रा मे खडे है। उनके ऊपर क्रमश उडते हुए ब्रह्मा को और नीचे की ओर उल्टे गिरते हुए विष्णु का अकन है। सबसे ऊपर मालाधारी विद्याधर है।[4]

1 जितेन्द्र कुमार नवीन शैव प्रतिमाऍ *सग्रहालय-पुरातत्त्व पत्रिका* स० 45-46 1990 पृ० 107 108
2 नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी *प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान* पटना 1977 पृ० 54
3 *वही* रेखाचित्र 40 32 पृ० 51 58
4 यू०सी० भटटाचार्य *अजमेर म्यूजियम कैटेलॉग* फलक 7

भिक्षाटनमूर्ति

शिव को भिक्षाटन करने वाले स्वरूप मे भी अकित किया गया है। इसकी कथा पदमपुराण के सृष्टिखण्ड (17/35-48) मे आती है।[1] सहस्रो वर्षो तक चलने वाले ब्रह्मा के यज्ञ मे शिव भिक्षाटन के लिए पहुँचे। ब्रह्मा ने जब हॉ कह दिया तब शिव अपना कपालपात्र (भिक्षापात्र) वही रखकर पुष्कर तीर्थ मे स्नान करने के लिए चले गए। उनके जाने पर ब्रह्मा ने अपवित्र कपाल को यज्ञमण्डप से हटवाने का प्रयत्न किया किन्तु एक कपाल के हटाने पर वहॉ दूसरा कपाल प्रकट होने लगा। अत विवश होकर ब्रह्मा को शिव के लिए भिक्षा मे पुरोडाश का भाग देना पडा।

शिव की भिक्षाटन मूर्ति का एक फलक लखनऊ सग्रहालय (स०स०एच-104) मे है। इसमे शिव के त्रिशूल को आयुधपुरुष के रूप मे दिखाया गया है। मथुरा से मिली यह मूर्ति परवर्ती गुप्तकाल की है।[2]

अजएकपाद

शिव की कुछ मूर्तियो मे उनका केवल एक पैर ही दिखाया गया है और उनका मुख अज (बकरे) का बनाया गया है। उनके इस स्वरूप के कारण ही उन्हे अजएकपाद कहा गया है। महाभारत के शान्तिपर्व मे (208 19) उन्हे कुबेर और अहिर्बुधन्य के साथ धन सरक्षण करने वाला माना गया है।

अजएकपाद का एक मृत्फलक रगमहल से प्राप्त और बीकानेर सग्रहालय मे प्रदर्शित है (स०स० 224 बी०एम०)। द्विभुजी अज मुख वाली इस मूर्ति मे हाथी का एक ही पैर बनाया गया है। मूर्ति के वक्ष पर यज्ञोपवीत का अकन है[3] (चित्र 32) ।

सदाशिव

ब्रह्मा विष्णु और महेश के गुणो के समन्वित स्वरूप मे सदाशिव चतुष्पाद का अकन पाया जाता है। इसमे प्राय दो स्तरो मे तीन तीन के छ मुख होते है और ऊपर लिग रहता है। प्राय मूर्ति चतुर्भुजी और चतुष्पाद वाली रहती है। दो पैर पद्मासन मुद्रा मे तथा दो प्रलम्बपाद मुद्रा मे होते है। ये चारो पैर चारो शैव सिद्धान्तो के प्रतीक है। शिव पुराण की वायवीय सहिता (2/10/30) मे धर्म को चतुष्पाद कहा गया है जिसमे ज्ञान चर्या क्रिया और योग की गणना है। खजुराहो से 10वी-11वी शती ई० की कुछ सदाशिव प्रतिमाएँ मिली हैं जो षण्मुखी अष्टभुजी और चतुष्पाद वाली हैं।

लकुलीश

लकुलीश शिव पशुपति सम्प्रदाय के प्रमुख देव है। इस मत की प्रतिस्थापना लकुलीश नामक आचार्य ने की थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय के मथुरा स्तभ लेख मे इस पथ की गुरु-शिष्य परपरा का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि इस पथ का प्रारभ बहुत पहले हो चुका था।

लकुलीश शब्द लकुट या लगुड (दण्ड) से बना है। इसी आधार पर शिव के इस स्वरूप की पहचान होती है। लकुलीश की मूर्ति के दो प्रमुख लक्षण हैं– एक उनका दण्ड और दूसरा ऊर्ध्वलिग। गुप्तकालीन लकुलीश की बैठी और खडी मुद्रा मे एक एक मूर्ति मथुरा सग्रहालय मे है (स०स०-45 3211 एव 29 1931 चित्र 33)। हिगजालजगढ से 12वी शती की एक सुन्दर लकुलीश की मूर्ति मिली है जो केन्द्रीय सग्रहालय इन्दौर मे है।

1 नी० पु० जोशी० *प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान* पृ० 41
2 *वही* चित्र 18
3 *वही* पृ० 31

नटराज

शिव नृत्य सगीत के आचार्य माने जाते है। सगीत के सात स्वर उनकी डमरू से निकले बताए जाते है। नृत्य के वे परम ज्ञानी थे। इसीलिए उन्हे नटराज कहा गया है। शिव के नृत्य दो प्रकार के थे– लास्य और ताण्डव। लास्य नृत्य पार्वती को प्रसन्न करने के लिए शान्तमुद्रा मे और ताण्डव नृत्य अपस्मार दैत्य के मर्दन के लिए कोपमुद्रा मे किया जाता है। लास्य का एक सुन्दर उदाहरण हिगलाजगढ की मध्यकालीन नटेश मूर्ति मे प्रदर्शित है। त्रिभग मुद्रा मे नृत्यत खडे शिव के दाएँ हाथो मे अभयाक्ष और त्रिशूल तथा बाएँ हाथो मे मदिरापात्र और वीणा है। सादे प्रभामण्डल तथा जटामुकुट एव त्रिनेत्र से सयुक्त शिव की स्मित मुद्रा दर्शनीय है। उनके बाये एक देवी आसन पर बैठी शिव की ओर मुँह ऊपर उठाकर देख रही है। यह निश्चित रूप मे पार्वती है। शिव की बायी ओर घुटना पृथिवी पर टिकाकर अजलिबद्ध मुद्रा मे एक गण बैठा है जिसकी जटाएँ स्पष्ट है।[1]

ताण्डव शिव भारतीय कला मे अधिक सख्या मे ऑके गए है। उनका यह नटराज स्वरूप भी उत्तर की अपेक्षा दक्षिण भारत मे अधिक लोकप्रिय रहा है। तमिलनाडु का चिदम्बरम मन्दिर शिव के इसी रूप को समर्पित हे। इस मन्दिर के प्रवेश द्वार के दोनो कपाटो पर नृत्य की 108 मुद्राओ का अकन है और मन्दिर की मुख्य प्रतिमा नटराज शिव की हे। दक्षिण मे पत्थर और कॉसे की अनेक नटराज प्रतिमाएँ पाई गई है। उत्तर भारत मे गुप्तकालीन नटराज शिव की एक अति सुन्दर प्रतिमा मध्यप्रदेश के नचना कुठार स्थान से प्राप्त हुई थी जो कलामर्मज्ञा स्व० श्रीमती पुपुल जयकर के निजी सग्रह मे थी (चित्र 34)। खजुराहो मे भी नटराज शिव की पॉच या छ मूर्तियॉ है। बादामी एलोरा हम्पी आदि मध्य भारत के स्थानो से भी नटराज शिव के मूर्ताकन मिले है। राज्य सग्रहालय लखनऊ मे नृत्य करते शिव के कई मूर्तिखण्ड है (स०स० एच 57 एच 180 56 470 57 321)। इनमे प्रथम दो प्रतिमाओ का प्राप्ति स्थल अज्ञात है तीसरी अष्टभुजा (मिर्जापुर) से तथा चौथी ऊँचगॉव (सीतापुर) से मिली है। ये सभी प्रतिमाएँ मध्यकाल की है।

नटराज शिव की मूर्तियो के प्रमुख लक्षण निम्न है–

1 चतुर्भुजी षडभुजी अष्टभुजी दशभुजी षोडसभुजी शिव के अधिकाश हाथ नृत्यमुद्रा मे (प्राय एक हाथ गजहस्त मुद्रा में)।
2 अग्निपुज हिरन डमरू मदिरापात्र सर्प अभयमुद्रा प्रमुख आयुध।
3 ताण्डव नृत्य मे शिव का एक पैर नीचे पडे अपस्मार दैत्य के ऊपर और दूसरा नृत्यमुद्रा मे आगे की ओर बढा हुआ तथा कुछ ऊपर उठा हुआ।
4 ताण्डव नृत्य मे शिव की उडती जटाएँ।
5 दक्षिण भारतीय कास्य नटराज मूर्तियो मे प्रभामण्डल समूची मूर्ति को घेरकर बनाया गया था और अग्निपुज की पक्ति से सजाया गया था। इसकी अपेक्षा उत्तरी भारत की मूर्तियो मे सामान्य प्रभामण्डल बनाया गया था (चित्र 35) ।

अर्द्धनारीश्वर

अर्द्धनारीश्वर की परिकल्पना भारतीय प्रज्ञा की अनूठी देन है। एक ही देव मे आधा अग पुरुष का और आधा नारी का मानकर माता पिता के सम्मिलन से सृष्टि के होने का सकेत ससार की अन्य सभ्यताओ मे दुर्लभ है। लिगपुराण (99/8) मे लिग और वेदी के सयोग को ही अर्द्धनारीश्वर कहा गया है– लिगवेदी समायोगात अर्द्धनारीश्वरोमवेत। श्रीमद्भागवतपुराण (4/4/3) के अनुसार प्रेम के वशीभूत होकर शिव ने अपना आधा अग पार्वती को दे दिया था। विष्णुपुराण (1/7/13) मे एक कथा आती है कि ब्रह्मा के मस्तक से रुद्र प्रकट हुए जिनका आधा अग नारी का और आधा तेजवान पुरुष का था।

1 द्रष्टव्य *पुरातन* (भोपाल) अक 6 1989 रगीन चित्र (बीच के पृष्ठो पर)।

विष्णुधर्मोत्तर[1] तथा मत्स्य[2] पुराणो मे अर्द्धनारीश्वर की मूर्ति निमाण का विशद वर्णन पाया जाता हे। विष्णुधर्मोत्तरपुराण शिव के इस स्वरूप को गोरीश्वर कहता हे। उसके अनुसार एकमुखी इस मूति का आधा दक्षिण भाग शिव का ओर आधा वाम भाग उमा का होना चाहिए। शिव भाग मे चन्द्रभूषा सहित जटाजूट और उमाभाग मे तिलक सीमन्त (मॉग) तथा अलके बनानी चाहिए। दक्षिण (दाएँ) भाग मे सर्प का यज्ञोपवीत सर्पमेखला तथा ऊर्ध्वलिग ओर हार विभूषित वाम भाग मे गोल बडा और सघन स्तन तथा वज्र वैदूर्य मणि की मेखला बनानी चाहिए। दाएँ हाथो मे कपाल तथा त्रिशूल ओर बाएँ (उमा के) हाथो मे दर्पण तथा उत्पल (कमल) होना चाहिए।

अर्द्धनारीश्वर की मूर्तियाँ देश भर मे पाई गई है। कुषाणकाल से ही मथुरा के कलाकारो ने अर्द्धनारीश्वर की मूर्तियाँ गढना प्रारम्भ कर दिया था। मथुरा के एक प्रस्तर फलक पर अर्द्धनारीश्वर विष्णु लक्ष्मी तथा कार्त्तिकेय के एक साथ अकन मिले है जो तत्कालीन शैव तथा वैष्णव सम्प्रदायो के बीच सदभावनापूण एकता के साक्षी है।

नेवल (उन्नाव उ०प्र०) से प्राप्त ओर नई दिल्ली के राष्ट्रीय सग्रहालय मे प्रदर्शित (स०स० 66 613) गुप्तयुगीन अर्द्धनारीश्वर का एक मृण्मय शीश उल्लेखनीय है। प्रतिहारकालीन मूर्तिकला का एक उत्तम उदाहरण स्थानक अर्द्धनारीश्वर के रूप मे कन्नौज सग्रहालय की शोभा बढा रहा है (चित्र 36) । इस मूर्ति के पीछे बौद्ध देवी तारा का अकन है। रथिकाबिम्बो मे अर्द्धनारीश्वर के दो मूर्तिखण्ड लखनऊ के राज्य-सग्रहालय (एच-15 एव 65 171) मे हे। पहली मूर्ति के तीन हाथ खण्डित है। बाये एक हाथ मे दर्पण है। त्रिभगमुद्रा मे खडी मूर्ति के अग सामान्य भूषा मे है। शिव की ओर उनका वाहन वृषभ बैठा है और उमा की ओर एक परिचारिका खडी है। दूसरी मूर्ति कर्णप्रयाग (चमोली) से प्राप्त हुई है। इसका ऊपरी भाग गोलाकार है और प्रभामण्डल सा जान पडता है। समभग मुद्रा मे खडी मूर्ति का दायॉ भाग अक्षमाला सहित वरद और त्रिशूल लिए वृषभ के साथ शिव का तथा बायॉ भाग कुण्डल स्तन और नीचे तक साडी पहने तथा दर्पण और जलपात्र लिए उमा का है। गुप्तकालीन नृत्य करते अर्द्धनारीश्वर की एक अति सुन्दर मूर्ति नचना कुठार (पन्ना म०प्र०) से तथा दूसरी मैहर (सतना म०प्र०) से मिली है। अन्य अनेक अर्द्धनारीश्वर-मूर्तियाँ मध्यप्रदेश (मन्दसौर हिगलाजगढ रीठी सागर खजुराहो विदिशा आदि) राजस्थान (झालावाड चित्र 37) तथा महाराष्ट्र (एलोरा) से भी मिली है। दक्षिण भारत मे भी 20 से अधिक अर्द्धनारीश्वर के अकन उपलब्ध हुए है।

हरिहर

हरि यानी विष्णु और हर यानी शिव। विष्णु और शिव के स्वरूप जब एक ही मूर्ति मे हो तो उसे हरिहर कहा जाता है। विभिन्न शिल्प-ग्रथो मे हरिहर मूर्ति के निर्माण के निर्देश मिलते है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण

1 एकवक्त्रो भवेच्छम्भुर्वामार्थदयितातनु । द्विनेत्रश्च महाभाग सर्वाभरणभूषित ।।
गौरीशर्वेति विख्याता सर्वलोकनमस्कता।।
अर्द्धदेवस्य नारी तु कर्तव्य शुभलक्षणा। अर्द्ध तु पुरुष कार्येस्सर्वलक्षणभूषित ।।
ईश्वरार्धे जटाजूट कर्तव्य चन्द्रभूषितम। उमार्धे तिलक कुर्यात सीमन्तमलक तथा।।
नागोपवीतिन चार्धमर्धं हारविभूषितम। वामार्धे तु स्तन कुर्यात घन पीन सुवर्तुलम।।
मेखला दापयेत्तत्र वज्रवैडूर्यभूषितम। उर्ध्वलिग महेशार्धं सर्पमेखलामण्डिताम।।
—*विष्णुधर्मोत्तरपुराण* 3/55/4 12

2 कपाल दक्षिणे करे।
त्रिशूल वापि कर्तव्य देवदेवस्य शूलिन । वामतो दर्पण दद्यादुत्पल तु विशेषत ।।
—*मत्स्यपुराण* 260/3 4

(108/35-38) के अनुसार हरिहर की मूर्ति मे दायॉ भाग शिव का और बायॉ भाग विष्णु का बनाया जाना चाहिए। शिव के हाथो मे त्रिशूल और वरदमुद्रा तथा विष्णु के हाथो मे चक्र और पद्म दिखाना चाहिए। उनके पार्श्व मे वृषभ तथा गरुड के अकन भी किए जाने चाहिए।[1] मत्स्यपुराण मे इस मूर्ति को शिवनारायण कहा गया है।[2] लखनऊ के राज्य-सग्रहालय मे हरिहर की तीन मूर्तियॉ है (स०स०एच-119 48 258 66 88)। समभग मुद्रा मे खडी लगभग 8वी शती की विन्ध्य पत्थर पर उकेरी हरिहर की एक सुन्दर मूर्ति का दायॉ भाग शिव का और बायॉ विष्णु का है। शिव के शीश पर सर्प विभूषित जटाजूट हाथो मे चक्र और शख तथा वक्ष पर वनमाला है (चित्र 38)। शेष दो मूर्तियो के केवल शीश है जिनका दायॉ भाग जटाजूट से और बायॉ किरीट से विभूषित है। दोनो मध्ययुगीन है। हरिहर की दो मूर्तियॉ इलाहाबाद सग्रहालय मे है। पॉचवी शती की एक मूर्ति इलाहाबाद जिले के कुतरी गॉव से मिली है (स०स० ए०एम०292) और दूसरी नौवी शती की है और मानिकपुर (प्रतापगढ) से प्राप्त हुई है (स०स० ए०एम० 564)। 11वी शती की काले पत्थर पर बनी स्थानक मुद्रा वाली एक चतुर्भुज हरिहर की मूर्ति भारत कला भवन सग्रहालय मे है। (स०स० 23653)। दाये जटाभार और बाये किरीटमुकुट धारी मूर्ति के दाये हाथो मे अभयाक्ष और पृथिवी पर टिका लम्बे दण्ड वाला त्रिशूल तथा बाये हाथो मे शख और चक्र है। ग्रैवेयक वनमाला और केयूर से विभूषित मूर्ति का पदमद्लाकित किनारे वाला प्रभामण्डल है। मूर्ति सर्वथा अखण्डित और दर्शनीय है।

हरिहर की एक प्रतिमा बादामी (कर्नाटक) मे तथा दस खजुराहो मे मिली है। सभी प्रतिमाऍ स्थानक (खडी) हैं। इसी प्रकार मध्यप्रदेश के दुर्ग जिले मे स्थित नगपुरा तथा देवरबीजा के शिव मन्दिरो की भित्तियो पर हरिहर का अकन है । कलचुरिकालीन (10-13वी शती ई०) इन मूर्तियो मे शिव के हाथो मे त्रिशूल और बीजपूरक है तथा विष्णु के हाथो मे चक्र तथा सनाल पद्म है। विदिशा से प्राप्त सबसे प्राचीन (चौथी शती ई०) हरिहर की मूर्ति नई दिल्ली के राष्ट्रीय सग्रहालय (स०स० दि० 672) मे है।

8वी शती की एक मनोज्ञ हरिहर प्रतिमा ओसियॉ (जोधपुर राजस्थान) मे है। चतुर्भुजी स्थानक प्रतिमा के दाऍ हाथो मे अभयाक्ष और त्रिशूल तथा बाऍ हाथो मे शख और चक्र है। जटा किरीट वाली इस मूर्ति के बायी ओर वनमाला और दायी ओर कपालमाला बनाई गई है। शिवभाग की ओर एक त्रिशूलधारी तथा विष्णुभाग की ओर एक पद्मधारी सेवक खडे है। शिव का वाहन वृषभ भी अकित है। 11वी शती की हरिहर की स्थानक एव आसनस्थ मूर्तियॉ हिगलाजगढ (मन्दसौर म०प्र०) से भी प्राप्त हुई हैं। हरिहर की एक मूर्ति ग्वालियर-सग्रहालय मे है जो दो कारणो से उल्लेखनीय है। पहला कारण यह कि इसमे शिव को बाये और विष्णु को दाये दिखाया गया है और दूसरा यह कि शिल्पी ने इस मूर्ति के लिए ऐसे प्रस्तर का चुनाव किया है जिसका बायॉ भाग सफेद और दायॉ भाग नीला है। इससे शिल्पग्रथो मे उल्लिखित शिव और विष्णु के वर्ण का पालन स्वाभाविक रूप से हो गया है।

कल्याणसुन्दर

जब शिव को उनकी अर्द्धागिनी उमा के साथ बनाया जाता है तब इन्हे प्राय दम्पति मूर्तियॉ कहा जाता है। इन्हे मिथुन और युगुल मूर्तियॉ भी कहते है। इन दम्पति मूर्तियो को प्राय उन्हे अकित आख्यान के नाम

1 कार्य हरिहरस्यापि दक्षिणार्ध सदाशिव । वाममर्ध हृषीकशश्श्वेतनीलाकृति क्रमात्।।
वरत्रिशूलचक्राब्जधारिणो बाहव क्रमात्। दक्षिणे वृषभ पार्श्वे वामे विहगराट।।
—*विष्णुधर्मोत्तरपुराण* 3/108/35 36

2 शिवनारायण वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम।
वामार्द्धे माधव विद्यात् दक्षिणे शूलपाणिनम् । बाहुद्वय च कृष्णस्य मणिकेयूरभूषितम्।।
शखचक्रधर ।
दक्षिणार्धं जटामारमर्द्धेन्दुकृतमूषणम। भुजगहारवलय वरद दक्षिणे करम।।
द्वितीय चापि कुर्वीतत्रिशूलवरधारिणम।।
—***मत्स्यपुराण*** 260/21 23 25 26

पर जाना जाता है। इनमे प्रमुख है कल्याणसुन्दर उमामहेश्वर वीणाधर रावणानुग्रह अक्षक्रीडा आदि।

शिव और पार्वती के विवाह का आख्यान अत्यन्त विस्तार के साथ पुराणो मे पाया जाता है। महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भव नाम का एक महाकाव्य इसी विषय पर रचा है। हिमालय पवत की पुत्री पावती ने तपस्या करके शिव को वर के रूप मे प्राप्त किया। स्वय ब्रह्मा ने पुरोहित बनकर उनका विवाह सम्पन्न करवाया। इस शुभकार्य को देखने के लिए अनक देवी देवता एकत्र हुए थे। शिव और पार्वती के इस पाणिग्रहण सस्कार का दृश्याकन कल्याणसुन्दर कहलाता है। इन दृश्यो मे प्राय शिव पावती के हाथ को अपने हाथ मे लिये दिखाये जाते है। विवाह वेदी के चतुर्दिक भॉवर या विवाह के फेर (सप्तपदी) लेते हुए वर वधू को आकर्षक ढग से सजा सवॅरा दिखाया जाता है। शिव विवाह देखने के लिए जुटे देवताओ मे ब्रह्मा के अतिरिक्त विष्णु इन्द्र वरुण सूर्य कुबेर अग्नि गणेश नवग्रह सप्तमातृका आदि के अकन भी किए जाते है। लेकिन यह आवश्यक नही कि सभी कल्याणसुन्दर दृश्यो मे इन सभी देवो की उपस्थिति दर्शायी जाए।

कल्याणसुन्दर मूर्ति मे शिव और पार्वती को सदेव सप्तपदी लेते हुए खडी मुद्रा मे दिखाया जाता है। ऐसी मूर्तियो का अकन समूचे देश मे लोकप्रिय रहा है। कामॉ (भरतपुर राजस्थान) से प्राप्त और अजमेर सग्रहालय मे सग्रहीत गुप्तकालीन दो कल्याणसुन्दर मूर्ति फलक है। पाणिग्रहण मुद्रा मे खडे शिव और उमा के बीच वेदी प्रज्ज्वलित करते ब्रह्मा पुरोहित दिखाई देते है। एक फलक का ऊपरी भाग खण्डित हो चुका है। इसमे उमा और शिव के पार्श्व मे मगलघट लिए एक एक पुरुष आकृति है। शिव पार्श्व वाली मूर्ति का ऊपरी भाग नष्ट हो चुका है किन्तु उमा पार्श्व वाली मूर्ति का प्रभामण्डल और अतिरिक्त बाऍ हाथ मे चक्र इस मूर्ति को विष्णु की पहचान देती है (स०स०-1 28-13)। दूसरे फलक (स०स०-1-29-12) मे विष्णु शिव के पार्श्व मे दिखाई देते है जो अपनी वनमाला तथा बाऍ हाथ के शख आयुध से पहचाने जा सकते है। ऊपर हिमालय का आभास देने वाले परिकर मे अपने अपने वाहन पर विभिन्न देवता और दिक्पाल दिखाई देते है।

आगे चलकर उत्तर प्रदेश मे भी कल्याणसुन्दर की सुन्दर मूर्तियॉ ऑकी गई। प्राचीन पचाल जनपद के कन्नौज तथा एटा से और मथुरा से कल्याणसुन्दर की मनोहारी मूर्तियॉ मिली है जो प्रतिहार कला की अनूठी देन कही जा सकती है। कन्नौज वाली 8वी शती ई० की मूर्ति स्थानीय स्व० रामनारायण कपूर के निजी सग्रहालय मे (चित्र 39) तथा 10वी शती ई० मे निर्मित एटा वाली मूर्ति सप्रति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी के भारत कला भवन सग्रहालय की शोभा बढा रही है (स० 175)। लखनऊ के राज्य सग्रहालय मे सग्रहीत लगभग 12वी-13वी शती की एक अखण्डित मूर्ति (स०स०-52-82) मे शिव को उमा के बाये खडा और पाणिग्रहण की मुद्रा मे दिखाया गया है। नीचे अग्निवेदी मे हविष डालते पुरोहित बने ब्रह्मा को तथा फलक के चारो ओर विभिन्न देवगणो को उत्कीर्ण किया गया है। कल्याणसुन्दर मूर्ति का एक फलक प्रतापगढ जनपद के मानिकपुर नामक स्थान से मिला है और सप्रति इलाहाबाद-सग्रहालय (स०स०-ए०एम०264) मे है। आगे आगे सप्तपदी लेते शिव पीछे मुडकर उमा की ओर निहारते है और उमा का दाहिना हाथ अपने दाहिने हाथ मे पकडे हैं (पाणिग्रहण)। दोनो के बीच पुरोहित बने ब्रह्मा वेदी मे अग्नि प्रज्जवलित कर रहे है। शिव की ओर वृषभ और उमा की ओर एक अन्य आकृति है। शिव के अन्य हाथ खण्डित है और उमा के बाये हाथ मे दर्पण है। इसके अतिरिक्त ओसियॉ भरतपुर (राजस्थान) भुवनेश्वर (उडीसा) खजुराहो दशपुर पढावली (मध्यप्रदेश) एलोरा और एलीफैण्टा (दोनो महाराष्ट्र) मदुरई तजाउर (तमिलनाडु) और ढाका (बागलादेश) आदि स्थानो से भी कल्याणसुन्दर मूर्तियॉ पाई गई है।

वीणाधर

शिल्परत्न (अध्याय 22) मे दक्षिणामूर्ति शिव के चार स्वरूपो का वर्णन मिलता है– योग दक्षिणामूर्ति ज्ञान दक्षिणामूर्ति व्याख्यान दक्षिणामूर्ति और वीणाधर दक्षिणामूर्ति। वीणाधर शिव सगीत-सृष्टा के रूप मे भारतीय

सस्कृति मे स्वीकार किए गए है। सगीत के सातो स्वर उनकी डमरू से प्रकट हुए माने जाते है।

वीणाधर शिव की एकल तथा युगल दोनो प्रकार की मूर्तियाँ मिलती है। एकल वीणाधर शिव की एक एक मूर्ति उत्तर प्रदेश के भदरवार रेवान (झाँसी) बाँदा कालिजर (बाँदा) ऊँचगाँव (सीतापुर) से तथा दो कर्णप्रयाग (चमोली) से पाई गई है। ये सभी मूर्तियाँ मध्ययुगीन है। भदरवार वाली मूर्ति चतुर्भुजी है। सामान्य दोनो हाथो मे शिव ने वीणा पकड रखी है। उनके अतिरिक्त दाहिने हाथ मे त्रिशूल तथा अतिरिक्त बाये हाथ मे बीजपूरक है।[1] बाँदा से लगभग 10वी शती की एक वीणाधर शिव की एकल और नृत्यत मूर्ति मिली है जो इलाहाबाद सग्रहालय (स०स० ए०एम० 950) मे है। लगभग एक मीटर ऊँची इस प्रतिमा मे वीणा लिए नृत्यमुद्रा मे शिव अकित है। उनके अतिरिक्त बाएँ हाथ मे सर्प है। उनके दाएँ हाथ मे जो टूट गया है त्रिशूल रहा होगा क्योकि उसका दण्ड अब भी शेष है। नीचे पैरो के पास खण्डित वृषभ की आकृति तथा दोनो ओर अजलिबद्ध भक्तगण बैठे दिखाई देते है। कालिजर मे शिव के अन्य स्वरूपो वाली मूर्तियो के साथ वीणाधर स्वरूप वाली मूर्ति भी पाई गई है। लगभग सातवी आठवी शती ई० की ऊँचगाँव वाली मूर्ति मे शिव बैठे वृषभ के ऊपर नृत्य मुद्रा मे बैठे है। सामान्य हाथो मे वीणा अतिरिक्त दाये हाथ मे अभय तथा बाये मे त्रिशूल है। पदमदलाकित लगभग आयताकार प्रभामण्डल भी दर्शनीय है। कर्णप्रयाग की दोनो मूर्तियाँ लगभग समान है केवल शिव के अतिरिक्त दाये हाथ मे त्रिशूल और सामान्य हाथो मे वीणा है। दोनो मूर्तियो मे शिव को अपने वाहन वृषभ पर ललितासन मे बैठे दिखाया गया है। ये दोनो मूर्तियाँ लगभग 12वी शती की है। ऊँचगाँव और कर्णप्रयाग वाली मूर्तियाँ लखनऊ के राज्य सग्रहालय (स०स० 57 349 65 176 65 178) मे है। छठी शती ई० की शिव के वीणाधर स्वरूप की एक एकल मूर्ति राजस्थान के अमझरा नामक स्थान से मिली और उदयपुर-सग्रहालय मे सरक्षित है। चतुर्भुजी शिव के हाथो मे वीणा है उनके अतिरिक्त दाये हाथ मे त्रिशूल है। उनके शेष हाथ खण्डित है। प्रभामण्डल और जटामुकुट धारी शिव ललितासन मे अपने वाहन पर बैठे है।[2]

युगल मूर्तियो मे भी शिव का वीणाधर स्वरूप भारतीय कला मे गढा गया था। इस स्वरूप मे उमा शिव की जघा पर न बैठकर उनसे सटकर बैठी हुई तथा शिव के कधे पर अपना दाहिना हाथ रखकर उनका आलिगन करती हुई अकित की गई है। उनके बाएँ हाथ मे प्राय दर्पण अथवा पद्म होता है। शिव अपने सामान्य हाथो से वीणा धारण करते है अतिरिक्त दाये मे प्राय त्रिशूल और बाये मे या तो सर्प धारण करते है अथवा उससे उमा का आलिगन करते है। वीणाधर का यह दम्पति स्वरूप प्राय उमामहेश्वर जैसा ही रहता है। इस स्वरूप मे प्रमुख लक्षण वीणा है अन्यथा यह मूर्ति उमामहेश्वर की कही जा सकती है।

कुछ अन्य मूर्तियो के साथ वीणाधर शिव की एक दम्पति मूर्ति (9वी शती) उत्तर प्रदेश के अलमोडा जनपद मे शकुनी गाँव के सुकेश्वर मन्दिर के निकट छपडा के गोलू मन्दिर मे मिली है। उमामहेश्वर शिल्प के समान ललितासन मे बैठे शिव के सामान्य हाथो मे वीणा और अतिरिक्त दाहिने हाथ मे त्रिशूल है। उनका अतिरिक्त बायाँ हाथ उमा के कधे पर रक्खा दिखाया गया है। उमा का दाहिना हाथ शिव के कधे पर है और बाये मे दर्पण है। आसन के नीचे गणेश कार्त्तिकेय वृषभ और सिह भी अकित है।

उमामहेश्वर

विवाह के उपरान्त शिव उमा के साथ कैलास पर्वत पर नाना प्रकार की प्रेम क्रीडाएँ करने लगे। अपनी प्रिया पार्वती के ससर्ग मे उकेरी गई उनकी युगुल मूर्तियो को विभिन्न शिल्प ग्रथो मे प्राय उमामहेश्वर अथवा

1 जितेन्द्र कुमार नवीन शैव प्रतिमाएँ *सग्रहालय पुरातत्त्व पत्रिका* स० 45 46 1990 पृ० 107 08 चित्र 2

2 रत्नचन्द्र अग्रवाल *उदयपुर म्यूजियम स्कल्पचर्स* फलक 11

उमेश कहा गया हे। जिस प्रकार सम्पूण भारतीय मूर्तियो म सवाधिक सख्या शेव मूर्तियो की हे उसी प्रकार समस्त शैव मूर्तियो से सर्वाधिक सख्या शिव और उमा की दम्पति मूर्तिया की हे। उमामहेश्वर का यह मूति शिल्प रामूचे दश भर म अत्यन्त लोकप्रिय हुआ था। कुषाणकाल से प्रारम्भ होकर समूचे मध्यकाल तक यह मूर्ति शिल्प उकेरा जाता रहा।

उमामहश्वर मूति शिल्प मे पहले शिव ओर उमा को एक दूसरे का आलिगन करत हुए स्थानक (खडी) मुद्रा मे तथा बाद मे बैठी मुद्रा मे अकित किया गया था। आसनस्थ यानी बैठी मुद्रा वाला अकन अधिक लोकप्रिय हुआ इसीलिए ऐसी मूर्तियो की सख्या अधिक है। शिव को अधिकतर ललितासन या सुखासन मे बैठे तथा उमा को उनकी मुडी हुई बायी जघा पर बैठे हुए दिखाया गया है। शिव अपने एक बाये हाथ को उमा की पीठ की ओर से ले जाकर उनका कुच स्पर्श करते हुए तथा उमा अपनी दाहिनी भुजा को शिव के कधे पर रखे हुए एक दूसरे की ओर मोहक दृष्टि डालते हुए आलिगनबद्ध दिखाई देते है। कभी कभी शिव आलिगन करने के साथ साथ उमा का सलज्ज मुख अपने दाएँ हाथ की उँगलियो से ऊपर उठाते हुए भी अकित किए गए है। प्राय दोनो एक दूसरे की ओर सम्मुखीन मुद्रा मे ऑखो मे ऑखे डालकर अपलक निहारते और एक दूसरे की रूप माधुरी का रसपान करते दिखाई देते है। शिव के हाथो मे त्रिशूल सर्प बीजपूरक और यदा कदा अभय मुद्रा रहती है और उमा के बाएँ हाथ मे दर्पण अथवा पदम रहता है (चित्र 40)। देव दम्पति के अतिरिक्त इन फलको पर गणेश कार्त्तिकेय वृषभ सिह भृगी रथिकाबिम्बो मे ब्रह्मा और विष्णु विद्याधर आदि के साथ प्रभामण्डल अथवा परिकर के ऊपर प्राय पॉच शिवलिग भी अकित पाए गए है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि उमामहेश्वर की मूर्तियॉ देश भर मे बहुत बडी सख्या मे पाई गई है। उत्तर प्रदेश मे भी इन मूर्तियो को लखनऊ इलाहाबाद कम्पिल कन्नौज मथुरा झॉसी भारत कला भवन रानी महल आदि सग्रहालयो मे देखा जा सकता है। लखनऊ सग्रहालय मे लगभग 50 और मथुरा-सग्रहालय मे लगभग 70 उमामहेश्वर की मूर्तियॉ सग्रहीत है। अरैल गढवा लाच्छागिरि आदि के साथ-साथ गुर्गी जसो खजुराहो आदि मध्यप्रदेश से प्राप्त अनेक प्रतिमाएँ इलाहाबाद-सग्रहालय की शोभा बढा रही है। ललितपुर जनपद के सिरोनखुर्द नामक स्थान से प्राप्त कुछ उमामहेश्वर मूर्तियॉ झॉसी सग्रहालय मे है। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के सरहन बुजुर्ग (फतेहपुर) छपडा (अलमोडा) गोण्डाराव (हरदोई) गोपेश्वर (चमोली) अहिरनपलिया (सुल्तानपुर) रतौली (मेरठ) सतद्वारी (सोनभद्र) आदि स्थानो से भी ऐसे मूर्ति फलक पाए गए है।

रावणानुग्रह

एक बार रावण ने शिव को प्रसन्न करने के लिए घोर तपस्या की। तपस्या से प्रसन्न हुए शिव ने रावण को अभय का वरदान दिया। रावण ने शिव के वरदान की परीक्षा करनी चाही। वह कैलास पर्वत पहुँचा जहॉ शिव उमा के साथ प्रेम-क्रीडा कर रहे थे। शिवगण के द्वारा तत्काल शिव से मिलने की आज्ञा न पाकर रावण ने पूरे कैलास पर्वत को ही उठा लेना चाहा। कैलास के हिलने से उमा और शिवगणो मे हडकम्प मच गया। शिव के निकट बैठी अथवा उनके साथ अक्षक्रीडा मे मग्न उमा छिटककर दूर हो गई अथवा डरकर शिव से लिपट गई। कलचुरी-अभिलेखो मे रावण द्वारा कैलास पर्वत उठाने और पर्वत के कम्पन से डरी पार्वती द्वारा शिव को पकडने और उनके आलिगन से शिव को सुखानुभूति प्राप्त होने का वर्णन है। शिव सर्वज्ञ है। उन्होने रावण की शरारत समझ ली। इसीलिए उन्होने अपने अँगूठे से कैलास पर्वत को दबा दिया जिससे रावण भी दबने लगा। रावण की करुणापूर्ण पुकार पर शिव ने उसे क्षमा किया। यही आख्यान रावणानुग्रह कहलाता है।

भारतीय मूर्तिकला मे इस आख्यान को सुरुचिपूर्ण ढग से अकित किया गया है। सबसे पहले मथुरा के एक गुप्तयुगीन मूर्ति फलक मे यह आख्यान मिलता है। आगे चलकर मध्ययुगीन मूर्तिकला मे इसे लोकप्रियता

मिली। इसलिए मध्यकाल मे अनेक रावणानुग्रह मूर्तियॉ ऑकी गई।

मथुरा वाले फलक पर शिव से छिटककर दूर हुई और डरी हुई उमा का अकन है। आसन के नीचे राक्षस जैसे चेहरे वाला रावण दिखाया गया है। इस फलक की सभी आकृतियॉ द्विभुजी है। मध्ययुगीन मूर्तियो मे शिव को चतुर्भुज और रावण को भी बहुभुजी और कभी कभी बहुमुखी दिखाया गया है। रावणानुग्रह मूर्तियॉ उत्तर प्रदेश मे कन्नौज कम्पिल (फर्रुखाबाद) मथुरा सिरोनखुर्द (ललितपुर) आदि अनेक स्थानो से महाराष्ट्र के एलीफेण्टा और एलोरा के कई गुहा-मन्दिरो मे तथा मध्यप्रदेश के हिगलाजगढ (मन्दसौर) मोहनगढ (टीकमगढ) शमशाबाद (विदिशा) रतनपुर जबलपुर तथा ग्वालियर आदि अनेक स्थानो से पाई गई है। कन्नौज की एक लगभग 10वी शती की मूर्ति मे प्रभामण्डल के ऊपर पॉच शिवलिग और आसन के नीचे पहाड उठाता गधे के अतिरिक्त शीश वाला रावण दर्शनीय है (चित्र 41) । एलोरा की एक मूर्ति मे शिव और उमा को प्रेमक्रीडा मे लीन किन्तु कैलास के हिलने से डरी उमा शिव से लिपटकर आलिगनबद्ध दिखाई देती है। उनके आसन के नीचे बहुमुखी तथा बहुभुजी रावण की उपस्थिति से मूर्ति फलक की पहचान सरलता से हो जाती है। अक्षक्रीडा मे लीन उमामहेश्वर की एक चन्देलकालीन मूर्ति जबलपुर के रानी दुर्गावती पुरातत्त्व सग्रहालय मे भी है।

रावणानुग्रह शिव की मूर्ति मे आसन के नीचे रावण की उपस्थिति और आसन पर शिव और उमा का अकन आवश्यक है।

भैरव एव महाकाल

भैरव तथा महाकाल शिव के उग्ररूप हैं। विष्णुधर्मोत्तरपुराण मे भैरव की मूर्ति निर्माण के लिए जो निर्देश दिए गए है उनके अनुसार उनका बडा पेट गोल गोल रक्तवर्ण के लाल नेत्र बडे बडे दॉतो वाला विकराल मुख फूले हुए नथुने होने चाहिए तथा कपालमाल और सर्पो के आभूषण से युक्त रौद्र रूप होना चाहिए। शिल्पग्रथ यह भी कहता है कि सर्प से पार्वती को डराते हुए भैरव की मूर्ति बनाई जानी चाहिए। महाकाल का भी यही रूप है परन्तु उसमे पार्वती को डराने की बात नही होनी चाहिए।[1]

रूपमण्डन (अध्याय 5) के अनुसार अष्टभुजी भैरव के हाथो मे चषक खटवाग असि पाश शूल डमरू कपाल सर्प तथा वरदमुद्रा होनी चाहिए।[2] भैरव का वाहन श्वान (कूकर या कुत्ता) है जिसे प्राय उनकी मूर्तियो के साथ उकेरा जाता है। इन सबके साथ उनके मस्तक पर तीसरा नेत्र भी एक प्रमुख लक्षण है।

भैरव की मूर्ति का अकन कुषाणकाल से ही मिलने लगता है। वाराणसी कन्नौज अहिच्छत्रा खजुराहो शहडोल तथा मध्यप्रदेश के अन्य कई स्थानो से मिली भैरव की मूर्तियो मे विविध रूप दर्शाए गए है। वाराणसी से मिली चतुर्भुज भैरव की एक प्रतिमा के हाथो मे बिजोरा फल कधे पर रखा त्रिशूल खडग तथा घण्टिका है। हाथो तथा पैरो मे ककण कानो मे कुण्डल गले मे लम्बी कपाल माला पहने शिव के शीश पर जटाओ

1 लम्बोदर तथा कुर्याद वृत्तपिगल लोचनम। दष्ट्राकरालवदन फुल्लनासापुट तथा।।
कपालमालिन रौद्र सर्वत सर्वभूषणम। व्यालेन त्रासयन्त च देवीपर्वतनन्दिनीम।।
साचीकतमिद रूप भैरवस्य प्रकीर्तितम।।
महाकालस्य कथितमेतद् देव च सम्मुखम।।
देवीत्रासनकश्चास्य करे कार्यस्तु पन्नग। न चास्य पुरत कार्यो देवी पर्वतनन्दिनी ।।
—विo धo 3/59/1 2 5 6

2 खटवाग मासपाश च शूल च दधत करै। डमरू च कपाल च वरद भुजग तथा।।
—रूपमण्डन 5

को एक गोल जूडे मे बॉध दिया गया है। उनके पीछे-पीछे चलता हुआ उनका वाहन श्वान उनके हाथो के बिजोरा फल की ओर अपना मुँह उठाए हे। भैरव के लक्षणो के होते हुए भी इस मूर्ति मे रोद्र रूप न होकर सोम्य रूप है। सौम्य मुखमुद्रा ओर केश-सज्जा क आधार पर इस मूति का बटुक भैरव कहा गया है। बटुक भैरव की एक मृण्मूर्ति कन्नौज क श्री विद्याशकर मिश्र सरदार के निजी सग्रह म है। कुषाणकालीन द्विभुजी इस मूर्ति मे नृत्य करते शिव के हाथो मे चषक (प्याला) तथा घण्टिका है (चित्र 42)। आगरा के निकट किसी स्थान से प्राप्त पर्यकासन मुद्रा मे योगपटट लगाए ओर हाथो म अक्षमाला के साथ अभय चक्र पुस्तक और नागपाश लिए चतुर्मुखी तुन्दिल दाढी और ऊँचे जटाजूट वाली एक मूर्ति लखनऊ के राज्य-सग्रहालय मे है (स०स०-जी /447/66 45)। पदमप्रभामण्डलयुक्त इस प्रतिमा के आसन के नीचे एक पुरुष अपने हाथ का तकिया लगाए लेटा है और ऊपर परिकर मे विद्याधरो के अतिरिक्त अन्य आकृतियॉ भी है। पादपीठ पर नागरी लिपि मे बटुकेश्वर लेख है। सभवत यह बटुक भैरव का सकेत करती है। विद्वान ऐसा मानते है कि भैरव की मूर्तियॉ दो कोटि की है– एक सौम्य मुख वाली बटुक भैरव जो प्राय उत्तरी भारत मे ही पाई गइ है और दूसरी रौद्र मुखवाली काल भैरव जिन्हे दक्षिण भारत मे बहुतायत मे उकेरा गया था। अहिच्छत्रा की मृण्मूर्ति काल भैरव का उदाहरण है (चित्र 43)। लखनऊ के राज्य सग्रहालय मे भी महाकाल के तीन खण्डित शीश सग्रहीत है। (स०स०-एच-35 एच-15 एव 59 197)। सभी बडी-बडी गोल ऑखो तनी भृकुटी जटाजूट और त्रिनेत्र के साथ भयकर मुखाकृति वाले है। एक का जटाजूट पॉच कपालो से अलकृत है। उसके सर्पकुण्डल दाढी और बाहर निकले दॉत भी उल्लेखनीय हैं। दूसरे मुखो के भालपटट भी क्रमश दो तथा पॉच कपालो से अलकृत है।

इलाहाबाद-सग्रहालय मे भी जमसोत एव कौशाम्बी (इलाहाबाद) से प्राप्त भैरव की दो चतुर्भुज स्थानक मूर्तियॉ है (स०स०-ए०एम०-1004 ए०एम० 888)। लगभग डेढ मीटर ऊँची जमसोत वाली मूर्ति के दोनो दाएँ हाथ खण्डित है। बाएँ हाथो मे कपाल शीर्षक वाला खटवाग तथा सर्प है। दाढी-मूँछ खुला मुँह बडी-बडी गोल ऑखे और कपाल से सजा मुकुट चौडा हार मुक्तावली भुजाओ के ऊपर से निकलकर नीचे पैरो तक लटकती उत्तरीय पटिटका जिसमे भुजबन्ध का आभास देते कपाल और सुन्दर मेखला इस मूर्ति के उल्लेखनीय अग है। खण्डित सामान्य दाएँ हाथ मे बचा हुआ चषक (प्याला) है जो इस मूर्ति को पहचानने मे सहायक है। कौशाम्बी वाली अखण्डित मूर्ति-फलक का ऊपरी भाग गोल प्रभामण्डल के रूप मे है। वामन आकृति के भैरव की दाढी मूँछ खुले मुख से झॉकते फैले दॉत विचित्र केश एव गोल ऑखो से युक्त भयकर मुख है। सर्वाभरण भूषित मूर्ति के दाएँ हाथो मे चषक और डमरू तथा बाएँ हाथो मे कटयवलम्बित मुद्रा तथा त्रिशूल है। मूर्ति के एक ओर एक नारी तथा दूसरी ओर एक पुरुष आकृति है।

सहार मूर्तियॉ

समय-समय पर शिव ने कामदेव गजासुर अधकासुर तथा त्रिपुरासुर का वध किया था। उनके इन रूपो का अकन कामान्तक गजान्तक अन्धकान्तक तथा त्रिपुरान्तक नामो से जाना जाता है।

शिव की समाधि को भग करने के कारण शिव ने अपना तीसरा नेत्र खोलकर कामदेव को भस्म कर दिया था। इसलिए बाद मे कामदेव को अनग कहा जाने लगा। शिवपुराण तथा कूर्मपुराण के अनुसार दुर्गा द्वारा महिषासुर का वध कर दिये जाने के बाद उसके पुत्र गजासुर ने तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न करके उनका वरदान पा लिया और देवो को परेशान करने लगा। तब देवताओ की प्रार्थना पर शिव ने गजासुर का वध कर दिया। शिवपुराण मे ही अन्धकासुरवध् का कथानक मिलता है। पार्वती को जबरन प्राप्त करने के लिए जब अन्धकासुर ने अपनी सेना समेत शिव पर आक्रमण किया तब शिव ने उसका वध कर दिया। इसी प्रकार त्रिपुरासुर का अथवा असुरो द्वारा बनाई गई तीन पुरियो या नगरो (त्रिपुर) का विनाश करके शिव त्रिपुरान्तक कहलाए।

शिव की ये सभी मूर्तियाँ एकल न होकर दृश्याकन के रूप मे है। कामान्तक दृश्य मे शिव का समाधिस्थ रूप और उनके सामने पुष्प धनुषधारी कामदेव तथा भयभीत अथवा विलाप करती कामदेव की पत्नी रति का अकन आवश्यक है। ग गैकोण्डचोलपुरम मन्दिर की भित्ति पर कामान्तक शिव के एक फलक की ओर जे०एन० बनर्जी ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है।[1]

गजासुरवध के दृश्य मे शिव के साथ गज यानी हाथी अथवा उसका शीश अथवा गजचर्म का होना आवश्यक है। किसी दृश्य मे स्वय शिव को गजचर्म पहने दिखाया गया है। असुर विनाश से प्रसन्न शिव को प्राय नृत्य मुद्रा मे दिखाया जाता है। देवी पार्वती का अकन भी पाया जाता है। गजान्तक मूर्तियाँ कानपुर के निकट भीतरगॉव के विष्णु-मन्दिर मे ग्वालियर दुर्ग मे महोबा एलोरा के कैलास मन्दिर के नन्दीमण्डप खजुराहो ग्यारसपुर हेलबिड दारासुरम आदि स्थानो मे मिली है (चित्र 44)।

अधकासुरवध वाली मूर्तियो मे शिव को आलीढमुद्रा मे अपने त्रिशूल से अन्धकासुर पर आक्रमण करते हुए उकेरा जाता है। इन दृश्यो मे सप्तमातृकाओ तथा शिवगणो का भी अकन पाया जाता है। मत्स्यपुराण के अनुसार अधकासुर के रक्त के पृथिवी पर गिरते ही उसी के सदृश अन्य दानव उत्पन्न हो जाते थे। रक्त के पृथिवी पर गिरने से पहले पी लेने के लिए शिव ने इसीलिए मातृकाओ की उत्पत्ति की। तभी अन्धकान्तक मूर्तियो मे मातृकाओ का अकन पाया जाता है। इनके अभाव मे मूर्ति को केवल गजान्तक मानना चाहिए। अधकान्तक शिव की प्रतिमा का अकन अन्य देवी देवताओ के साथ कलचुरिकालीन देवरबीजा (दुर्ग म०प्र०) के शिव मन्दिर की जघा पर पाया गया है। दूसरी मूर्ति पीपलधार (शिवपुरी म०प्र०) से मिली है। भारतीय कलाकारो ने कुछ ऐसे भी दृश्य उकेरे है जिनमे शिव के गजान्तक तथा अन्धकान्तक दोनो रूप एक साथ दिखाई देते है। ऐसे दृश्यो के ऊपरी भाग मे गजचर्म अथवा गजशीश लिए और नाचते शिव तथा पार्वती को तथा नीचे योगेश्वरी सप्तमातृकाओ तथा शिवगणो को दिखाया गया है। लगभग 10 वी शताब्दी की एक गज अधकासुरवध मूर्ति लखनऊ के राज्य सग्रहालय (स०स० एच-17) मे है। घुटनो के नीचे वाला भाग खण्डित है। बचे हुए भाग मे शिव आलीढ मुद्रा मे है और अपने दोनो हाथो मे उठाए त्रिशूल से अधकासुर का अग विच्छेदन कर रहे है। अधक त्रिशूल के ऊपर नमस्कार मुद्रा मे दिखाई पडता है। शिव की ऊपरी दोनो भुजाओ मे गजचर्म शीश के ऊपर छत्र के समान तना है। जटाजूटधारी शिव की भालपटिटका पर कपाल द्रष्टव्य है।

अपराजितपृच्छा अशुमद्भेदागम तथा शिल्परत्न आदि शिल्पग्रथो मे त्रिपुरान्तक शिव की मूर्ति के निर्माण के लिए जो निर्देश मिलते है उनके अनुसार शिव को त्रिशूल धनुषबाण आदि युद्धास्त्रो से सयुक्त रथारूढ दिखाया जाना चाहिए। टी०ए० गोपीनाथ राव ने त्रिपुरान्तक शिव की मूर्तियो के चार उदाहरण बताए है। दो एलोरा की दशावतार तथा कैलास गुहा मन्दिरो मे तीसरा काचीवरम के कैलासनाथ मन्दिर मे तथा चौथा मदुरई मे सुन्दरेश्वर मन्दिर के मण्डप मे।[2] तजौर जनपद के पुल्लमगई गॉव मे स्थित ब्रह्मपुरीश्वर मन्दिर के गलपाद फलको मे से एक मे त्रिपुरान्तक शिव का अकन है। इसमे शिव को तीन असुरो (त्रिपुरासुर) से युद्ध करते हुए दिखाया गया है।[3] खजुराहो तथा मोडी (मन्दसौर) से भी त्रिपुरान्तक मूर्तियाँ मिली है। बृहदीश्वर मन्दिर (तजौर) मे धनुष से बाण का सधान करते त्रिपुरान्तक शिव की एक कास्य प्रतिमा है।

1 जितेन्द्रनाथ बनर्जी *डेवेलपमेण्ट आफ हिन्दू आइक्नोग्रैफी* चतुर्थ सस्करण दिल्ली 1985 पृ० 488

2 टी०ए० गोपीनाथ राव *एलिमेण्टस ऑव हिन्दू आइक्नोग्रैफी* वाल्यूम 2 भाग 1 पृष्ठ 171 72

3 जी सेतुरामन द आर्टिस्टिक सिगनीफिकेन्स ऑव द गलपाद मोटिफ्स ऑव ब्रह्मपुरीश्वर टेम्पल पुलमगई *कला* (जर्नल ऑव इण्डियन आर्ट हिस्ट्री काग्रेस गुवाहाटी) खण्ड 1 (1994 95) पृ० 37 चित्र 17

2 कार्त्तिकेय

कार्त्तिकेय को स्कन्द कुमार गुह महासेन देवसेनापति विसाख षडानन ओर सुब्रह्मण्य के नाम स जाना जाता है। 6 कृतिकाओ द्वारा पालन किए जाने के कारण उन्ह कार्त्तिकेय 6 मुखो स एक साथ 6 कृत्तिका माताओ का स्तनपान करने के कारण वे षडानन देवताओ के सेनापति होने से वे महासेन ओर देवसेना के पति होने से देवसेनापति कहलाए। सुब्रह्मण्यदेव क रूप मे उनकी पूजा केवल दक्षिण भारत तक सीमित रही है। यद्यपि शिव विष्णु सूर्य गणेश आदि के समान उनका कोई स्वतत्र सम्प्रदाय विकसित नही हुआ तथापि ईसा की प्रारभिक शताब्दियो से लेकर मध्यकाल तक वे समाज मे एक लोकप्रिय देव के रूप मे पूजे जाते रहे। यौधेय वश के राजाओ ने तो उन्ही के नाम पर शासन किया था। कुमारगुप्त के शासनकाल मे बिलसड (एटा उ०प्र०) मे महासेन का एक मन्दिर था जिसके समक्ष ऊँची प्रतोली (तोरणद्वार) बनाई गई थी। इस बात का प्रमाण बिलसड से प्राप्त कुमारगुप्त प्रथम का अभिलेख है जिसमे महासेन के मन्दिर और तोरणद्वार के निर्माण का उल्लेख हे। योधेय कुषाण नरेश हुविष्क ओर गुप्तवशी नरेश कुमारगुप्त के सिक्को पर कार्त्तिकेय का अकन मिलता है। भीटा (इलाहाबाद उ०प्र०) से सर जान मार्शल को तीसरी चौथी शती की एक मृण्मुद्रा मिली थी जिस पर पाए गए अभिलेख मे कहा गया है कि विन्ध्य क्षेत्र पर प्रभुता स्थापित करने वाले गौतमीपुत्र वृषध्वज की यह मुद्रा है जिन्होने अपना राज्य महेश्वर महासेन को समर्पित कर दिया है। कुषाणकाल से लेकर मध्यकाल तक अनेक रूपो मे कार्त्तिकेय की मूर्तियो का अकन किया गया था। उनका उल्लेख कई अभिलेखो मे भी पाया गया है। महाभारत के वनपर्व (220/9) मे रुद्र और उमा ने अग्नि और स्वाहा मे अप्ने स्वरूप से प्रवेश किया और उनकी सतति के रूप मे स्कन्द का जन्म हुआ। रुद्र शिव के परिवार मे सम्मिलित होने के बाद ही कार्त्तिकेय की प्रतिष्ठा मे वृद्धि हुई और वे देवसेनापति बने। उनके द्वारा तारक असुर का वध हुआ था। इससे उनका कल्याणकारी रूप प्रसिद्ध हुआ।

महाभारत (2/32/4-5) मे ही रोहितक क्षेत्र मे कार्त्तिकेय की व्यापक महत्ता का उल्लेख है जहॉ मत्तमयूर पथ का केन्द्र था। रोहितक (हरियाणा) क्षेत्र से यौधेयो के ऐसे अनेक सिक्के मिले है जिन पर कात्तिकेय का अकन मिलता है। महामायूरी नामक ग्रथ मे भी कार्त्तिकेय को रोहितक का लोकविश्रुत देवता माना गया है। रोहितकेय कार्त्तिकेय कुमारो लोकविश्रुत ।

बृहत्सहिता (57/5/41) मे कार्त्तिकेय का जो वर्णन मिलता है उसमे उनकी मूर्ति के लक्षण स्पष्ट हो जाते है। उसमे कहा गया है– स्कन्द कुमाररूप शक्तिधरो बर्हिकेतुश्च । अर्थात स्कन्द को कुमार के रूप मे शक्तिधर तथा बर्हिकेतु रूप मे बनाया जाना चाहिए। यानी उनके एक हाथ मे शक्ति (शूल) और दूसरे मे मयूर पक्षी होना चाहिए और उनका स्वरूप बालक (कुमार) का होना चाहिए। विष्णुधर्मोत्तरपुराण मे चतुर्भुजी कार्त्तिकेय के दाहिने हाथो मे कुक्कुट और घण्टा तथा बाएँ हाथो मे वैजयन्तीपताका और शक्ति को बनाने का विधान दिया गया है। महाभारत (3/23/16/) मे कुक्कुट को कार्त्तिकेय का क्रीडापक्षी बताया गया है– 'त्व क्रीडसे षण्मुख कुक्कुटेन यथेष्ट नानाविध कामरूपी ।

कुषाणकाल मे कार्त्तिकेय की पूजा का लोक मे प्रचार अधिक था। एक ओर उन्हे युद्ध के देवता के रूप मे मान्यता मिली थी जैसा कि यौधेयगणो के सिक्को पर उन्हे शक्तिधर के रूप मे अकित किया गया है और दूसरी ओर उन्हे मातृकाओ के साथ भी समन्वित किया गया था जैसा कि सप्तमातृका फलको पर उनके अकन से स्पष्ट है। इतना ही नही उनकी शक्ति कौमारी का सप्तमातृकाओ मे सम्मिलित होना भी उनके लोकप्रिय देवस्वरूप का परिचालक है। महाकवि कालिदास ने तो महाकाव्य कुमारसभव की रचना इसी देवता के जन्म और जीवन पर आधरित की है।

उत्तरी तथा मध्य भारत के अतिरिक्त उडीसा बगाल और दक्षिण भारत मे कार्त्तिकेय की अधिसख्य

मूर्तियॉ पाई गई है। दक्षिण भारत को छोडकर देश के अन्य भागो मे मध्यकाल के बाद कार्त्तिकेय की लोकप्रियता घटने लगी थी और 16वी 17वी शती तक आत आते भारतीय मूर्तिकला से उनका अकन प्राय समाप्त हो गया।

कार्त्तिकेय का अकन पत्थर मिटटी तथा धातु की मूर्तियो पर और सिक्को तथा मुद्राओ पर भी मिलता है। कार्त्तिकेय की उपलब्ध मूर्तियो मे उन्हे स्थानक अथवा अपने वाहन मयूर पर आसीन रूपो मे ऑका गया है। मोटे तौर पर कार्त्तिकेय मूर्तियो के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित है–

1 अधिकतर उन्हे एकमुखी एव द्विमुखी बनाया गया है। यौधेय सिक्को पर उन्हे षण्मुखी और द्विमुखी अकित किया गया है। कुछ गुप्त सिक्को पर भी उनका अकन है।
2 उनके केश प्रारम्भ मे गोल जूडे मे बॅधे है। गुप्तकालीन मूर्तियो मे वे त्रिशिखण्ड (तीन जूडो वाले) है परन्तु मुकुट पहने है।
3 प्राय उनका आयुध शक्ति (शूल) अवश्य अकित किया गया है।
4 वाहन के रूप मे मयूर का अकन प्रमुख लक्षण है और यह अधिक लोकप्रिय रहा है।
5 कभी कभी क्रीडा पक्षी के रूप मे उनके हाथ मे कुक्कुट का अकन भी मिलता है।
6 कतिपय गधार फलको पर उनके हाथ मे कुक्कुट और पैर के पास मयूर एक साथ मिलते है।[1] प्राय सभी मूर्तियो मे उन्हे बाल या किशोर रूप मे दिखाया गया है जो उनके कुमार नाम को सार्थक बनाता है।
7 कभी कभी उनका ग्रैवेयक (गले का आभूषण) दो व्याघ्रनखो और एक मध्यमणि के साथ बनाया गया था। आज भी बुरी आत्माओ से बच्चो की रक्षा करने के लिए बघनखा पहनाया जाता है।

मथुरा सग्रहालय मे उपरोक्त लक्षणो से युक्त अनेक मूर्तियॉ है। एक पर शक सवत 11 (89ई०) का तिथियुक्त लेख है। एक पर उन्हे अग्नि के ससर्ग मे उकेरा गया है (स०स०-40 2883)। कतिपय मूर्तियो मे उनके हाथ मे क्रीडा पक्षी कुक्कुट भी दिखाई देता है (स०स०-33 2332)।

कार्त्तिकेय की गुप्तकालीन एक भव्य मूर्ति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी के भारत कला भवन सग्रहालय मे है। मूर्ति मे वे मयूर के ऊपर सुखासन मे बैठे है। गोल शिरोभूषा चक्रकुण्डल केयूर व्याघ्रनख माला पहने द्विभुज कार्त्तिकेय के बाऍ हाथ मे शक्ति तथा दाहिने हाथ मे मातुलिग फल है जिसकी ओर चोच बढाकर उनका वाहन उसे खाना चाहता है। फैले मयूरपख से कार्त्तिकेय की प्रभावली बन गई है।

लखनऊ के राज्य सग्रहालय मे उत्तर प्रदेश के विभिन्न स्थानो से द्वितीय तथा 13वी शती के बीच निर्मित कार्त्तिकेय की लगभग बीस मूर्तियॉ सग्रहीत है। इन पर कार्त्तिकेय को शक्तिधारण किए खडे अथवा मयूर पर बैठे अकित किया गया है। मयूरासीन एक चौथी पॉचवी शती की मूर्ति मे उनका अकन गाधार शैली मे हुआ है। गाधार कला प्राय बौद्ध कला थी। इसलिए कार्त्तिकेय का उसमे अकन महत्त्वपूर्ण है। कार्त्तिकेय की इस मूर्ति के बाऍ हाथ मे क्रीडापक्षी कुक्कुट का भी अकन है (स०स०-49 45)। लाल बलुए पत्थर की लगभग 5वी शती की एक अन्य मूर्ति मे उनकी त्रिशिखा केश भूषा व्याघ्रनख आभूषण शक्ति आयुध तथा सादा प्रभामण्डल द्रष्टव्य है (स०स० 0 237)। लगभग 9वी शती की मयूरासीन कार्त्तिकेय की एक प्रतिमा टिहरी गढवाल के रानीहाट मन्दिर मे है। इस प्रतिमा पर देव को त्रिशिखण्ड द्विभुज फल एव शक्तिधर तथा

1 अमरीका के क्लीवलैण्ड म्यूजियम ऑव आर्ट मे दूसरी-तीसरी शती ई० का एक गाधार-फलक है (स०स० 73 76) जिसमे स्कन्द-कार्त्तिकेय और षष्ठी का एक साथ अकन है। इसमे स्कन्द के दाऍ हाथ मे शक्ति और बाऍ मे कुक्कुट है तथा उनके आसन के नीचे ऊपर को मुॅह उठाए वाहन मयूर का भी अकन है (द्रष्टव्य रत्नचन्द्र अग्रवाल स्कन्द-षष्ठी कपुल इन गाधार आर्ट *प्राग्धारा* अक 5 1994 95 पृ० 147। मथुरा (स०स० 33 2332) और लखनऊ (स०स० 49 45) सग्रहालयो मे भी ऐसी मूर्तियॉ हैं।

चक्रकुण्डल ग्रैवेयक वनमाला केयूर कगन मेखला नूपुर तथा उत्तरीय से अलकृत दिखाया गया है। देवता की नाक बायॉ हाथ तथा मयूर का मुख खण्डित है। नीचे पार्श्वो मे एक सेवक तथा एक सेविका और ऊपर वितान मे दोनो ओर मालाधारी विद्याधर है (स०स०-56 357)। कार्त्तिकेय की यह प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर है। कुशीनगर (देवरिया) से लगभग 12वी शती की एक अन्य प्रतिमा मे कार्त्तिकेय को षडानन (सामने स केवल तीन दर्शनीय) चतुर्भुज (दाऍ से क्रमश फल शक्ति पुस्तक और कमण्डलु) स्वरूप मे सर्वाभरणभूषित त्रिभग मुद्रा मे खडे दिखाया गया है। पीछे खडा उनका वाहन मयूर अपना मुँह ऊपर उठाकर अपने स्वामी को देख रहा है (स०स० जी-339 चित्र 45)।

कन्नौज की कुछ मूर्तियॉ भी उल्लेखनीय है। लगभग 7वी 8वी शती की दो मूर्तियो मे कार्त्तिकेय अपने त्रिशिखण्ड द्विभुज व्याघ्रनख तथा शक्तिधर रूप मे ललितासन मे मयूरारूढ दिखाए गए है। उनके दाहिन हाथ का फल उनका वाहन मयूर अपनी चोच बढाकर खा रहा है। परिकर मे ब्रह्मा विष्णु आदि देवगण मगलघट से अपने सेनापति का अभिषेक करते दिखाए गए है। ये मूर्तियॉ कन्नौज के पठकाना मन्दिर और श्री सहायदेवी मन्दिर मे है। कन्नौज सग्रहालय मे 9वी शती की एक अत्यन्त सुन्दर मूर्ति प्रतिहारकला का उत्तम उदाहरण है। इस मूर्ति मे कार्त्तिकेय चतुर्भुजी है (दाऍ दोनो हाथ खण्डित बायॉ सामान्य कटयवलम्बित तथा अतिरिक्त बाऍ हाथ मे पुस्तक)। कार्त्तिकेय के बाऍ पार्श्व मे आकार मे छोटी देवसेना खडी है जिसके दाहिने कधे पर कार्त्तिकेय ने अपने बाऍ हाथ की कोहनी टिका रखी है। वे त्रिशिखण्ड है। उनके पद्मदलाकित प्रभामण्डल के ऊपर छत्र तथा उसके पार्श्वो मे बनी रथिकाओ मे ललितासीन चतुर्भुज ब्रह्मा और चतुर्भुज शिव का अकन है। देव दम्पत्ति के पीछे खण्डित शीश वाला मयूर खडा है। नीचे पार्श्वों मे अनुचरो की खण्डित मूर्तियॉ तथा पक्षो मे शार्दूल अकित है स०स०-89)।

कन्नौज से ही प्राप्त मयूरारूढ कार्त्तिकेय की एक मूर्ति इलाहाबाद सग्रहालय मे है (स०स० ए०एम० 946)। 9वी शती की इस मूर्ति मे ललितासन मे बैठे कार्त्तिकेय त्रिशिखण्ड द्विभुज और व्याघ्रनखयुक्त ग्रैवेयक से विभूषित है। दाहिने हाथ मे कोई फल लिए वे अपने वाहन को खिला रहे है। उनके बाऍ हाथ मे शक्ति दण्ड है जिसका शीर्ष टूट गया है (चित्र 46)। इलाहाबाद सग्रहालय की कतिपय उमामहेश्वर की प्रतिमाओ पर भी मयूरारूढ कार्त्तिकेय का अकन मिलता है। भुमरा (इलाहाबाद) से प्राप्त और चन्द्रशाला अकित करने वाले एक वास्तुखण्ड पर गुप्तयुगीन कार्त्तिकेय उकेरे गए है (इलाहाबाद-सग्रहालय स०-ए०एम० 150 चित्र 47)

बैजनाथ सग्रहालय (अलमोडा) उ०प्र० की दो कार्त्तिकेय की मूर्तियो को रत्नचन्द्र अग्रवाल ने 1968 ई० मे ईस्ट ऐण्ड वेस्ट (रोम) पत्रिका मे प्रकाशित किया था (वाल्यूम 18 स० 3-4)। 8वी-9वी शती ई० की एक चतुर्भुज मूर्ति मे उन्हे अलकृत ऊँची निकर पहने तिकोने किरीट पहने लटकती केशराशि मे अगल बगल दो मयूरो के बीच खडा दिखाया गया है। उनके अतिरिक्त दाहिने हाथ मे शक्ति है और सामान्य बाऍ से वे मयूर को कुछ खिला रहे हैं। दूसरी मूर्ति 9वी-10वी शती की है। इसमे पद्मदलाकित प्रभामण्डल और मयूरपुरुष तथा शक्तिदेवी के बीच दाऍ हाथ मे सनाल पद्म लिए और बायॉ कटि पर रखे कार्त्तिकेय त्रिभग मुद्रा मे खडे है।

❑

पॉचवा अध्याय

सौर मूर्तियो के प्रमुख लक्षण

1 सूर्य

जीवन प्रकाश और शक्ति प्रदान करने वाले देव के रूप मे सूर्य की उपासना अत्यन्त प्राचीन काल से समस्त सभ्य ससार मे होती आ रही है। प्राचीन मिश्र मे उसे एटन यूनान मे अपोलो और जियस रोम मे जूपिटर एशिया माइनर मे बाल और पारसीक ईरान मे मिथ्र के नाम से पूजा जाता था।

भारत मे भी सूर्य एक वैदिक देवता रहे है जहॉ उन्हे सविता आदित्य और मित्र कहा गया है। मित्रपूजक प्रतिहार नरेश ने अपना नाम इसीलिए मिहिरभोज रक्खा था। हर्षवर्द्धन के पिता प्रभाकरवर्द्धन भी सूर्य के उपासक थे। हूण शासक मिहिरकुल भी सूर्य-उपासक था। भारत मे भी सूर्य को भू (पृथिवी) भुव (अन्तरिक्ष) और स्व (आकाश) तीनो लोको के अधिपति के रूप मे मान्यता मिली थी। इसके साथ साथ उन्हे बुद्धि का प्रदाता भी माना गया है।

इस वैदिक परम्परा के सार्थ साथ शकस्थान से आए मग नामक सूर्य तथा अग्निपूजको ने भी भारत मे सूर्यपूजा का प्रचार प्रसार किया। यह तथ्य भारतीय मूर्तिकला मे कुषाणयुग की मूर्तियो के विदेशी उदीच्यवेश से प्रमाणित हो जाता है जिसमे उन्हे चपटी गोल पगडी लम्बा कोट चूडीदार पाजामा और पैरो मे लम्बे बूट मे बनाया गया था।

शुगकाल मे भक्ति-आन्दोलन के फलस्वरूप भागवत सम्प्रदाय का विकास हुआ था। आगे चलकर पचवीरो की पूजा का प्रचलन हुआ। इनमे सकर्षण वासुदेव प्रद्युम्न अनिरुद्ध और साम्ब की स्वतत्र पूजा की जाती थी। कालान्तर मे एक एक देवता को लेकर अलग अलग सम्प्रदाय बन गए। जिस प्रकार शिव (शैव) विष्णु (वैष्णव) शक्ति (शाक्त) और गणपति (गाणपत्य) को इष्ट मानकर स्वतत्र सम्प्रदाओ का विकास हुआ था उसी प्रकार सूर्य उपासको ने सौर सम्प्रदाय की स्थापना की। इसमे सूर्य को ससार का सर्वोपरि देवता माना गया था। साम्ब सूर्य भविष्ययोत्तर भास्कर आदि पुराणो मे सौर सम्प्रदाय का ही विवेचन है। इसके अतिरिक्त अग्नि वराह स्कन्द मार्कण्डेय आदि पुराणो मे भी सूर्य के विविधपक्षी उल्लेख पाए जाते है। पुराणो मे इन पचदेवो की उपासना के विकास का पर्याप्त विवेचन मिलता है।

भारत मे पहले सूर्य की पूजा उनके नैसर्गिक रूप मे की जाती थी। सबसे पहले पॉचवी छठी शती ई०पू० से पचमार्क सिक्को पर चक्र और षडरचक्र के रूप मे सूर्य का अकन किया गया था। शतपथब्राह्मण (7/4/1/10) मे अग्निवेदी के ऊपर सूर्य का प्रतीक स्वर्णचक्र रक्खे जाने का उल्लेख सूर्य के प्रारभिक गोलाकार अकन की पुष्टि करता है। साम्बपुराण (5वी 15वी शती ई०) मे कहा भी गया है कि प्राचीनकाल मे सूर्य की प्रतिमा नही थी भक्तो द्वारा मण्डलाकार सूर्य पूजे जाते थे। परन्तु जिस दिन से विश्वकर्मा द्वारा समस्त ससार के कल्याणार्थ सूर्य की पुरुषाकार प्रतिमा बना दी गई प्रतिमा की स्थापना हो गई और विधि विधान पूर्वक उसका प्रमाण निश्चित हो गया तभी से सूर्य प्रतिमा की पूजा चल पडी। कुषाणकालीन प्राथमिक मूर्तियॉ भी प्राय गोल फलको मे ही उकेरी गई थी जो परोक्ष रूप से सूर्य के नैसर्गिक गोल आकार का आभास देती है।

पचाल शासक सूयमित्र तथा भानुमित्र के सिक्को पर सूय का प्रतीकात्मक तथा मानवाकार अकन पाया जाता हे। इसी के साथ भारतीय मूर्तिकला मे भी सूय के दर्शन होने लगते हे। बोधगया-शिल्प मे चार अश्वो के रथ पर सवार उष्णीषधारी द्विभुजी सूर्य का अकन सर्वाधिक प्राचीन प्रथम शती ई०पू० का हे (चित्र 48)। इसमे उनके दोनो पार्श्वो मे धनुष लिए ऊषा ओर प्रत्यूषा को भी अकित किया गया है। लगभग इसी युग का इसी प्रकार का सूयाकन कानपुर देहात जनपद (उ०प्र०) के लालाभगत गॉव म प्राप्त एक स्तभ पर पाया गया है। इसमे सूय के रथ के आगे आगे चलने वाले बालखिल्य ऋषियो के साथ सूय रथ के नीचे दबे घबराए अधकार का और सज्ञा तथा निक्षुभा नामक सूर्य पत्निया का भी अकन हे। उडीसा मे उदयगिरि खण्डगिरि की अनन्तगुम्फा मे भी इसी काल का सूर्य का अकन पाया जाता है।

कुषाणकाल मे मथुरा मे सूर्य का स्वरूप उदीच्यवेश का मिलता है जिस पर इरानी प्रभाव स्वीकार किया जाता है। इसमे सूर्य को कुषाण नरेश के समान चपटी गोल पगडी लम्बा कोट कवच चूडीदार पाजामा तथा लम्बे बूट पहने अकित किया गया है। प्रारभिक मूर्तियो मे सूर्य एक मात्र ऐसे देव है जिन्हे बूट पहने अकित किया गया है। प्रारभिक मूर्तियो मे सूर्य द्विभुज है ओर उनके रथ मे भी दो ही अश्व अकित हुए हे। मथुरा सग्रहालय की एक ऐसी मूर्ति मे उनके दाहिने हाथ मे पद्म और बाएँ मे खडग है (स०स० 12 269)[1]।

मथुरा से ही मिली इस कोटि की कुछ सूर्य मूर्तियॉ लखनऊ सग्रहालय मे भी है (स०स० 48 203 48 146 बी 208 51 238) । ककालीटीला मथुरा से मिले एक वास्तुखण्ड (चैत्य गवाक्ष) मे उदीच्य वेशधारी आसनस्थ सूर्य के उठे दोनो हाथो मे सनालपद्म है। द्वितीय शती ई० की यह प्राचीनतम मूर्ति है जब सूर्य के दोनो हाथो मे पदम दिखाया गया है। यह परम्परा आगे मध्यकाल तक बराबर बनी रही।

गुप्तकाल से सूर्य मूर्तियो मे बूट को छोडकर शेष उदीच्यवेश समाप्त हो जाता है। पगडी के स्थान पर किरीट मुकुट कानो मे कुण्डल गले मे ग्रैवेयेक कटि पर मेखला तथा दोनो हाथो मे सनाल पद्म दिखाई देते है। पद्मदलाकित प्रभामण्डल और दण्ड तथा पिगल का अकन भी प्रारम्भ हो जाता है। ऐसी एक मूर्ति मथुरा सग्रहालय (स०स० 16 1256) मे है। इसमे सूर्य के हाथो मे एक माला दिखाई गई है जिसके दोनो सिरे फूल के रूप मे मुटठी के ऊपर दिखाई दे रहे हैं। उनके बॉए पार्श्व मे दण्डधर दण्डी और दूसरे पार्श्व मे लेखनी लिए पिगल भी उकेरे गए है।

गुप्तकाल (छठी शती ई०) की दो सूर्य-मूर्तियॉ लखनऊ सग्रहालय मे हैं। एक स्थानक मुद्रा मे बिना रथ के दोनो हाथो मे सनाल पद्म लिए और दण्डी तथा पिगल के साथ उत्कीर्ण है। मूर्ति के ऊॅचे किरीट के पीछे पद्मदलाकित प्रभामण्डल भी दर्शनीय है (स०स०-57 401)। यह मूर्ति खैराडीह (बलिया उ०प्र०) से मिली है। गढवा (इलाहाबाद उ०प्र०) से प्राप्त दूसरी मूर्ति एक गोल फलक मे सात अश्वो के जुते रथ पर बैठी अकित है। फलक का ऊपरी गोलार्द्ध प्रभामण्डल सरीखा है। देवता के पार्श्व मे ऊषा तथा प्रत्यूषा धनुष पर शर सधान करके अधकार का विनाश करती दिखाई गई है (स०स०बी-223)। यह फलक एक लम्बी पटिटका के दाहिने सिरे पर है।

मध्यकाल मे सूर्य पूर्णरूपेण भारतीय विष्णु के समान ऑके गये है। हॉ उनके पैरो मे बूट और दोनो हाथो मे सनाल पद्म सूर्य की पहचान के प्रमुख लक्षण है। कुषाणकालीन लम्बा कोट अब कवच के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। मध्ययुगीन सूर्य की मूर्तियो के प्रमुख लक्षण निम्न है–

1 इस मूर्ति के अगल-बगल सिह हैं। ज्योतिष मे सिह राशि का स्वामी सूर्य माना गया है और विष्णुधर्मोत्तरपुराण मे सूर्य को सिहध्वज कहा गया है। इस जानकारी के लिए लेखक डॉ० वी०एन० श्रीवास्तव (पूर्व निदेशक अल्मोडा सग्रहालय) का ऋणी है।

पॉचवा अध्याय

सौर मूर्तियो के प्रमुख लक्षण

1 सूर्य

जीवन प्रकाश और शक्ति प्रदान करने वाले देव के रूप मे सूर्य की उपासना अत्यन्त प्राचीन काल से समस्त सभ्य ससार मे होती आ रही है। प्राचीन मिश्र मे उसे एटन यूनान मे अपोलो और जियस रोम मे जूपिटर एशिया माइनर मे बाल और पारसीक ईरान मे मिथ्र के नाम से पूजा जाता था।

भारत मे भी सूर्य एक वैदिक देवता रहे है जहॉ उन्हे सविता आदित्य और मित्र कहा गया है। मित्रपूजक प्रतिहार नरेश ने अपना नाम इसीलिए मिहिरभोज रक्खा था। हर्षवर्द्धन के पिता प्रभाकरवर्द्धन भी सूर्य के उपासक थे। हूण शासक मिहिरकुल भी सूर्य उपासक था। भारत मे भी सूर्य को भू (पृथिवी) भुव (अन्तरिक्ष) और स्व (आकाश) तीनो लोको के अधिपति के रूप मे मान्यता मिली थी। इसके साथ साथ उन्हे बुद्धि का प्रदाता भी माना गया है।

इस वैदिक परम्परा के सार्थ साथ शकस्थान से आए मग नामक सूर्य तथा अग्निपूजको ने भी भारत मे सूर्यपूजा का प्रचार प्रसार किया। यह तथ्य भारतीय मूर्तिकला मे कुषाणयुग की मूर्तियो के विदेशी उदीच्यवेश से प्रमाणित हो जाता है जिसमे उन्हे चपटी गोल पगडी लम्बा कोट चूडीदार पाजामा और पैरो मे लम्बे बूट मे बनाया गया था।

शुगकाल मे भक्ति-आन्दोलन के फलस्वरूप भागवत सम्प्रदाय का विकास हुआ था। आगे चलकर पचवीरो की पूजा का प्रचलन हुआ। इनमे सकर्षण वासुदेव प्रद्युम्न अनिरुद्ध और साम्ब की स्वतत्र पूजा की जाती थी। कालान्तर मे एक एक देवता को लेकर अलग अलग सम्प्रदाय बन गए। जिस प्रकार शिव (शैव) विष्णु (वैष्णव) शक्ति (शाक्त) और गणपति (गाणपत्य) को इष्ट मानकर स्वतत्र सम्प्रदाओ का विकास हुआ था उसी प्रकार सूर्य उपासको ने सौर सम्प्रदाय की स्थापना की। इसमे सूर्य को ससार का सर्वोपरि देवता माना गया था। साम्ब सूर्य भविष्योत्तर भास्कर आदि पुराणो मे सौर सम्प्रदाय का ही विवेचन है। इसके अतिरिक्त अग्नि वराह स्कन्द मार्कण्डेय आदि पुराणो मे भी सूर्य के विविधपक्षी उल्लेख पाए जाते है। पुराणो मे इन पचदेवो की उपासना के विकास का पर्याप्त विवेचन मिलता है।

भारत मे पहले सूर्य की पूजा उनके नैसर्गिक रूप मे की जाती थी। सबसे पहले पॉचवी छठी शती ई०पू० से पचमार्क सिक्को पर चक्र और षडरचक्र के रूप मे सूर्य का अकन किया गया था। शतपथब्राह्मण (7/4/1/10) मे अग्निवेदी के ऊपर सूर्य का प्रतीक स्वर्णचक्र रक्खे जाने का उल्लेख सूर्य के प्रारभिक गोलाकार अकन की पुष्टि करता है। साम्बपुराण (5वी 15वी शती ई०) मे कहा भी गया है कि प्राचीनकाल मे सूर्य की प्रतिमा नही थी भक्तो द्वारा मण्डलाकार सूर्य पूजे जाते थे। परन्तु जिस दिन से विश्वकर्मा द्वारा समस्त ससार के कल्याणार्थ सूर्य की पुरुषाकार प्रतिमा बना दी गई प्रतिमा की स्थापना हो गई और विधि विधान पूर्वक उसका प्रमाण निश्चित हो गया तभी से सूर्य प्रतिमा की पूजा चल पडी। कुषाणकालीन प्राथमिक मूर्तियॉ भी प्राय गोल फलको मे ही उकेरी गई थी जो परोक्ष रूप से सूर्य के नैसर्गिक गोल आकार का आभास देती है।

पचाल शासक सूर्यमित्र तथा भानुमित्र के सिक्को पर सूर्य का प्रतीकात्मक तथा मानवाकार अकन पाया जाता है। इसी के साथ भारतीय मूर्तिकला म भी सूर्य के दर्शन होने लगते है। बोधगया शिल्प मे चार अश्वा के रथ पर सवार उष्णीषधारी द्विभुजी सूर्य का अकन सर्वाधिक प्राचीन प्रथम शती इ०पू० का है (चित्र 48)। इसमे उनके दानो पार्श्वो मे धनुष लिए ऊषा ओर प्रत्यूषा को भी अकित किया गया हे। लगभग इसी युग का इसी प्रकार का सूर्याकन कानपुर देहात जनपद (उ०प्र०) के लालाभगत गॉव मे प्राप्त एक स्तभ पर पाया गया हे। इसमे सूर्य के रथ के आगे आगे चलने वाले बालखिल्य ऋषियो के साथ सूय रथ के नीचे दबे घबराए अधकार का और सज्ञा तथा निक्षुभा नामक सूर्य पत्नियो का भी अकन हे। उडीसा मे उदयगिरि खण्डगिरि की अनन्तगुम्फा मे भी इसी काल का सूर्य का अकन पाया जाता है।

कुषाणकाल मे मथुरा मे सूर्य का स्वरूप उदीच्यवेश का मिलता है जिस पर ईरानी प्रभाव स्वीकार किया जाता है। इसमे सूर्य को कुषाण नरेश के समान चपटी गोल पगडी लम्बा कोट कवच चूडीदार पाजामा तथा लम्बे बूट पहने अकित किया गया है। प्रारभिक मूर्तियो मे सूर्य एक मात्र ऐसे देव है जिन्हे बूट पहने अकित किया गया है। प्रारभिक मूर्तियो मे सूय द्विभुज है ओर उनके रथ मे भी दो ही अश्व अकित हुए हे। मथुरा सग्रहालय की एक ऐसी मूर्ति मे उनके दाहिने हाथ मे पद्म और बाएँ मे खडग है (स०स० 12 269)[1]।

मथुरा से ही मिली इस कोटि की कुछ सूर्य मूर्तियॉ लखनऊ सग्रहालय मे भी है (स०स० 48 203 48 146 बी 208 51 238) । ककालीटीला मथुरा से मिले एक वास्तुखण्ड (चैत्य गवाक्ष) मे उदीच्य वशधारी आसनस्थ सूर्य के उठे दोनो हाथो मे सनालपदम है। द्वितीय शती ई० की यह प्राचीनतम मूर्ति है जब सूर्य के दोनो हाथो मे पदम दिखाया गया है। यह परम्परा आगे मध्यकाल तक बराबर बनी रही।

गुप्तकाल से सूर्य-मूर्तियो मे बूट को छोडकर शेष उदीच्यवेश समाप्त हो जाता है। पगडी के स्थान पर किरीट मुकुट कानो मे कुण्डल गले मे ग्रैवेयेक कटि पर मेखला तथा दोनो हाथो मे सनाल पद्म दिखाई देते है। पद्मदलाकित प्रभामण्डल और दण्ड तथा पिगल का अकन भी प्रारम्भ हो जाता है। ऐसी एक मूर्ति मथुरा सग्रहालय (स०स० 16 1256) मे है। इसमे सूर्य के हाथो मे एक माला दिखाई गई है जिसके दोनो सिरे फूल के रूप मे मुटठी के ऊपर दिखाई दे रहे है। उनके बॉए पार्श्व मे दण्डधर दण्डी और दूसरे पार्श्व मे लेखनी लिए पिगल भी उकेरे गए है।

गुप्तकाल (छठी शती ई०) की दो सूर्य-मूर्तियॉ लखनऊ सग्रहालय मे हैं। एक स्थानक मुद्रा मे बिना रथ के दोनो हाथो मे सनाल पद्म लिए और दण्डी तथा पिगल के साथ उत्कीर्ण है। मूर्ति के ऊँचे किरीट के पीछे पद्मदलाकित प्रभामण्डल भी दर्शनीय है (स०स०-57 401)। यह मूर्ति खैराडीह (बलिया उ०प्र०) से मिली है। गढवा (इलाहाबाद उ०प्र०) से प्राप्त दूसरी मूर्ति एक गोल फलक मे सात अश्वो के जुते रथ पर बैठी अकित है। फलक का ऊपरी गोलार्द्ध प्रभामण्डल सरीखा है। देवता के पार्श्व मे ऊषा तथा प्रत्यूषा धनुष पर शर सधान करके अधकार का विनाश करती दिखाई गई है (स०स०बी-223)। यह फलक एक लम्बी पटिटका के दाहिने सिरे पर है।

मध्यकाल मे सूर्य पूर्णरूपेण भारतीय विष्णु के समान ऑके गये है। हॉ उनके पैरो मे बूट और दोनो हाथो मे सनाल पद्म सूर्य की पहचान के प्रमुख लक्षण है। कुषाणकालीन लम्बा कोट अब कवच के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। मध्ययुगीन सूर्य की मूर्तियो के प्रमुख लक्षण निम्न है–

1 इस मूर्ति के अगल-बगल सिह हैं। ज्योतिष मे सिह राशि का स्वामी सूर्य माना गया है और विष्णुधर्मोत्तरपुराण मे सूर्य को सिहध्वज कहा गया है। इस जानकारी के लिए लेखक डॉ० वी०एन० श्रीवास्तव (पूर्व निदेशक अल्मोडा सग्रहालय) का ऋणी है।

1 दोनो उठे हुए सामान्य हाथो मे सनाल पद्म
2 वक्ष पर कवच
3 पैरो मे बूट
4 अधिकतर समपाद स्थानक (खडे) या फिर रथारूढ (प्राय चार या सात अश्व)
5 रथारूढ होने पर प्राय सारथी अरुण
6 दोनो पार्श्वो मे पत्नियॉ सज्ञा और निक्षुभा अथवा प्रभा और छाया
7 उनके पीछे बाएँ दण्ड और दाएँ पिगल बहुधा वे भी बूट पहने हुए
8 कभी कभी सूर्यपुत्र अश्विनीकुमार और रेवन्त भी
9 ऊपर बीच मे प्राय धनुष की प्रत्यचा से शर सधान करती ऊषा और प्रत्यूषा
10 सूर्य के दोनो पैरो के बीच प्राय खडी अथवा कभी बैठी महाश्वेता देवी

मध्कालीन सूर्य मूर्तियॉ कई प्रकार की बनाई गई थी यथा–
1 समपाद स्थानक मुद्रा मे खडी
2 रथारूढ
3 नवग्रह फलको पर आसीन मुद्रा मे
4 मिश्र देव-मूर्तियो मे यथा सूर्य नारायण शिव सूर्य हरिहरार्क अथवा हरिहर सूर्य पितामह
5 विष्णु के दशावतारो के साथ।

लखनऊ-सग्रहालय मे मध्ययुग की सूर्य की लगभग दो दर्जन मूर्तियॉ है जिनमे कुछ उल्लेखनीय है। पाल शैली की एक मूर्ति मे मुकुटधारी सूर्य के कानो मे पद्मकुण्डलो के साथ कानो से ऊपर निकली सनाल पद्मकलिकाए है (स०स०66 जी-224)। एक अन्य अखण्डित मूर्ति मे सर्वाभरणभूषित सूर्य के पैरो के आगे महाश्वेता या पृथ्वीदेवी बैठी है। परिकर मे तीन रथिका फलको मे ब्रह्मा विष्णु तथा शिव बैठे है (स०स० एच-29)। इलाहाबाद किले से प्राप्त लगभग 10वी 11वी शती की एक सूर्य मूर्ति मे महाश्वेता के अगल बगल खडे प्रतिहारो के हाथ मे चपटी गोल जेसी कोई वस्तु है। उनके पीछे अश्वमुखी सूर्यपुत्र अश्विनीकुमार तथा ऊपर प्रभामण्डल के दोनो और ऊषा तथा प्रत्यूषा का अकन है (स०स० एच 30)। बाराबकी जनपद से 9वी 10वी) शती की सूर्य की एक मूर्ति मे उनकी पत्नियॉ दण्ड और पिगल सभी बूट पहने है। पत्नियॉ भी पद्म पकडे त्रिभग मुद्रा मे प्रभामण्डित खडी है (स०स० 68 31)। 11वी 12वी शती की काले बसाल्ट पत्थर से निर्मित स्थानक सूर्य की एक सुन्दर मूर्ति गोरखपुर से प्राप्त हुई है जिसमे चामरधारिणी पत्नियॉ अश्विनी कुमार दण्ड पिगल महाश्वेता और सात अश्वो के रथ को हॉकते सारथी अरुण का भी स्पष्ट अकन है (स०स० 60/1)।

अभी हाल ही मे उ०प्र० पुरातत्त्व सगठन की ओर से कराए गए पुरातात्त्विक सर्वेक्षण मे सुल्तानपुर जनपद के कॅूड शनिचरा और सोमनाभार से कई मध्यकालीन सूर्य मूर्तियॉ मिली है। ये सभी मूर्तियॉ उदीच्यवेश मे है।

इलाहाबाद सग्रहालय मे भी 8वी से लेकर 11वी शती के बीच निर्मित लगभग दस मूर्तियॉ है जो इलाहाबाद जनपद के ही भीटा कौशाम्बी सौरॉव चिल्ला बारा करछना लाच्छागिर और कडा से मिली है। कुछ मूर्तियॉ अन्य स्थानो की भी है। भीटा की मूर्ति मे शक्ति लिए दण्ड और दवात लिए पिगल के भी प्रभामण्डल सूर्य सरीखे सादे बनाए गए है (स०स० ए०एम० 406) । कडा वाली मूर्ति मे प्रभामण्डल के पार्श्वो मे रथिका के स्थान पर एक एक बैठी सूर्य की ही मूर्तियॉ उकेरी गई है। नीचे सज्ञा निक्षुभा के साथ दण्ड और दवात लिए पिगल और अश्विनीकुमार महाश्वेता दो अजलिबद्ध बैठी भक्त आकृतियॉ तथा नीचे दो अश्वो से जुते रथ पर आसीन अरुण का भी अकन है (स०स० ए०एम० 450)। करछना से प्राप्त एक मूर्ति

के रथिका फलका पर चतुर्मुखी ब्रह्माणी वैष्णवी तथ माहेश्वरी के अकन विशेष हे (स०स० ए०एम० 991)।

मध्ययुगीन एक सूर्य फलक मथुरा सग्रहालय (स०स० 68/1) मे हे। यह गोल है। सूर्य का मुख और लगभग समूचा प्रभामण्डल खण्डित हे। सूर्य उदीच्यवेश मे कवच और बूट धारण किए घुटनो के बल बेठे है। उनके पार्श्व मे सज्ञा और निक्षुभा चामर लिए ऊषा प्रत्यूषा धनुष लिए खडी है। बायी ओर शक्ति और ढाल लिए दण्ड तथा दायी ओर लेखनी और दवात लिए पिगल बैठे है। सूर्य के पेरो के बीच राशि पकडे सप्ताश्व रथ का सारथी अरुण बैठा है। सूर्य फलक का गोल आकार उनकी नैसर्गिक आकृति के अनुरूप है।

झॉसी सग्रहालय मे सिरोनखुर्द (ललितपुर उ०प्र०) से मिली कई सूर्य मूर्तियॉ है जिनमे कुछ अपनी विशिष्टताओ के कारण उल्लेखनीय है। एक मूर्ति पर सूर्य घुटनो को पालथी जैसा मोडकर सात अश्वो के जुते रथ पर सवार दिखाए गए है। उनके पैरो के बीच बाऍ हाथ मे घट लिए तथा दाहिने हाथ मे अभयमुद्रा लिए महाश्वेता खडी है। सूर्य के दाहिने का भाग खण्डित है बाऍ भाग मे दो स्तरो मे ग्रहो तथा मातृकाओ का अकन है (स०स० 81 71)। एक अन्य बडे फलक पर बीच मे उदीच्यवेश मे सूर्य घुटनो क बल बैठे है उनके पैरो के बीच अभय मुद्रा वाली महाश्वेता है तथा अगल बगल दण्ड और पिगल खडे है। नीचे सात घोडे वाले रथ पर अरुण को भी अभय मुद्रा मे दिखाया गया है। सूर्य के दाहिने भाग का फलक टूट गया है बाये भाग पर नीचे दो मालाधारी विद्याधर तथा आसनस्थ कार्त्तिकेय और ऊपर पॉच ग्रहो का अकन भी है। फलक के छोर पर चतुर्भुजी स्थानक विष्णु है (स०स० 81 198)।

कन्नौज सग्रहालय तथा आसपास के क्षेत्र मे कई सूर्य मूर्तियॉ है जो लगभग 9वी शती की है। इनमे सग्रहालय मे रखी अपने पूरे परिवार समेत सूर्य मूर्ति का फलक प्रतिहार शिल्प का सुन्दर नमूना है (स०स० 105 चित्र 49)।

विदिशा सग्रहालय (म०प्र०) मे लगभग 900 ई० की एक अत्यन्त सुन्दर सूर्य प्रतिमा है जो अपने मूर्ति लक्षण एव ललित अकन के लिए उल्लेखनीय है। इस मूर्ति मे अश्वो और अरुण के अकन के स्थान पर पचरथ पादपीठ है जिसके बीच मे पीठ पर पदम के पार्श्वों मे दो-दो खडी नारी और तीन तीन बैठी (एक नारी और दो पुरुष) आकृतियॉ है। प्रतिहार-शिल्प के इस अनूठे फलक को प्रकाशित करने वाले डा० किरीट मनकोडी ने पादपीठ की इन बैठी आकृतियो की पहचान सूर्य की पत्नी सज्ञा और छाया की सन्तान वैवश्वत मनु यम यमी और सावर्णि मनु शनिश्चर तथा ताप्ती से की है।[1]

कश्मीर मे मार्तण्ड राजस्थान मे मोढेरा और उडीसा मे कोर्णाक नामक सूर्य मदिर बनाए गए थे। कोणार्क की सूर्य प्रतिमा अब भी सुरक्षित है।

मध्यकाल मे ब्रह्मा विष्णु और शिव के लक्षणो के साथ भी सूर्य की समन्वयात्मक मूर्तियॉ लोकप्रिय थी। ऐसी मूर्तियॉ खजुराहो मे मिली हैं। उ०प्र० पुरातत्त्व सगठन द्वारा किए गए सर्वेक्षण से सुल्तानपुर जनपद के अहिरनपलिया गॉव से भी एक ऐसी मूर्ति मिली है।

सूर्य-परिवार

पत्नियॉ

विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3/67/10) मे सूर्य की चार पत्नियो का उल्लेख मिलता है_राज्ञी रिक्षुभा (निक्षुभा) छाया और सुवर्चसा। मत्स्यपुराण (11/2) मे राज्ञी समज्ञा और प्रभा नामक केवल तीन का और अग्निपुराण (52/2) मे राज्ञी और निष्प्रभा केवल दो का उल्लेख मिलता है। किन्तु मूर्तिकला मे केवल दो ही पत्नियो का अकन कभी चामर और कभी पद्म पकडे तथा प्राय सूर्य के समान बूट पहने मिलता है।

1 किरीट मनकोडी ऐन इमेज ऑव सूर्य भायिल्लस्वामी फ्राम भिलसा' *जर्नल आव इण्डियन सोसाइटी आव ओरियण्टल आर्ट कलकत्ता* खण्ड 10 1978 1979 पृ० 41 47 चित्र फलक 10 11

पुत्र

सूर्य मूर्तियो मे नीचे प्राय अश्वमुखी मानव की एक एक आकृति भी दिखाई देती है। इनकी पहचान सूर्य पत्नी सज्ञा से उत्पन्न जुडवॉ अश्विनीकुमारो से की जाती है। उत्तरकुरु क्षेत्र मे घोडी के रूप मे सज्ञा से उत्पन्न होने के कारण इन्हे अश्वमुखी बनाया जाता है। इन्हे नास्त्य और दस्र भी कहा जाता है। आगे चलकर अश्विनीकुमार देवताओ के चिकित्सक बन गए थे। अश्विनीकुमारो का अकन प्राय सूर्य मूर्तियो मे ही पाया जाता है।

दण्ड और पिगल

मत्स्य तथा अग्नि पुराणो मे दण्ड लिए दण्डी और लेखनी तथा दवात (मसिभाजन) लिए पिगल को सूर्य के प्रतिहारी बताया गया है। दण्डी को सूर्य के बाएँ और प्राय दाढी वाले पिगल को दाएँ पार्श्व मे रखा जाता है।

ऊषा और प्रत्यूषा

सूय मूर्तियो के फलका के मध्य भाग मे अथवा ऊपर दोनो पाश्वो मे एक एक नारी मूर्ति को धनुष से बाहर की ओर शर सन्धान करने की मुद्रा मे अकित किया गया है। इन्हे सूर्य की रश्मियॉ माना जाता है जो बाण के रूप मे किरणो को फैलाकर अधकार का विनाश करती है।

महाश्वेता

इसे सूर्य के पैरो के समक्ष प्राय बाएँ हाथ मे घट और दाएँ मे अभय लिए खडी अथवा बैठी दिखाई जाती है। इसकी पहचान पृथिवी अथवा महाश्वेता से की गई है।

सारथी अरुण

सूर्य सदैव गतिमान रहते है। उनका रथ एक पहिए का माना गया है जिसमे सात अश्व जुते माने गए है। इस रथ का सारथी अरुण है। रथ के साथ अरुण का अकन शुगकाल से ही मिलने लगता है। बोधगया अनन्तगुम्फा (उडीसा) तथा लालाभगत (कानपुर देहात) से प्रथम शती ई०पू० के शिल्प मे अरुण का अकन उपलब्ध है।

अन्य अलकरण

मध्ययुगीन सूर्य मूर्तियो के फलको मे ऊपर प्राय तीन अथवा दो रथिका बिम्बो मे ब्रह्मा विष्णु और शिव का अकन मिलता है। करछना (इलाहाबाद) से प्राप्त और इलाहाबाद सग्रहालय मे प्रदर्शित (स०स० ए०एम० 991) एक सूर्य-मूर्ति के रथिका बिम्बो मे ब्रह्माणी वैष्णवी और माहेश्वरी के अकन भी मिले है। दो रथिका बिम्बो मे प्राय ब्रह्मा और विष्णु को दिखाया गया है। इलाहाबाद सग्रहालय मे (स०स० ए०एम० 450) कडा (इलाहाबाद) से प्राप्त एक 11वी शती ई० की मूर्ति के दोनो रथिका बिम्बो मे अपने दोनो हाथो मे सनाल पदम धारण किए बैठे सूर्य का ही अकन किया गया है। एकाध सूर्य मूर्तियो मे नवग्रह (सूर्य चन्द्र मगल बुध गुरु या बृहस्पति शुक्र शनि राहु और केतु) तथा सप्तमातृकाओ का भी अकन परिकर मे पाया गया है। सिरोनखुर्द (ललितपुर उ०प्र०) से प्राप्त ऐसे दो मूर्ति फलक झॉसी सग्रहालय मे है (स०स० 81 71 81 198)। इनके अतिरिक्त अजलिबद्ध भक्त गजशार्दूल मकर तोरण मालाधारी विद्याधर आदि भी सूर्य मूर्तियो के फलको पर उकेरे गए थे।

2 रेवन्त

उत्तरकुरु मे तप करने वाली सूर्य पत्नी सज्ञा से बाद मे रेवन्त नामक एक अन्य पुत्र उत्पन्न हुआ (मार्कण्डेयपुराण 78/25 108/11-12) । मार्कण्डेयपुराण मे एक स्थल पर कहा गया है कि जन्म के साथ ही रेवन्त खडग ढाल तथा तरकश से सन्नद्ध थे। शरीर पर कवच धारण किए वे अश्व पर सवार थे। रेवन्त

अश्वपालन तथा अश्व चिकित्सा के लिए प्रसिद्ध ह। बृहत्सहिता (57/56) म रेवन्त की मूर्ति का विधान मिलता है। उनकी स्वतत्र मूर्तियॉ गुप्तोत्तरकाल से मिलने लगती हैं। उन्हे सूर्य की मूर्तियो मे नही ऑका गया था।

उ०प्र० राज्य पुरातत्त्व लखनऊ की से ओर किए गए पुरातात्त्विक सर्वेक्षण के फलस्वरूप सुल्तानपुर जनपद के सोमनाभार गॉव मे बने एक आधुनिक कक्ष मे चार देवमूर्तियॉ है जिनम एक रेवन्त की भी है। लगभग 9वी शती ई० की बनी रेवन्त की यह मूर्ति निराली है। किरीट ओर अन्य आभूषणो से सुशोभित रेवन्त के पैरो मे जूते भी हे। उनके दाऍ हाथ मे चषक (प्याला) ओर बाऍ मे अश्व की वल्गा (रास) है। इनके आगे पीछे कूर्च और कृपाणधारी अश्वारोही भी हे। रेवन्त के पीछे से एक परिचालिका उनके सिर पर छत्रछाया कर रही है। कृपाणधारी गण के अगल बगल चामरधारी और मालाधारी परिचारक भी दिखाए गए हे। मूर्ति फलक के ऊपरी किनारे मे बाऍ से क्रमश नवग्रह गजलक्ष्मी ओर सप्तमातृकाओ का अकन है तथा निचले किनारे पर भी नमस्कार मुद्रा अभय मुद्रा मे अथवा वादन करती 12 आकृतियॉ है।[1]

घोडे पर बैठे और चषक तथा राशि पकडे रेवन्त की 8वी शती ई० की एक मूर्ति स्व० प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी ने तुमैन (गुना म०प्र०) से प्राप्त की थी। इसमे रेवन्त को एक वृक्ष के नीचे मालीधारी विद्याधरो से सेवित दिखाया गया है। उनके शीश पर लम्बे दण्डवाला छत्र भी तना है जिसे उनके पीछे चलने वाले एक परिचारक ने पकड रखा है।[2]

प्रो० बाजपेयी ने ही मल्हार (बिलासपुर म०प्र०) के उत्खनन से रेवन्त का 11वी शती ई० का एक फलक खोज निकाला था। इसमे भी आगे पीछे एक एक अश्वारोही के बीच मे दाऍ हाथ मे अश्व की राशि तथा बाऍ मे सूर्य का प्रतीक चक्र लिए हुए रेवन्त को अकित किया गया है। उनकी पहचान उनके ऊपर तने छत्र से सभव है। फलक के ऊपरी किनारे पर 12 मालाधारी आकृतियॉ है।

3 नवग्रह

सूर्य चन्द्र मगल बुध गुरु या बृहस्पति शुक्र शनि राहु तथा केतु की गणना नवग्रहो मे की जाती है। किसी भी धार्मिक अनुष्ठान के अवसर पर अब भी इनकी पूजा की परम्परा पाई जाती है। भारतीय मूर्तिकला मे नवग्रहो की स्वतत्र मूर्तियॉ कम ऑकी गई थी। प्राय शिव विष्णु आदि प्रमुख देवो के फलको पर इन्हे भी स्थान दिया गया था। कुछ फलको पर सप्तमातृकाओ के साथ नवग्रहो को भी उकेरा गया था। नवग्रह फलको पर पहले सात ग्रहो को मानव रूप मे राहु को मानव धढ के रूप मे केवल वक्ष भाग तक और केतु को कभी मानव रूप मे कभी सर्प के ऊपर मानव धढ के रूप मे और कभी केवल सर्प के रूप मे उकेरा गया था।

❑

1 गकेश तिवारी सुल्तानपुर मे पुरातात्त्विक सर्वेक्षण *प्राग्धारा* खण्ड 3 पृ० 160 चित्र 111

2 कष्णदत्त बाजपेयी *तुमैन* सागर 1974 फलक 5

छठा अध्याय

गणेश-मूर्तियो के प्रमुख लक्षण

गणेश या गणपति शब्द मे पहला पद गण है जो मूलत वैदिक शब्द है और जिसका अर्थ है समूह । इसलिए गणेश समष्टि के प्रतीक है। यही कारण है कि भारतीय जीवन मे गणेश का अत्यन्त पूजनीय और लोकप्रिय स्थान है। वैदिक उद्‌भव (गणाना त्वा गणपति हवामहे) और पौराणिक विकास के फलस्वरूप गणेश गुप्त और गुप्तोत्तरकाल मे पचदेवोपासना मे सम्मिलित किए गए। उनके स्वतत्र अस्तित्त्व को लेकर शैव वैष्णव शाक्त और सौर सम्प्रदाय के ही समान गाणपत्य सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव और विकास हुआ। मगलमय तथा बुद्धिराशि शुभ गुण सदन होने के कारण वे सभी सम्प्रदायो मे अग्रपूजा के अधिकारी बन गए । जैसे मत्र के उच्चारण के पूर्व ओकार का उच्चारण आवश्यक माना जाता है उसी प्रकार किसी भी शुभ कार्य के प्रारभ मे गणेश-पूजा आगे चलकर अनिवार्य हो गई।

कुछ विद्वानो के अनुसार वैदिक युग मे गणेश उन विनायको मे थे जो स्वभाव के क्रूर और विघ्न उत्पन्न करने वाले थे परन्तु पूजा करने पर शान्त रहते थे। उनके विशेषण विघ्नेश्वर विघ्नराज इस बात की पुष्टि करते है। यही कारण है कि प्राचीन ग्रथो के प्रारभ मे गणेश वन्दना नही मिलती है। किन्तु गुप्तकाल तक आते आते गणेश की लोकप्रियता मे वृद्धि होने लगी और गुप्तोत्तरकाल मे उनका माहात्म्य दिनो दिन बढता गया। जान पडता है जैसे सहारक रुद्र के कल्याणकारी रूप शिव को पूजकर सॅवारा गया विघ्नकारी विनायक को भी वैसे ही पूजकर उन्हे प्रसन्न करके विघ्नहर्त्ता और मगलकारी बना लिया गया।

आगे चलकर पुराणो मे गणेश के जन्म की उनके गुणो की उनके विविध स्वरूपो की उनके विभिन्न अवतारो की उनकी उपासना-पद्धतियो की तथा गणपति सम्प्रदाय के विविध रूपो आयुधो और ध्यानो की बहुश विवेचना मिलती है। शिव ब्रह्मवैवर्त स्कन्द मत्स्य लिग अग्नि पद्‌म नारद आदि पुराणो मे गणेश के विविधपक्षी उल्लेख तो मिलते ही है गणेशपुराण मुद्‌गलपुराण गणेशगायत्री प्राणतोषिणी गणपति अथर्वशीर्ष गणपति उपनिषद् तत्रसार शारदातिलक तथा ईशानशिवगुरुदेवपद्धति आदि ऐसे अनेक ग्रथ है जो केवल गणेश जी की महिमा के लिए ही रचे गए। इनमे गणेश को परब्रह्म के रूप मे दर्शाया गया। गणपति अथर्वशीर्ष के अन्तर्गत गणेशगीता मे तो गणेश की तुलना महाभारत मे आने वाली श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के कृष्ण से की गई। ऐसे ओकार स्वरूप गणेश ब्राह्मण धर्म के साथ साथ जैन तथा बौद्ध धर्मावलम्बियो के भी उपास्य देव बन गए। उनकी पूजा अर्चना के लिए देश भर मे अनेक गणेश तीर्थ बन गए। महाराष्ट्र मे तो अष्टविनायक क्षेत्रो की बडी महिमा है। उत्तर प्रदेश मे भी गढवाल प्रयाग और काशी प्रमुख गणेश तीर्थ कहे गए है। इतना ही नही भारतीय सस्कृति के विस्तार के साथ गणेशोपासना चीन जापान तिब्बत नेपाल तथा दक्षिण पूर्व एशिया तक मे फैल गई जहॉ वे एक सार्वजनीन मागल्य के देवता के रूप मे पूजे गए। गणेश सम्प्रदाय भले ही शैव वैष्णव और शाक्त सम्प्रदायो के समान भारत मे अपना लोकप्रिय स्थान न बना पाया हो परन्तु गणेश की पूजा आज घर घर मे बिना किसी धर्म या सम्प्रदाय के भेदभाव के प्रचलित है। जो स्थान कभी लक्ष्मी का था वही स्थान आज गणेश का है।

गणेश की सार्वभौमिकता

मागलिक देव होने के कारण गणेश की पूजा सभी सम्प्रदायो मे समान रूप से प्रचलित रही। उनकी सर्वलोकप्रियता ठीक लक्ष्मी के समान थी। तभी उन्हे शैव वैष्णव शाक्त आदि ब्राह्मण सम्प्रदायो के अतिरिक्त जैन तथा बौद्ध सम्प्रदायो मे भी अग्रपूजा का स्थान दिया गया था। श्रीरामतापनीय उपनिषद् श्रीरामार्चापद्धति

श्रीरामयज्ञपद्धति रामार्चनचन्द्रिका आदि रामोपासना के ग्रथो मे गणेश का महत्त्व ठीक वैसा ही है जेसा शेव पूजा मे। श्रीअगस्त्यसहिता के अन्तर्गत रामार्चनचन्द्रिका मे श्रीराम के साथ गणेश को भी नमस्कार किया गया है— ॐ नमो रामभद्राय ग गणेशाय नम ।

गुप्तोत्तरकाल मे ब्राह्मण धर्म के अनेक देवताओ के साथ गणेश को भी जैन देवमण्डल मे सम्मिलित कर लिया गया। जैन ग्रन्थ आचारदिनकर (गणपति प्रतिष्ठा 3) तथा अभिधानचिन्तामणि (देवखण्ड द्वितीय सर्ग-270) मे विघ्नविनाशक और सिद्धिप्रदायक रूप मे गणेश की प्रतिष्ठा का उल्लेख है। आचारदिनकर मे उन्हे गजानन तुन्दिल तथा 4 6 18 और 108 भुजाओ वाला बतलाया गया परन्तु केवल चार पारम्परिक आयुधो का ही उल्लेख किया गया— दाये हाथो मे वरद मुद्रा एव परशु और बाये हाथो मे अभय मुद्रा तथा मोदकपात्र। अभिधानचिन्तामणि मे गणेश को हेरम्ब विनायक और गणविघ्नेश कहा गया तथा उनके हस्तिमुख और निकले पेट वाले स्वरूप का निरूपण किया गया।

भुवनेश्वर के निकट उदयगिरि खण्डगिरि की गणेशगुम्फा तथा नवमुनिगुम्फा मे दिगम्बर परम्परा म और राजस्थान मे ओसियॉ (जोधपुर) कुम्भरिया तथा नारलाई (पाली) के मन्दिरो मे श्वेताम्बर परम्परा मे गणेश की मूर्तियॉ अकित है।

गुप्तोत्तरकाल मे ही भारतीय सस्कृति के साथ बौद्ध धर्म और बौद्ध धर्म के साथ गणेश भी नेपाल तिब्बत गधार मध्य एशिया मगोलिया चीन जापान और दक्षिण पूर्व एशिया के देशो मे वहॉ के जनमानस की आस्था के केन्द्र बन गए। उपरोक्त देशो मे गणेश की विभिन्न स्वरूपो वाली मूर्तियॉ मिली है। बौद्ध सम्प्रदाय मे गणेश के सम्मिलित होने का मुख्य कारण उनका गजानन स्वरूप था। बौद्ध धर्म मे गज अत्यन्त सम्मानित और पूज्य माना जाता है क्योकि वह बुद्ध के जन्म का प्रतीक था। मौर्य सम्राट अशोक के कालसी (देहरादून उ०प्र०) और सोपारा (महाराष्ट्र) के शिलाभिलेखो मे हाथी का रेखाकन है तथा उनके नीचे क्रमश गजतमे तथा सर्वलोकसुखाहरोनाम लेख हैं। इसी प्रकार धौली (गजाम उडीसा) मे एक चटटान पर अशोक का शिलाभिलेख अकित है और उसी चटटान मे एक विशाल हाथी का मूर्ताकन है। अशोक के सारनाथ स्तभशीर्ष पर भी अन्य पशुओ के साथ हाथी का अकन है। कहते है बुद्ध का एक नाम गणपति भी था।

गणेश-मूर्तियो के प्रकार

यो तो गणेश की मूर्तियॉ अनेक प्रकार की बनाई गई है फिर भी मोटे तौर पर उन्हे निम्न पॉच कोटियो मे रखा जा सकता है—

1 आसनस्थ (बैठे)
2 स्थानक (खडे)
3 नृत्यत (नाचते)
4 दम्पति (सपत्नीक) तथा
5 अन्य देवी देवताओ के साथ।

प्रारम्भ मे गणेश द्विभुज और स्थानक अथवा आसन स्थितियो मे ही बनाए गए थे। नृत्यत गणेश और उमामहेश्वर की आलिगन मूर्ति से प्रेरित शक्ति गणेश की दम्पति मूर्तियॉ पूर्व मध्यकाल मे बनायी जाने लगी थी। इस प्रकार की मूर्तियो की नवीन उदभावना प्रतिहारयुगीन शिल्पियो द्वारा की गई जान पडती है। स्थानक स्थितियो मे आलिगनबद्ध शक्ति गणेश की मूर्तियॉ गढी गई थी। शक्ति अथवा वैनायिकी की स्वतत्र मूर्तियॉ भी मिली है।

साहित्य मे प्राय गणेश की दो पत्नियो का उल्लेख मिलता है— ऋद्धि और सिद्धि अथवा सिद्धि

आर बुद्धि। किन्तु मूर्तियो मे प्राय गणेश के साथ एक पत्नी के अकन की परिपुष्टि प्राणतोषिणी तथा शारदातिलकम (पटल 13) से होती है जहॉ क्रमश वामागसस्थया शक्त्या सर्वालकारभूषित। और आश्लिष्ट प्रियया सपद्मकरया साकस्थ सगतम वर्णन पाया जाता है। ऐसी प्रतिमाएँ प्राय उमामहेश्वर के समान बनाइ गइ थी जिनम शक्ति को गणेश की बायी जघा पर आलिगनमुद्रा मे प्रदर्शित किया गया था। ऐसी मूतियाँ यो तो समूचे देश मे मिलती है किन्तु खजुराहो लखनऊ धुबेला (छतरपुर म०प्र०) के सग्रहालयो मे लन्दन क ब्रिटिश सग्रहालय ओर अमरीका मे बोस्टन कला सग्रहालय मे रखी प्रतिमाएँ विशेष रूप से दशनीय है।

पॉचवी कोटि की गणेश मूर्तियॉ स्वतत्र न होकर अन्य देवी देवताओ के साथ उकेरी गई है। मध्यकालीन उमामहेश्वर के प्रतिमा फलको पर प्राय कार्त्तिकेय के साथ गणेश भी दिखाई देते है। तत्कालीन सप्तमातृकाओ के फलको पर भी उनकी उपस्थिति उल्लेखनीय है। दक्षिण भारत के पेड्डुमुडियम नामक स्थान से 8वी शती इ० का एक फलक मिला है जिस पर ब्रह्मा नृसिह शिवलिग विष्णु लक्ष्मी उमामहेश्वर श्रीवत्स और महिषासुरमर्दिनी आदि देवो के साथ गणेश को भी एक ही पक्ति मे उकेरा गया है।[1] गणेश लक्ष्मी और कुबेर तथा गणश कुबेर और भद्रा की आकृतियो वाले लगभग इसी युग के एक एक आयताकार फलक लखनऊ सग्रहालय (स०स० 0251 58 88) मे है। लगभग ऐसा ही एक फलक आबानेरी (राजस्थान) से मिला हे जा सप्रति जयपुर के निकट आमेर महल सग्रहालय मे रखा है (स०स०-आमेर 4/139) । ध्यान देने की बात यह है कि इन सभी फलको पर प्रथम स्थान गणेश को ही दिया गया है।

गणेश-मूर्तियो के प्रमुख लक्षण

उपरिलिखित पुराणो के अतिरिक्त बृहत्सहिता विष्णुधर्मोत्तरपुराण श्रीतत्त्वनिधि रूपमण्डन अशुमदभेदागम सुप्रभेदागम आदि अनेक शिल्प ग्रथो मे गणेश की प्रतिमाओ के निर्माण की विस्तृत जानकारी मिलती है। धार्मिक ओर शिल्प साहित्य के आधार पर भारतीय मूर्तिकारो ने गणेश की नाना प्रकार की एक से बढकर एक सुन्दर मूर्तियो की सरचना की। भारतीय मूर्तिकला मे गणेश की जो मूर्तिया ऑकी गई उनमे उन्हे गजानन एकदन्तिन लम्बोदर या महाकाय वक्रतुण्ड मोदकप्रिय और मुषकवाहन स्वरूप दिए गए है। उन्हे द्विभुज से लकर षोडसभुज और एकमुखी द्विमुखी तथा पचमुखी रूप मे भी ऑका गया है। भुजाओ की वृद्धि के साथ साथ उनके हाथो के आयुधो की सख्या मे भी वृद्धि होती गई। उनके आयुधो मे मोदकपात्र मूली माला पुस्तक लेखनी स्वदन्त नीलोत्पल परशु गदा अकुश इक्षुचाप (गन्ने का धनुष) वज्र शूल चक्र पाश शख सप बीजपूरक ब्रीहि (अनाज की बाली) आदि मुख्य हैं। आन्ध्रप्रदेश के श्रीशैलम से प्राप्त एक गणेश-प्रतिमा म उन्हे वशी बजाते हुए अकित किया गया है। सभवत गणेशगीता मे कृष्ण के साथ उनके स्वरूप के तादात्म्य बिठाने के फलस्वरूप ही इस प्रतिमा मे वशी वाद्य उकेरा गया है।

गजानन सूर्पकर्ण

गणेश को शिल्पियो ने सर्वदा गजानन का ही रूप दिया यानी मानव के धड पर गणेश का शीश। सूप जेसे कान होने के कारण उनका एक नाम सूर्पकर्ण भी था। गजानन के बिना तो गणेश की परिकल्पना ही नही की जा सकती है। गणेश के गजानन होने की अनेक कथाएँ है जिनमे ब्रह्मवैवर्तपुराण के गणपतिखण्ड और शिवपुराण की रुद्रसहिता के कुमारिकाखण्ड के आख्यान विशेष है। गणेश बुद्धि प्रदाता है यह बात उनके द्वारा अपने माता पिता की परिक्रमा करके पृथिवी-परिक्रमा का पुण्य उठाने और महर्षि वेदव्यास प्रणीत महाभारत के निबाध लिखे जाने से पुष्ट होती है। और गज भी अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के लिए सर्वविदित है। सभव हे बुद्धि के देवता गणश का गजानन होना इसी का सकेत हो। गज ब्रह्म का समानार्थी है इन्द्र का वाहन ह दिशाओ और मेघो का प्रतीक है। तभी गणेश धनधान्य के प्रदाता भी माने जाते है। उनक एक हाथ मे

1 द्रष्टव्य ए०एल० श्रीवास्तव *श्रीवत्स भारतीय कला का एक मागलिक प्रतीक* इलाहाबाद 1983 चित्र स० 107

अनाज को बल्ले में उनके इस स्वरूप का प्रतीक है

एकदन्तिन

गणश का एक नाम एकदन्तिन ह आर प्राय मूर्तिया म उनका एक दाहिना दॉत ही बनाया जाता ह दूसरा दॉत उनक एक हाथ म आयुध क रूप म रहता ह। ब्रह्मवेदतपुराण म कथा ह कि एक बार परशुराम शिव दशन क लिए कलाश पधार शिव उस समय सा रह थ सा पहर पर उपस्थित गणश न उन्ह भीतर जान स राका। इस पर क्राधित हाकर परशुराम न अपन परशु स गणश का एक दॉत ताड दिया पदम्पुराण (6 250/2 4) क अनुसार बाणासुर से युद्ध करते समय बलराम की गदा स उनका एक दॉत टूट गया था एक अन्य कथा क अनुसार महाभारत लिखत समय लेखनी टूट जाने पर गणेश तत्काल अपना एक दॉत ताडकर बिना रुके महाभारत लिखत रहे।

लम्बोदर या महाकाय

गणश की मूर्तियो मे उन्हे ठिगना कद ओर तुन्दिल रूप मे बनाया जाता ह तभी उन्हे लम्बादर आर महाकाय कहा गया है। गणश का यह स्थूलकाय या महाकाय सम्पूण ब्रह्माण्ड का प्रतीक हे। ठिगना कद ओर तुन्दिल स्वरूप के कारण उनकी मूर्तिया को विद्वान नाग (हाथी) तथा यक्षमूतिया की परम्परा स जाडते ह

वक्रतुण्ड

गणश का वक्रतुण्ड नाम प्राय उनके बाऍ हाथ के मोदकपात्र की ओर मुडकर टेढी हुइ उनकी सूॅड के कारण पड गया। वे मोदकप्रिय है इसलिए उनकी सूॅड का प्राय मोदकपात्र पर टिका होना स्वाभाविक हे। एकाध मूर्तियो मे उनके एक दाहिने हाथ मे मोदकपात्र बनाया गया है और तब उनकी सूॅड भी दाहिनी आर को मुडी बनाइ गई है। ऐसे अपवाद भी है जब गणेश की सूॅड मोदकपात्र की विपरीत दिशा म बनाइ गइ।

मोदकपात्र

मोदकपात्र गणश का एक प्रमुख लक्षण हे। उन्हे मोदकप्रिय मुद मगलदाता कहा गया ह। गणश मागल्य बुद्धि ओर ऋद्धि सिद्धि के प्रदाता माने जाते है इसीलिए वे मोद प्रदाता भी हे। मोद प्रदान करने से ही वे मुद मगल दाता है। कही यह मोद ही तो आगे चलकर मोदक और गणेश को मोदकप्रिय (लडडुओ का प्रेमी) नही बना देता हे? यह विषय गवषणीय हे।

वाहन मूषक

गणेश का वाहन मूषक (चूहा) भी उनका एक मुख्य लक्षण है। रूपमण्डन मे गणेश को मूषक पर आरूढ बताया गया है– दत च परशुपदम च मोदकच गजानन / गणेशो मूषिकारूढो विभ्राण सर्ववामद । बानगढ (दीनाजपुर बगाल) से प्राप्त नृत्य गणेश तथा केरल की कुछ मूर्तियो पर उन्हे मूषक पर दिखाया भी गया है। खजुराहो-सग्रहालय मे मूषक की एक स्वतत्र मूर्ति हे जा अपने हाथो मे मोदकपात्र लिए है। गणेश का महाकाय रूप और क्षुद्रकाय वाहन मूषक वस्तुत उनकी स्थूलता और सूक्ष्मता के प्रतीक कहे जा सकते है। वे महाकाय है क्योकि वे समस्त ससार के आधार है। परन्तु महाकाय होने पर भी वे स्वय किसी पर भार नही बनते है। इसका प्रमाण उनका वाहन मूषक है। मूषक का गणेश वाहन होने से यह भाव भी स्पष्ट हाता है कि गणेश आयु को या आयु के मूल आधार अन्न को शनै शने नष्ट करने वाले मूषकरूपी काल तत्त्व पर अकुश लगाते है यानी अन्न और प्राणियो की रक्षा करते है।

गणेशपुराण मे मूषक के अतिरिक्त मयूर सिह ओर अश्व को भी गणेश का वाहन बताया गया है और उन्हे क्रमश मयूरेश्वर विनायक और धूम्रकेतु कहा गया है। पचमुखी गणेश की सिह पर आरूढ मूर्ति की पहचान हेरम्ब गणेश से की जाती है। शिल्परत्न (20 वॉ अध्याय) मे उन्हे सिहोपरि स्थित देव पचवक्त्र गजानम कहा गया है। हेरम्ब गणेश की एक-एक मूर्ति ढाका के निकट मुशीगज और रामपाल के ध्वसावशषा

(बॉगला देश) से तथा दक्षिणभारत के नागपटटनम के नीलायताक्षी मदिर मे प्राप्त हुई है। नेपाल मे इन्हे हेरम्ब विनायक कहा जाता है। ओसियॉ (राजस्थान) के एक फलक मे गणेश को हाथी पर बैठे दिखाया गया है। नारलाई (पाली राजस्थान) के सुपार्श्वनाथ मदिर के परिसर मे पडी द्विभुजी गणेश का वाहन मेष दिखाया गया है। उनके इन स्वरूपो का उल्लेख किसी भी प्रतिमाशास्त्र मे नही मिलता है।

शैव प्रभाव

पचदेवोपासना मे सम्मिलित हो जाने और गणपति की स्थापना हो जाने से यद्यपि गणेश की स्वतत्र मूर्तियो का निर्माण और उनकी मन्दिरो मे प्रतिष्ठा की जाने लगी थी तथापि उन पर शैव प्रभाव बना रहा। उनकी मूर्तियो मे उनका यह शैव स्वरूप स्पष्ट है। उनके हाथो मे सर्प त्रिशूल पाश नीलोत्पल बीजपूरक उनके भाल पर चन्द्र और त्रिनेत्र अग पर व्याघ्रचर्म सर्पज्ञोपवीत और मुण्डमाल आसन अथवा शिरोभूषा मे कपाल ऊर्ध्वलिग और उनके पचमुख उनको शैव परम्परा के निकट ठहराता है।[1]

गणेश-मूर्तियो का उद्भव और विकास

गणेश का प्राचीनतम अकन इण्डो बैक्ट्रियाई वश के अतिम शासक हर्म्यूज (लगभग 50 ई०पू०) के सिक्के पर पाया जाता है जिसे ए०के० नारायन ने 1976 ई० मे प्रकाशित किया गया था।[2] रायबहादुर दयाराम साहनी ने जयपुर के निकट सॉभर झील के तटवर्ती एक टीले के निचले स्तर मे खुदाई करके अग्नि शिव और द्विभुज गणेश की मूर्तियॉ खोजी थी। उन मूर्तियो के साथ यूनानी नरेश एण्टीमेकस निकोफर (130 ई०पू०) की मुद्रा भी मिली थी। अतएव कुछ विद्वान गणेश की उस मूर्ति को ई०पू० द्वितीय शती के बाद की नही मानते है।[3] बगदेश मे 24 परगना जिले मे चन्द्रकेतुगढ से भी शक्ति गणेश की एक 4 इच की मृण्मूर्ति पाई गई है। मूर्तिकला-विशेषज्ञो के अनुसार यह मृण्मूर्ति भी ई०पू० द्वितीय शती की है।[4]

गुप्तकाल के पहले गजमुखी यक्ष का अकन अमरावती तथा मथुरा की कला मे पाया गया है। मथुरा का अकन एक कुषाणकालीन फलक पर 6 भक्तो की आकृतियो के नीचे गजमुखी 5 गजानन यक्षो का अकन है।[5]जयपुर के निकट रेढ नामक स्थान से प्रथम शती ई० की बनी एक गजमुखी मातृका भी मिली है[6]। इनमे गणेश के लक्षण और आयुध नही मिलते है। हॉ इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि गणेश की मूर्ति का उद्भव इन गजानन यक्ष आकृतियो से ही प्रेरित रहा होगा।

दक्षिण पचाल मे कन्नौज और उसके आसपास गणेश की प्रतिहारयुगीन सुन्दर मूर्तियॉ मिली है जिनमे नृत्यत गणेश का अकन विमुग्धकारी है। परन्तु इससे पहले वहॉ गुप्तकाल मे भी गणेश का अकन प्रारम्भ हो चुका था। कन्नौज के पुरातत्त्व सग्रहालय मे गजानन की तीन द्विभुज मृण्मूर्तियॉ है। कमर के ऊपर तक की एक मूर्ति मे गजमुख के साथ भीतर को गोलाई से हाथ मुडे हैं जिन पर कगन दिखाई दे रहे है। अन्य दो मूर्तियो मे बाएँ हाथ मे मोदकपात्र और उस पर टिकी सूँड स्पष्ट है। इन मे अलकृत शिरोभूषा बाएँ हाथ मे स्वदत अथवा मूली तुन्दिल पेट और एक पर उदरबन्ध का अकन दिखाई पडता है (चित्र 50-52)।

1 शिल्पग्रथो मे भी उनके इस शैव स्वरूप के साक्ष्य बहुश उपलब्ध हैं यथा– व्याघ्रचर्माम्बरधृत सर्पयज्ञोपवीतवान (*विष्णुधर्मोत्तर* 3/71/16) लम्बोदर त्रिणयन शशिखण्डमौलिम् (*ईशानशिवगुरुदेवपद्धति*) 'तत्र मध्ये समासीन गजवक्त्र त्रिलोचनम (*प्राणतोषिणी* गणेशप्रकरण) चतुर्भुजास्त्रिनेत्रश्च कर्त्तव्योऽत्र गजानन नागयज्ञोपवीतश्च शशाककत शेखर (डा० सम्पूर्णानन्दकत *गाणपत्य वाडमय*) लम्बोदर महावीर्य नागयज्ञोपशोभितम अर्द्धचन्द्रधर देव विघ्नव्यूहविनाशनम एव चतुर्भुज त्रिलोचन भुजगमोपवीतिनम आदि-आदि।

2 नी०पु० जोशी *ब्रह्मैनिकल स्कल्पचर्स इन द स्टेट म्यूजियम लखनऊ* पार्ट 2 वाल्यूम 2 पृ० 2

3 श्रीनीरजाकान्त चौधरी देवशर्मा 'वैदिक देवता ज्येष्ठराज गणेश *श्री* रामलीला कमेटी स्मारिका (1995 प्रयाग) *गणपति विशेषाक* पृ० 59

4 *वही* प्रेम शकर द्विवेदी एव एस०के० शर्मा *भारतीय साहित्य एव कला मे गणेश* वाराणसी 1996 पृ० 45

5 प्रेम शकर द्विवेदी एव एस०के० शर्मा *उपरोक्त* पृ० 45

6 *वही*।

गुप्तकाल की गणेश मूतियॉ मथुरा भुमरा (इलाहाबाद उ०प्र०) सकिसा देवगढ उदयगिरि (विदिशा म०प्र०) तथा काबुल (अफगानिस्तान) मे पाइ गइ ह। मथुरा की स्थानक तथा आसनस्थ एकदन्तिन द्विभुजी मूर्तिया के बाएँ हाथ मे मादकपात्र ह और उसी पर गणेश की सूँड टिकी ह। एक मथुरा की मूर्ति मे गणेश को कमल पुष्प के ऊपर नृत्य करते दिखाया गया हे। सभवत नृत्य मुद्रा मे गुप्तकालीन गणेश की यह एकमव मूर्ति है। मथुरा की एक मूर्ति (स०स० 15 758) तथा सकिसा वाली मूर्ति मे लिग का अकन तो है किन्तु वह ऊर्ध्वलिग नही है। हॉ उदयगिरि तथा काबुल की एक मूर्ति मे उन्हे ऊर्ध्वलिग दिखाया गया है। आग चलकर गणेश चतुर्भुजी हो गये। देवगढ (ललितपुर उ०प्र०) के दशावतार मदिर मे उनकी चतुर्भुजी मूर्तियॉ ऑकी गई हे। अफगानिस्तान के काबुल नगर के पीर रतननाथ दरगाह की द्विभुजी प्रतिमा के दोना हाथ खण्डित हे और बायी ओर को सूँड मुडी हे। शोर बाजार वाली दूसरी चतुर्भुजी प्रतिमा के निचले दोनो हाथ बोने पुरुषो के शीश पर टिके हे तथा दाएँ हाथ मे कमल कलिकाएँ हे। इस प्रतिमा के बाये कधे से लटकने वाला सर्पयज्ञोपवीत और शरीर पर लिपटा बाघम्बर दर्शनीय हे।[1]

गुप्तोत्तर काल मे गणेश की नाना प्रकार की मूर्तियॉ समूचे देश भर मे निर्मित की गई थी। अधिकाश मूर्तियॉ चतुर्भुज थी और उनके हाथो मे वरद मुद्रा अकुश पाश मोदकपात्र स्वदन्त लेखनी आदि मे से कोई भी चार आयुध थे। षडभुजी अष्टभुजी अथवा दशभुजी नृत्यत गणेश प्राय अपने ऊपरी दोनो हाथो को शीश के ऊपर उठाकर सर्प पकडे दिखाए गए है। प्रतिहारकाल मे नृत्यत गणेश की उदभावना उल्लेखनीय है।

लखनऊ के राज्य सग्रहालय मे गणेश की 29 मूर्तियॉ है जिनका निर्माण 7वी 8वी से 12वी शती के बीच हुआ था। इनमे एक मूर्ति शक्ति गणेश (स०स०-एच-19) आठ नृत्यत गणेश (स०स० 57 466 जी-397 जी-398 एच-21 एस-753 56 356 58 47 66 237) एक कुबेर और भद्रा के साथ (स०स० 58 88) एक लक्ष्मी और कुबेर के साथ (स०स०-0 251) तथा शेष एकाकी अथवा मूर्तिखण्ड हैं। इनमे से कुछ मूर्तियो पर त्रिनेत्र बाघम्बर मुण्डमाल सर्पयज्ञोपवीत भालचन्द्र आदि शैव लक्षण द्रष्टव्य है।

11वी 12वी शती के एक अष्टभुजी स्थानक गणेश के अत्यन्त सुन्दर मूर्ति फलक मे उन्हे मकरिकायुक्त चन्दोवे के नीचे त्रिभग मुद्रा मे दिखाया गया है। उनके दोनो ऊपरी हाथो मे वितान जैसा सर्प है जिसका मुख उनके दाहिने हाथ मे और पूँछ बाएँ हाथ मे है। एकदन्तिन गणेश के शेष दाहिने हाथो मे ऊपर से माला उत्तरीय और परशु तथा बाएँ हाथो मे स्वदन्त उत्तरीय तथा मोदकपात्र है। सर्पयज्ञोपवीत तथा आभूषणो से वे सुसज्जित है (स०स०-एच-18)।

लगभग 8वी 9वी शती की एक अत्यन्त मनोहर अष्टभुजी नृत्य गणेश की सर्वालकारभूषिता मूर्ति कम्पिल (फर्रूखाबाद उ०प्र०) से प्राप्त और लखनऊ सग्रहालय की अनुपम निधि है (स०स०-58 47)। इसमे गणेश का एक दायॉ तथा एक बायॉ हाथ खण्डित है। शेष दाहिने हाथो मे ऊपर से माला नृत्यमुद्रा तथा कटयवलम्बित मुद्रा और बाएँ हाथो मे स्वदन्त अकुश और मोदकपात्र है। नीचे डमरू मृदग वशी और मजीर वादक भी नृत्य मे सगति बिठा रहे है। इस मूर्ति की कुछ विशिष्टताएँ निम्नलिखित हैं–

1 कानो मे चामर जैसा लटकता आभूषण
2 सूँड मोदकपात्र की ओर न होकर विपरीत दिशा मे
3 दाएँ पैर के पास छोटी सी मूषक की आकृति
4 बचा हुआ दत दाई के बजाय बाई ओर
5 दाई जघा पर व्याघ्रचर्माम्बर का सूचक व्याघ्रमुख
6 पादपीठ के समक्ष अकित दोहरी गॉठ का प्रतीक (चित्र 53)

1 नी०पु० जोशी *प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान* पटना 1977 पृ० 168

इलाहाबाद सग्रहालय मे छोटे बडे मिलाकर कुल 13 गणेश के अकन है। इनम से दो स्थानक दा नृत्यत दा सप्तमातृका फलको पर पॉच उमामहश्वर फलको पर तथा दो एकाश्मक लघुमन्दिरो पर उत्कीण ह।

8वी शती की कटि क नीच खण्डित भाग वाली गणेश की 570 सेमी ऊँची एक विशाल मूर्ति रामनाथपुर (जनपद इलाहाबाद स०स० ए०एम० 644) से मिली हे। एकदन्तिन गणेश की वक्रतुण्ड उनके दाहिन कध तक उठी हे कानो मे चामर के साथ दाएँ मे अशोक ओर बाएँ मे चम्पक का एक एक सपत्र पुष्प है। दाहिना हाथ मोदकपात्र पर टिका है जो एक गण के शीश पर रक्खा हे बायॉ कटि पर रक्खा है अतिरिक्त दाहिने मे माला तथा अतिरिक्त बाएँ म नीलोत्पल हे। मस्तक की रत्न पटिटका की मध्यमणि बीच मे न होकर दाहिनी कनपटी पर है। सादा प्रभामण्डल भी खण्डित है।

कोशाम्बी तथा जमसोत (दोनो इलाहाबाद जनपद स०स० ए०एम० 427 एव 1030) से मिली नृत्यत गणेश की दानो प्रतिमाएँ खण्डित हे। 11वी शती ई० की कौशाम्बी मूर्ति के सात हाथ खण्डित है केवल सामान्य दाहिना बचा हे जिसमे पाश होने का आभास होता है। सादा प्रभामण्डल पाश्व मे मालाधारी विद्याधर नीचे मूषक वादक तथा बैठी भक्त आकृतियॉ हे। कटि बायी ओर को निकली तथा दाहिना उठा हुआ पैर नृत्य मुद्रा प्रकट करता है।

सिरोनखुर्द (ललितपुर उ०प्र०) से प्राप्त और 10वी 11वी शती ई० मे निर्मित एक स्थानक तीन आसन ओर चार नृत्य गणेश की मूर्तियॉ झॉसी सग्रहालय मे है। नृत्यत गणेश की एक एक मूर्ति चतुर्भुजी षडभुजी चतुर्दशभुजी है। 14 भुजाओ वाली मूर्ति मे यद्यपि कई हाथ खण्डित है तथापि शिल्पाकन ौर नृत्य की मुद्राओ की दृष्टि से 10वी शती की यह मूर्ति अत्यन्त आकषक है। चारो ओर से तराशी गई इस मूर्ति मे नतक गणेश त्रिभग बनाए गए है उनकी कटि बायी ओर को निकली हुई है और दायॉ पैर ऊपर को उठता दिखाया गया हैं। चूडामणि मस्तकपटिटका ग्रैवेयक मेखला नुपूर तथा सर्पयज्ञोपवीत से अलकृत गणेश का सामान्य दायॉ हाथ नृत्यमुद्रा मे है। अन्य दाहिने हाथो मे अक्षमाला वज्र परशु (केवल दण्ड शेष है) उत्तरीय है शेष खण्डित है। बाएँ उत्तरीय पकडे एक हाथ के अतिरिक्त अन्य सभी खण्डित है। खण्डित होने पर भी उनकी सूँड बायी आर मुडी होने का सकेत देती है। पैरो के पीछे मूषक और अगल-बगल दो दो वादक है (मृदग झॉझ मजीर और वशी स०स० 81 45 चित्र 54) । इसी काल की षोडसभुजी एक अन्य प्रतिमा (स०स० 81 95) भी लगभग उसी शेली मे है। इसमे ऊपरी फलक पर प्रभामण्डल और पार्श्वो मे विद्याधर भी उकेरे गए है।

कन्नौज क्षत्र की प्रतिहारयुगीन गणेश मूर्तियो मे कम्पिल (फर्रूखाबाद उ०प्र०) से मिली और लखनऊ सग्रहालय मे प्रदर्शित नृत्यत मूर्ति की चर्चा पहले की जा चुकी है। उसी काल की (लगभग 9वी शती) अलकृत स्तभो और शीष पटिटका के चौखट के भीतर नृत्यत गणेश की षडभुजी अखण्डित और सुगढ मूर्ति कन्नौज के स्व० रामनारायण कपूर के निजी सग्रहालय की अमूल्य निधि है। सुअलकृत गणेश की मनोहारी नृत्यमुद्रा को प्रदर्शित करती यह मूर्ति भी त्रिभग बनी है। कान पुष्पो से अलकृत है। दाएँ हाथो मे ऊपर से नृत्यमुद्रा नृत्यमुद्रा और मोदकपात्र तथा बाएँ हाथो मे नृत्यमुद्रा स्वदत तथा कटयवलम्बित मुद्रा है। इस मूर्ति के उल्लेखनीय तत्त्व है मोदकपात्र और भग्नदन्त जो बायी के स्थान पर दायी ओर को है (चित्र 55)। चित्रगुप्त मन्दिर फतेहगढ (उ०प्र०) की भित्ति मे जडी लगभग 9वी शती की एक अन्य नृत्य गणेश की मूर्ति इस दृष्टि से उल्लेखनीय है क्योकि इसके दोनो पार्श्व स्तभो पर गजलक्ष्मी गौरी सरस्वती दुर्गा अम्बिका और शिव (?) के अकन है।

कन्नोज पुरातत्त्व सग्रहालय मे एक अन्य षडभुजी मूर्ति ऊपर से आशिक रूप से और कटि के नीचे पूणरूप से खण्डित हे। पदमदलो वाले प्रभामण्डल और विद्याधरो से सयुक्त यह मूर्ति भी प्रतिहार शिल्प की अनूठी देन रही होगी। 9 वी शती की इस मूर्ति के दाहिने हाथो मे माला उत्तरीय और परशु तथा बाएँ मे मोदकपात्र बीच का खण्डित और सामान्य हाथ कटि पर अवस्थित था। उदरबन्ध और सर्पयज्ञोपवीत

स्पष्ट है

नृत्यत गणेश की एक अष्टभुजी अखण्डित मूर्ति कन्नोज के चाधरिया मन्दिर के एक रथिका में उत्कीर्ण है ऊपर माला तथा बीच में एक ढाल को पकड़े विद्याधर तथा नीचे दाना आर एक एक वादक बैठे हैं इसका निमाणकाल भी 9वी शती माना गया है

नृत्यगणेश की एक एक उल्लखनीय मूति रानी दुगावती सग्रहालय जबलपुर (क्रमाक 414) जबलपुर विश्वविद्यालय सग्रहालय ग्वालियर सग्रहालय (क्रमाक 186) तथा सागर विश्वविद्यालय के डा० हरी सिह गाड सग्रहालय मे है (क्रमाक 63 4)। इनमे पहली षडभुज दूसरी ओर तीसरी अष्टभुज तथा चोथी द्विभुज है। ग्वालियर सग्रहालय वाली मूर्ति म गणेश अपने सामान्य दाहिन हाथ म मादकपात्र क स्थान पर कवल एक मोदक मुँह मे ले जात हुए दिखाए गए हे। जबलपुर विश्वविद्यालय सग्रहालय वाली मूर्ति तवर (जबलपुर) स मिला है। इसमे गणेश का दायॉ केवल एडी पर टिका पेर नृत्य की ताल का द्यातक हे। सागर विश्वविद्यालय क सग्रहालय वाली मूर्ति की विशेषता यह है कि द्विभुज गणश के दाहिन वशीवादक ओर बाये मृदगवादक भी उन्ही के आकार के बनाए गए है।

❑

सातवॉ अध्याय

शाक्त मूर्तियो के प्रमुख लक्षण

देव-शक्तियॉ अथवा देवियॉ

भारतीय विचारधारा मे नारी को अर्द्धागिनी मानने की भावना बडी पुरानी है। मनु का कथन यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता इसी भावना से प्रेरित है। इसी भावना से भारत मे सभी देवो की शक्तियो को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वस्तुत देवता अपनी इन्ही शक्तियो के बल पर अलौकिक कार्य कर सकने मे सक्षम माने गए है। कहा भी गया है– शक्ति के बिना शिव शव मात्र रह जाते है । सन्तान को जन्म देने की प्रक्रिया से गुजरती हुई नारी पुरुष को समस्त प्रकार के सुख और सौभाग्य प्रदान करती है। सभवत उसके इस मातृस्वरूप ने ही उसे समाज मे सर्वाधिक सपूज्य स्थान दिलाया।

शक्तिस्वरूपा मातृदेवी की स्वतत्र पूजा की परपरा समूचे सभ्य विश्व मे आदिकाल से पाई जाती रही है। भारत मे भी सिन्धुघाटी सभ्यता के युग की पाई गई हजारो नारी मृण्मूर्तियॉ तत्कालीन समाज मे मातृपूजा के प्रचलन का प्रमाण प्रस्तुत करती है। वैदिक वाडमय मे भी सृष्टि के अणु अणु मे व्याप्त शक्तिसत्ता की व्यापकता बताई गई है। ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रथो मे इस आदिशक्ति को अम्बिका उमा दुर्गा काली आदि कहा गया है। ऋग्वेद मे भी अनेक देवो की पत्नियो के नामोल्लेख मिलते है जैसे इन्द्र की इन्द्राणी वरुण की वरुणानी और रुद्र की रुद्राणी आदि। महाभारत हरिवशपुराण तथा मार्कण्डेयपुराण मे आदिशक्ति दुर्गा की स्तुतियॉ है जिनमे उन्हे जगन्माता तथा जगदम्बा कहा गया है जो उनके मातृस्वरूप को उजागर करता है। इसके अतिरिक्त वेदान्तियो के माया के सिद्धान्त मे और साख्य दर्शन के प्रकृति पुरुष सिद्धान्त मे इसी स्त्री रूपी अथवा मातृरूपी आदिशक्ति का माहात्म्य दिखाई देता है।

वैष्णव और शेव सम्प्रदायो की तरह शाक्त सम्प्रदाय भी भारत मे विकसित हुआ और इसकी लोकप्रियता इतनी बढी कि वह आज भी समाज मे देवी पूजा के रूप मे प्रतिष्ठित है। शाक्त सम्प्रदाय शक्ति की उपासना से विकसित हुआ था। शक्ति वस्तुत उमा और पार्वती का ही तात्रिक दार्शनिक रूप दुर्गा है जिसकी महिमा आगे चलकर निरन्तर बढती गई और उसमे अन्य देवियो के गुण एव स्वरूप जुडते चले गए। धीरे धीरे उसने महाकाली महालक्ष्मी और महासरस्वती का समन्वित स्वरूप धारण कर लिया और तब अनेक असुरो का सहार करने तथा असीमित शक्ति और तेज धारण करने के कारण उसकी स्वतत्र उपासना की जाने लगी। कालान्तर मे शिव और विष्णु को छोडकर सभी देवी देवताओ मे इसी दुर्गा की महिमा सर्वाधिक बढ गई। परिणामस्वरूप शक्ति अपने देवता से स्वाधीन सर्वथा स्वतत्र हो गई। समूचे देश मे प्रचलित दुर्गापूजा और सरस्वतीपूजा इस बात को प्रमाणित करती है। ऋग्वेद के वाकसूत्र देवीसूक्त तथा रात्रिसूक्त से देवी की परिकल्पना प्रारम्भ हुई। उत्तरवैदिक ग्रथो तथा गृह्यसूत्रो मे अनेक देवियो के उल्लेख मिलते है। तदनन्तर अनेक अवैदिक देवियॉ भी इस धारा मे सम्मिलित हो गई। मार्कण्डेयपुराण का देवीमाहात्म्य शाक्त सम्प्रदाय के विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। भागवतपुराण मे वैदिकी तात्रिकी आदि विभिन्न प्रकार की पूजा पद्धतियॉ पाई जाती है।

भारतवर्ष की मूर्तिकला भी इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती है जहॉ सैन्धव सभ्यता के काल मे मिली हजारो नारी मृण्मूर्तियो के रूप मे हमे मातृपूजा के साक्ष्य मिलते है। परन्तु किसी देवी विशेष के लक्षणो वाली मूर्तियॉ हमे शुग कुषाणकाल से ही मिल पाती है। शुगकाल मे अपने प्रमुख लक्षणो से सयुक्त केवल लक्ष्मी की मूर्तियॉ ही ऑकी गई थी। परन्तु कुषाणकाल से लक्ष्मी के अतिरिक्त पार्वती महिषासुरमर्दिनी दुर्गा षष्ठी

(षण्मुख कार्त्तिकेय की शक्ति) सरस्वती वसुधारा एकानशा तथा गुप्तकाल स नदी देवता गगा यमुना आदि देवियॉ भारतीय मूर्तिकला मे उकेरी जाने लगी थी।

क प्रमुख देवियॉ

ब्रह्मा विष्णु और महेश (शिव) भारत मे सर्वाधिक पूज्य देवता माने गए ह। इन्ही त्रिदेवो के साथ उनकी शक्तियॉ (सरस्वती लक्ष्मी और पार्वती या दुर्गा) भी प्रारम्भ से ही पूजी गई है। विष्णुपुराण (1/22/58) मे इन त्रिदेवो को ब्रह्म की प्रधान शक्तियॉ बताया गया है– ब्रह्मा विष्णुशिवा ब्रह्मन प्रधाना ब्रह्मशक्तय कालिदास भी कुमारसभव (7/44) मे ब्रह्मा विष्णु और शिव को एक ही मूर्ति के तीन विभिन्न स्वरूप मानते है– एकैव मूर्ति बिभिदे त्रिधा सा । इसी आधार पर सरस्वती लक्ष्मी ओर दुर्गा अथवा काली भी देवीभागवत ओर दुर्गासप्तशती मे एक ही शक्ति मानी गई है जो देवताओ के तेज से उत्पन्न बारी बारी से काली लक्ष्मी और सरस्वती बनती है– काल्याश्चैव महालक्ष्म्या सरस्वत्य क्रमण च (देवीभागवतपुराण 10/12/82) एव महालक्ष्मी महाकाली सैव प्रोक्ता सरस्वती (दुर्गासप्तशती वैकृतिक रहस्य 25) । वस्तुत ब्रह्मा विष्णु और शिव क्रमश सत्त्व रजस और तमस गुणो के प्रतीक देव है और इन्ही गुणो की प्रतीक स्वरूप सरस्वती लक्ष्मी और दुगा देवियॉ है।

सरस्वती

आदिशक्ति का सत्त्वप्रधान रूप सरस्वती कहलाता है। सरस्वती विद्या तथा सस्कृति की देवी मानी जाती है। उन्हे भारती वाकदेवी वागेश्वरी वाणी आदि भी कहा जाता हे। वे वष्णव शैव शाक्त तथा अन्य सभी सम्प्रदाय वालो की आराध्य देवी है। बौद्ध और जैन भी इनकी पूजा अर्चना करते है। बौद्धानुयायी इन्हे मजुश्री की आत्मा मानते है। जैन ग्रथो मे मेधा बुद्धि या श्रुत देवता के रूप मे इनका वर्णन है।

सरस्वती का सम्बन्ध मुख्यत ब्रह्मा से जोडा जाता है। परन्तु लक्ष्मी का ही सात्विक स्वरूप होने से उन्हे विष्णु की सहचरी के रूप मे भी स्वीकार किया गया है। श्रीदेवी और भूदेवी विष्णु की दो पत्नियो को सरस्वती और लक्ष्मी के रूप म पहचाना जाता है। किन्तु इस देवी की भी स्वतत्र पूजा होती थी। इसका प्रमाण इनकी स्वतत्र मूर्तियॉ है। ब्रह्मा का महत्त्व कम हो जाने पर भी सरस्वती की पूजा बराबर की जाती रही है और वह आज भी समाज मे प्रचलित है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3/64/1 31) मे इन्हे चतुर्भुजा (विद्यारूपी पुस्तक अक्षमाला वीणा और कमण्डलु) और स्कन्दपुराण (96/31) मे जटाजूटयुक्त मस्तक पर अर्द्धचन्द्र श्वेत कमल पर आसीन नीली ग्रीवा वाली तथा तीन नेत्रो वाली बताया गया है। रूपमण्डन (अध्याय 54) मे चार भुजाओ वाली मुकुट और प्रभामण्डल से सुशोभित अक्षमाला कमल वीणा तथा पुस्तक लिए हुए देवी को महाविद्या और वरद मुद्रा अक्षमाला कमल तथा पुस्तक लिए हुए देवी को सरस्वती कहा गया है। अभय और वरद मुद्राओ तथा अक्षमाला पुस्तक पदम और वीणा को अलग अलग हाथो मे होने से सरस्वती के कई रूप बताए गए है। वीणा और पुस्तक सरस्वती की पहचान के प्रमुख लक्षण है। अधिकतर मूर्तियो मे अक्षमाला का भी अकन बहुधा पाया जाता है। शास्त्र की प्रतीक पुस्तक और कला-सगीत की प्रतीक वीणा सरस्वती को विद्या ज्ञान सगीत तथा कलाओ की अधिष्ठात्री होने का सकेत देती है। परन्तु अक्षमाला और कमण्डलु सकेत करते है कि विद्या ज्ञान सगीत तथा कलाएँ बिना साधना और तपस्या के मिलना सभव नही है। चूँकि सरस्वती को प्राय ब्रह्मा की शक्ति माना जाता है इसीलिए उनका वाहन हस है। सरस्वती को इसीलिए हसवाहिनी भी कहा जाता है।

यद्यपि शिल्पग्रथो मे उन्हे सर्वाभरणभूषिता बनाने का निर्देश दिया गया है तथापि उनकी आरभिक मूर्तियो मे आभूषण तुलनात्मक दृष्टि से कम और बहुत हल्के बनाए गए है। सभवत उनके सात्विक गुण और विद्यादेवी के अनुरूप यही उचित भी था।

सरस्वती की घुटने ऊपर उठाकर गोदोहिका आसन मे बैठी द्विभुजी एव शीशविहीन एक कुषाणकालीन खण्डित मूर्ति मथुरा के ककाली टीले से मिली है। मूर्ति का दाहिना हाथ खण्डित है इसलिए उसमे क्या रहा होगा यह अज्ञात है। उनके बाएँ हाथ मे अक्षमाला और पुस्तक है। उनके आसन के दोनो पार्श्वो म एक एक खडे उपासक की आकृति है। इनमे एक के हाथ मे कलश है तथा दूसरा हाथ जोडे नमस्कार मुद्रा मे है। सरस्वती की यह मूर्ति जैन सम्प्रदाय से सम्बन्धित है (चित्र 56)।

गोरखपुर ललितपुर मिर्जापुर आदि जनपदो से मिली मध्ययुगीन पॉच सरस्वती मूर्तियॉ लखनऊ क राज्य सग्रहालय मे है (स०स० एच-23 एच-150 एच-188 51 278 और 56 412)। इनमे से एक मूर्ति वास्तुखण्ड के एक सुसज्जित गोल फलक मे पद्मवन मे नृत्यमुद्रा मे उकेरी गई है (एच-188) । इसमे वीणा और नृत्य मुद्रा उसे वास्तव मे नृत्य और सगीतकला की देवी के रूप मे प्रस्तुत करती हें (चित्र 57) ।

इलाहाबाद सग्रहालय मे उसी जनपद के सोरॉव से मिली एक और जमसोत नामक स्थान से मिली दो सरस्वती की मूर्तियॉ है। 12वी शती की जमसोत वाली मूर्तियो मे एक स्थानक (स०स०-ए०एम० 1005) तथा दूसरी आसन मुद्रा (स०स० ए०एम० 1029) मे है। त्रिभग मुद्रा मे खडी चतुर्भुजी सरस्वती के सामान्य हाथो मे वीणा और अतिरिक्त दाहिने हाथ मे पद्म है। अतिरिक्त बायॉ हाथ खण्डित है। आसनस्थ मूर्ति मे शीश समेत ऊपरी भाग खण्डित है। अष्टभुजी इस देवी के सामान्य दोनो हाथो मे वीणा ओर शेष तीन बाएँ हाथो मे पुस्तक घण्टिका और घट है। शेष दाहिने हाथ खण्डित है। अष्टभुजाएँ और घण्टिका देवी के उल्लेखनीय अग है। दोनो मूतियो मे नीचे हस की आकृति द्रष्टव्य है।

सोरॉव से मिले एक वास्तुखण्ड पर दो रथिकाओ मे एक मे कुबेर तथा दूसरे मे ललितासन मे बैठी द्विभुजी वीणाधारिणी सरस्वती का अकन है। सरस्वती के दोनो पार्श्वों मे मृदग वशी झॉझ आदि वाद्यो को बजाते हुए नर्तक नर्तकी विभिन्न मुद्राओ मे अकित है। यह दृश्य भी सरस्वती को नृत्य सगीत की देवी के रूप मे प्रस्तुत करता है।

कहते है महाराजाधिराज भोज परमार ने अपनी राजधानी धारानगरी मे सगीत नृत्य का एक विद्यालय सरस्वती कण्ठाभरण स्थापित करवाया था जिसमे विद्या देवी सरस्वती की एक मूर्ति प्रतिष्ठित करवाई थी। वह मूर्ति सप्रति अमरीका मे बोस्टन कला सग्रहालय की शाभा बढा रही है।

लक्ष्मी

भारतीय कला मे लक्ष्मी को प्रारभ से ही एक स्वतत्र और सपूज्य देवी के रूप मे अकित किया गया है। लक्ष्मी सृजन सम्पन्नता और सौभाग्य की देवी के रूप मे जैन बौद्ध तथा ब्राह्मण तीनो सम्प्रदायो मे प्राचीनकाल से ही पूजी जाती रही। पदम तथा गजाभिषेक से समन्वित लक्ष्मी का स्वरूप श्रीसूक्त से ही मिलने लगता है। आगे चलकर महाकाव्यो पुराणो पालि प्राकृत तथा सस्कृत साहित्य मे लक्ष्मी के नाना नामो और स्वरूपो के उल्लेख मिलते है। भारतीय अभिलेखो मे भी लक्ष्मी के कई नाम अकित पाए गए है। सिक्को और मोहरो पर भी लक्ष्मी के विविध अकन है। अपने विशिष्ट लक्षणो से सयुक्त लक्ष्मी या श्रीलक्ष्मी सबसे पहले शुगकला मे प्रकट हुई थी। भरहुत सॉची बोधगया मथुरा कौशाम्बी आदि स्थानो के उत्कीर्ण शिल्प मे लक्ष्मी के विविध रूप ऑके गए थे। कन्नौज मथुरा कौशाम्बी आदि स्थानो से शुगकालीन गजलक्ष्मी की मृणमूर्तियॉ भी मिली है। भारतीय मूर्तिकला मे लक्ष्मी के जिन विभिन्न स्वरूपो की पहचान सुनिश्चित की जा चुकी हें उनका सक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है—

कमला या पद्मा

उसे कमला या पदमा उसके कमल अथवा पदम के साथ घनिष्ट सम्बन्ध के कारण कहा जाता है वस्तुत लक्ष्मी का कोइ भी स्वरूप हो कमल के बिना तो उसकी कल्पना ही नही की जा सकती है। श्रीसूक्त (ऋग्वेद का खिल सूक्त) मे लक्ष्मी के इस स्वरूप की विस्तार से चचा है जहॉ उसे पदिमनी पदमा पदमानना (पदम जेसे मुख वाली) पदमसभवा (पदम से उत्पन्न) पदमदलायताक्षी (पदमदल जैसी ऑखो वाली) पदमस्था पदमेष्ठिता (पदम पर आसीन) पदमहस्ता (हाथो मे पदम लिए) पद्मवासा (पदमपुष्पो से घिरी हुई) कहा गया है। श्रीसूक्त मे ही लक्ष्मी को समस्त प्राणियो की जननी तथा पुत्र पौत्र धन धान्य सोभाग्य आयुष्य आदि की प्रदाता बताया गया है। लक्ष्मी की चचलता को पदम की निमलता से नियत्रित करने का भाव भी लक्ष्मी की मूर्ति से प्रकट होता है। (चित्र 58) ।

गजलक्ष्मी या अभिषेकलक्ष्मी

पौराणिक मान्यता के अनुसार देवो और असुरो के द्वारा सागर मथन करने से उत्पन्न 14 रत्नो मे लक्ष्मी पदम और ऐरावत हाथी भी थे। एक साथ सागर के गर्भ से निकलने के कारण ही सभवत पद्म लक्ष्मी का आसन और लीलापुष्प बन गया तथा गज उनके अभिषेक सेवक। गजो के द्वारा लक्ष्मी के अभिषेक वाली मूर्तियॉ बनाने का निर्देश विष्णुधर्मोत्तरपुराण[1] मत्स्यपुराण[2] मानसार[3] समरागणसूत्रधार[4] चतुर्वर्गचिन्तामणि[5] आदि अनेक ग्रथो मे पाया जाता है।

इसी मान्यता के आधार पर लक्ष्मी को पद्म सरोवर मे पद्म पर बैठे अथवा खडे और हाथ मे सनाल पदम लिए अकित किया जाने लगा। देवी के इस स्वरूप को पद्मा अथवा कमला या लक्ष्मी कहा गया है। किन्तु जब इस देवी का अभिषेक उसके दोनो पार्श्वो मे खडे गजो के द्वारा दिखाया गया तब उस स्वरूप को गजलक्ष्मी कहा गया। गजलक्ष्मी का स्वरूप भारतीय कला मे सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है (चित्र 59)। प्राय दो गजो द्वारा लक्ष्मी के अभिषेक का अकन किया गया है परन्तु कतिपय उदाहरण ऐसे भी मिलते है जहॉ दो के स्थान पर चार गजो का अकन है। ऐसी गजलक्ष्मी के दो फलक राज्य-सग्रहालय लखनऊ मे (स०स० एस-767 832) हैं एक राजस्थान के सिरोही जनपद के वरमाण नामक स्थान के शिव मदिर की दीवार पर जडा है एक अमझरा (राजस्थान) से प्राप्त हुआ है और एक एलोरा (औरगाबाद महाराष्ट्र) मे मिला है। इन अभिषेकी गजो को दिग्गज (दिशाओ के गज) कहा गया है। चार की सख्या मे इनका दिशाओ के गज होना सार्थक जान पडता है। गजलक्ष्मी या अभिषेक लक्ष्मी के अकन समूचे देश मे शुगकाल से लेकर मध्यकाल तक बडी सख्या मे पाए गए हैं।

भारतीय साहित्य और अभिलेखो मे लक्ष्मी के और भी कई नाम मिलते है जैसे द्वारलक्ष्मी धनलक्ष्मी राज्यलक्ष्मी सौभाग्यलक्ष्मी जयलक्ष्मी वीरलक्ष्मी निधिलक्ष्मी धनलक्ष्मी शुभलक्ष्मी स्वर्गलक्ष्मी गृहलक्ष्मी आदि। इनमे से कुछ लक्ष्मी के स्वरूप भारतीय मूर्तिकला मे उकेरे भी गए है।[6]

1 आवर्जितघटकार्य तत्पृष्ठे कुजरद्वयम – *वि०ध० पुराण* 3/82/7
2 करिभ्या स्नाप्यमानाऽसौ–*मत्स्यपुराण* 260/46
3 ऐरावतद्वयोश्चैव कुर्यातआराधयेत सुधी–*मानसार* 54/30
4 द्वारमण्डलमध्यस्था स्नाप्यमाना गजोत्तमै – *समरागणसूत्रधार* 34/28
5 पद्मस्था पद्महस्ता च गजोत्क्षिप्ता घटप्लुता – *चतुर्वर्गचिन्तामणि* विराट खण्ड पृ० 76
6 द्रष्टव्य ए०एल० श्रीवास्तव वैरियस फार्म्स ऑव श्रीलक्ष्मी इन सॉची स्कल्पचर' *जर्नल ऑव द गगानाथ झा केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ इलाहाबाद* वाल्यूम 35 स० 1 2 (1979) 'शुगकला मे विविध स्वरूपा श्रीलक्ष्मी *शुग आर्ट* इलाहाबाद सग्रहालय इलाहाबाद 1991 पृ० 78 96

द्वारलक्ष्मी या तोरणलक्ष्मी

द्वारलक्ष्मी या तोरणलक्ष्मी प्रवेश द्वार अथवा तोरण के मध्य भाग मे स्थापित की जाती थी। कुबेर के पुष्पक विमान मे गजलक्ष्मी की मूर्ति का उल्लेख रामायण (5/7/14) मे मिलता है।[1] मानसार[2] समरांगणसूत्रधार[3] मे भी द्वार के मध्य मे लक्ष्मी की स्थापना का निर्देश है। द्वारलक्ष्मी या तोरणलक्ष्मी के अकन सॉची तथा काशाम्बी के शुगकालीन शिल्प मे पाए जाते है। उडीसा मे तो इसे द्वारलक्ष्मी या तोरणलक्ष्मी कहते है और उस द्वार को लक्ष्मीद्वार कहा जाता है। मध्ययुगीन अनेक मदिरो के ललाटबिम्ब पर लक्ष्मी का अकन पाया गया है।

राज्यलक्ष्मी

श्री राज्यश्री नृपश्री वशलक्ष्मी कुललक्ष्मी आदि नाम राज्यलक्ष्मी के द्योतक है। वैदिक तथा बौद्ध साहित्य महाभारत और पुराणो मे लक्ष्मी के इस स्वरूप के विवरण मिलते है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के ब्रह्मखण्ड मे लक्ष्मी को राज्य प्रदान करने तथा विनाश करने वाली देवी मानकर उनकी स्तुति की गई है– राज्यदा राज्यहत्री च लक्ष्मीदेवी नमोस्तु ते ।[4]

भारतीय साहित्य मे गज छत्र चामर और सिहासन आदि राजचिह्न माने गए है और लक्ष्मी के ऊपर छत्र तथा अगल बगल चामरधारिणी सेविकाओ का भी उल्लेख है। छत्र चामर और गजो से सयुक्त राज्यलक्ष्मी के कई अकन सॉची शिल्प (शुगकाल) मे पाए गए है (चित्र 60)। इसी युग के कतिपय मृत्फलक कौशाम्बी से मिले है जिन पर छत्र और चामरधारिणी परिचारिकाओ का अकन है।

निधिलक्ष्मी

धनदेव कुबेर अष्टनिधियो के स्वामी माने जाते है। अष्टनिधियॉ पद्मिनीविद्या की आधार और लक्ष्मी पद्मिनीविद्या की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती है। मार्कण्डेयपुराण (निधिनिर्णय 68/4 5) मे इसका स्पष्ट उल्लेख है– पद्मिनीनाम या विद्यात्लक्ष्मीतस्याऽधिदेवता । अष्टनिधियो मे पद्म महापद्म मकर कच्छप मुकुन्द नील नन्द और शख की गणना है।[5] विष्णुधर्मोत्तरपुराण मे लक्ष्मी का अभिषेक करने वाले गजो को शख और पदम निधियो के रूप मे देखा गया है– हस्तिद्वय विजानीहि शखपद्मावुभौ निधी [6] । मत्स्यपुराण[7] तथा समरांगणसूत्रधार[8] मे भी लक्ष्मी का निर्माण शख और पद्म निधियो के ससर्ग मे किए जाने का विधान है। इन अष्टनिधियो मे से पद्म मकर और कच्छप के ससर्ग मे लक्ष्मी का अकन भी सॉची शिल्प मे उपलब्ध है। कुषाणकालीन द्विभुज लक्ष्मी के बाएँ हाथ मे प्राय सनाल पद्म और दाएँ मे अभयमुद्रा दिखाई गई है और उसे पद्म के स्थान पर आसन पर बैठे दिखाया गया है। ऐसी कई मूर्तियॉ लखनऊ सग्रहालय मे है

1 नियुज्जमानाश्च गजा सुहस्ता सकेसराश्चोत्पलपत्रहस्ता ।
बभूव देवी च कृतासुहस्ता लक्ष्मीस्तथा पद्मिनि पद्महस्ता।।
— *रामायण* 5/7/17

2 ऐरावतद्वयोश्चैव कुर्यादाराधयेत सुधी । सर्वेषामालये द्वारे मध्यागे तु पूजयेत्।।
— *मानसार* 56/30 31

3 द्वारमण्डलमध्यस्था स्नाप्यमाना गजोत्तमै । पद्मासना पद्महस्ता श्रीश्च कार्या स्वलकता।।
— *समरागणसूत्रधार* 34/28बी 29 ए

4 *ब्रह्मवैवर्तपुराण* ब्रह्मखण्ड 3/6

5 तत्र पद्ममहापद्मौ तथा मकरकच्छपौ।
मुकुन्दनीलौ नन्दश्च शखश्चाष्टयो निधि ।।
— *मार्कण्डेयपुराण* निधिनिर्णय 68/5

6 *विष्णुधर्मोत्तरपुराण* 3/82/10

7 पद्मस्वस्तिकशखैर्वा भूषिता कुचिकालकै — *मत्स्यपुराण* 260/42

8 निधयश्चानुरुपाश्च शखाब्जोज्ज्वललक्षणा। — *समरागणसूत्रधार* 34/25

(स०स० 0 210 50 24 एव 53 67) । कुषाणकालीन एक गजलक्ष्मी भी इस सग्रहालय म है (स०स० ओ 236)। अभय और कमल लिए द्विभुजी देवी के ऊपर गजाभिषेक दिखाया गया हे। गुप्तकाल मे गुप्तवशी मुद्राओ पर भी गजलक्ष्मी के अकन मिलते हैं। भितरी (गाजीपुर उ०प्र०) से लगभग छठी शती इ० की एक मूर्ति मिली है जिसमे एक ओर दुगा और दूसरी ओर गजलक्ष्मी का अकन मिलता है। लखनऊ सग्रहालय (स०स० 55 201) की इस मूर्ति मे देवी को स्थानक मुद्रा मे अत्यन्त चारुता से उकेरा गया हे। देवी का यह पदमवासा रूप है। उनके उभय पार्श्वो मे दोहरे पद्म पुष्पा पर एक एक पुरुष आकृति बैठी हे। मध्यकालीन गजलक्ष्मी की पॉच मूर्तियॉ सग्रहालय मे हे परन्तु वे प्राय खण्डित हे। (स०स० एच 61 एच 171 ओ 115 एस 767 तथा एस 832)।

कुषाणकाल से लक्ष्मी या गजलक्ष्मी का अकन विष्णु अर्द्धनारीश्वर ओर कुबेर के साथ भी मिलने लगता है (मथुरा स०स० 34 2520)। गुप्तकाल मे लक्ष्मी और दुगा एक साथ उकेरे गए थे (लखनऊ स०स० 55 201)। कृष्ण और बलराम तथा गणेश और कुबेर के बीच बैठी लक्ष्मी के पूर्व-मध्यकालीन अकन राजस्थान स मिल हैं। गणेश और कुबेर के बीच बैठी गजलक्ष्मी का एक अकन (8वी शती) लखनऊ सग्रहालय मे भी है (स०स० ओ 251) । लक्ष्मी को कुबेरप्रिया कहा गया है। कुबेर से उनके सम्बन्ध का उल्लेख पहले किया जा चुका है। कुबेर अष्टनिधियो के स्वामी कहे गए हैं। अष्टनिधियो को पद्मिनीविद्या का आधार बताया गया है और पद्मिनीविद्या की अधिष्ठात्री लक्ष्मी कही गई है। इस नाते कुबेर के साथ लक्ष्मी का अकन विचारणीय है। गुप्तकाल से प्रारम्भ होकर मध्यकाल तक विष्णु के साथ लक्ष्मी के अकन मिलते अवश्य है परन्तु उनमे लक्ष्मी के लक्ष्णो का प्राय अभाव रहता है। लक्ष्मी नारायण मूर्तियो मे गजाभिषेक का पूर्णतय अभाव पाया जाता है।

पार्वती तथा गौरी

पार्वती कई नामो से जानी जाती है जिनमे प्रमुख है– सती पार्वती गिरिजा शैलपुत्री काली उमा अपर्णा आदि। अपने पूर्व जन्म मे वे दक्ष प्रजापति की पुत्री सती थी। वे शिव से विवाह करना चाहती थी। परन्तु उनके पिता दक्ष प्रजापति शिव को अवैदिक मानते थे। इसलिए उन्हे अपना दामाद बनने के लिए अयोग्य समझते थे। किन्तु सती ने हठ करके शिव से विवाह कर लिया। शिव से उनका विवाह हो जाने पर भी उनके पिता दक्ष अपने दामाद को अवैदिक ही मानते रहे। इसलिए जब उन्होने यज्ञ का अनुष्ठान किया तब शिव को आमत्रित नही किया। सती अपने पिता के यज्ञ मे शिव के मना करने पर भी चली गईं। लेकिन जब उन्होने देखा कि अन्य देवो के समान शिव का यज्ञभाग भी नही निकाला गया और न उनको आदर दिया गया तब उन्होने शिव अपमान न सह पाने के कारण यज्ञ कुण्ड मे कूदकर अपने प्राण त्याग दिए। ऐसा जानकर शिव की आज्ञा पाकर शिवगणो ने दक्ष का यज्ञ विध्वस कर दिया। दक्ष के यज्ञ विध्वस को अकित करने वाले मृत्फलक अहिच्छत्रा के गुप्तकालीन शिव मन्दिर मे जडे हुए थे जो आजकल नई दिल्ली के राष्ट्रीय-सग्रहालय मे है।

उसके बाद सती ने पर्वतराज हिमालय की पुत्री के रूप मे जन्म लिया। पर्वत पुत्री होने के कारण वे पार्वती गिरिजा तथा शैलपुत्री आदि नामो से जानी गई। आज भी उन्हे पहाडो वाली माना' कहा जाता है। पार्वती जन्म से काले वर्ण की थी इसलिए उनका एक नाम काली भी था। नारद की प्रेरणा से शिव को पति-रूप मे पाने के लिए जब उन्होने तप करने का व्रत लिया तब उनकी माता मेना ने कहा– उ मा' अर्थात ऐसा मत करो। तबसे उनका एक नाम उमा पड गया। कठोर तप करते समय पार्वती ने पहले अन्न जल छोडकर केवल सूखे बेलपत्र खाए किन्तु आगे चलकर उन्होने वे सूखे बेलपत्र खाना भी छोड दिया। तब से वे अपर्णा भी कहलाई। तुलसीदास ने भी लिखा है–

तब परिहरेउ सुखानेउ परना।
उमहि नाम तब भयउ अपरना।। (रामचरितमानस बालकाण्ड)

पार्वती का एक और नाम अधिक प्रसिद्ध है गौरी। हुआ यह कि एक बार भस्म रमाए शिव से आलिगन करती पावती को शिव ने हँसी हँसी मे चन्दन पर लिपटी नागिन कह दिया। वे काली तो थी ही उन्हे शिव की बात अच्छी नही लगी। इसलिए समाधि मे लीन शिव को छोडकर वे अपने पिता के घर हिमालय पर पुन तपस्या करने चली गई। दूसरी बार पार्वती ने कठोर तप से ब्रह्मा को प्रसन्न किया और उनके वरदान से गौर वर्ण प्राप्न किया और गौरी कहलाई। इस प्रकार पार्वती उमा और गौरी उनके विशिष्ट नाम अधिक प्रसिद्ध हुए। शाक्त सम्प्रदाय मे उन्हे आदि शक्ति और जगदम्बा का रूप माना गया और इसी रूप मे उनकी उपासना की गई थी।

भारतीय मूर्तिकला मे पार्वती को शिव के साथ अनेक प्रकार के आख्यानो मे उकेरा गया है। कभी उन्हे शिव के साथ स्थानक मुद्रा मे आलिगन मूर्ति के रूप मे तो कभी विवाह वेदी पर कल्याणसुन्दर रूप मे अथवा उमामहेश्वर वीणाधर अक्षक्रीडा आदि मूर्तियो मे आसनस्थ मुद्रा मे ऑका गया है। इन मूर्तियो मे उन्हे प्राय दाहिनी भुजा को शिव के कधे पर रखकर उनका आलिगन करती तथा बाएँ हाथ मे दर्पण या उत्तरीय पकडे हुए दिखाया गया है।

पार्वती की स्वतत्र मूर्तियॉ भी गढी गई थी। इनमे अधिकतर उनका तपस्विनी रूप ही ऑका गया था। तपस्विनी पार्वती की एक मूर्ति मथुरा सग्रहालय (स०स० 15 879) मे है। गुप्तकाल तक उनकी मूर्तियॉ कम ही गढी गई थी। अहिच्छत्रा से पार्वती की एक गुप्तकालीन मृण्मूर्ति का शीश मिला है जो नई दिल्ली के राष्ट्रीय सग्रहालय मे है। इसकी भावपूर्ण मुद्रा अलकृत जूडा और मस्तक पर तीसरा नेत्र उल्लेखनीय है। इस तीसरे नेत्र के आधार पर ही इसे पार्वती का शीश माना गया है।

कन्नोज सग्रहालय मे भी गुप्तकाल की एक द्विभुजी पार्वती की स्थानक मूर्ति है जो अपने शिल्प सौदर्य के कारण उल्लेखनीय है। अशत खण्डित हो जाने पर भी इसका समानुपातिक अगविन्यास अर्द्धनिमीलित नेत्र योगमुद्रा सुकोमल किन्तु तपस्या से सुगठित गात सपाट गोल प्रभामण्डल कुल मिलाकर यह मूर्ति दर्शक के मन मे तप का उदात्त भाव जगाने मे पूर्णरूप से सक्षम है। मूर्ति के दाहिने सभवत वरदमुद्रा मे उठे हाथ मे अक्षमाला और बाएँ लटकते हाथ मे कमण्डलु उसे तपस्विनी सिद्ध करते है (चित्र 61)। कन्नौज क्षेत्र के ही किसी अज्ञात स्थान वाली प्रतिहारकालीन तपस्विनी पार्वती के एक ऐसे फलक को डा० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी[1] ने प्रकाशित किया है जिसमे स्थानक विष्णु के दोनो पार्श्वो मे एक एक चतुर्भुजी पार्वती की मूर्ति है जिसके हाथो मे वरद स्रुक कुशाकुर और कमण्डलु है। देवी के पैरो के निकट एक ओर सिह और दूसरी ओर हिरन है तथा ऊपर पीठिका पर देवी के एक ओर तीन और दूसरी ओर दो शिवलिग है। देवी के वक्ष पर यज्ञोपवीत के रूप मे योगपटट भी दर्शनीय है। तपस्विनी पार्वती का यह एक अति उत्तम उदाहरण है।

आगे चलकर मध्यकाल मे तपस्विनी पार्वती मूर्तिकारो के लिए एक लोकप्रिय विषय बन गई थी। मध्यकाल मे देशभर मे उनके इस रूप की अनेक मूर्तियॉ ऑकी गई।

1 नी०पु० जोशी प्राब्लेमेटिक स्कल्पचर्स ऑव द प्रतिहार पीरियड *जर्नल ऑव द एशियाटिक सोसाइटी ऑव बाम्बे* वाल्यूम 56 59 (1981 84) पृ० 175 79 फलक 22

अपराजितपृच्छा[1] नामक शिल्पग्रथ मे पार्वती उमा अथवा गौरी की मूर्ति को चतुर्भुजी तीन नेत्रो वाली तथा गोधा (गोह=घडियाल) के आसान पर बनाने का विधान है। रूपमण्डन[2] मे इनके चारो हाथा के आयुध या उपकरण अलग-अलग बताए गए हे–

पार्वती अक्षमाला शिवलिग गणेश ओर कमण्डलु
उमा अक्षमाला पदम दर्पण ओर कमण्डलु
गौरी वरद अक्षमाला पद्म और अभय

रूपमण्डन मे पार्वती के दोनो पक्षो मे एक एक अग्निकुण्ड बनाने का भी निर्देश है। ये अग्निकुण्ड कमण्डलु और अक्षमाला पार्वती के तपस्विनी रूप के परिचायक है। उनका त्रिनेत्र तथा हाथो मे शिवलिग और गणेश उन्हे शिवशक्ति के रूप मे ठहराते है।

वाहन

यद्यपि अपराजितपृच्छा मे पार्वती उमा ओर गौरी तीनो का वाहन गोधा बताया गया है किन्तु रूपमण्डन मे गोधा केवल गौरी का वाहन माना गया है। पार्वती का वाहन सिह माना जाता है। शिव की दम्पति मूर्तियों मे शिप की ओर वृषभ का और पार्वती की ओर सिह का अकन अधिकाश फलको पर दिखाई देता है। सिह के वाहन बनने की एक कहानी है। जब पार्वती गौर वर्ण पाने के लिए तपस्या करने जाने लगी तब उन्होने वीरक नामक अपने विश्वस्त गण को शिव पर निगाह रखने का आदेश दिया। एक दिन आडी नामक असुर पार्वती का रूप धारण कर शिव के कक्ष मे गया। उसने सोचा था कि प्रेमक्रीडा करके मै शिव का विनाश कर दूँगा। इधर वीरक ने जब एक युवती को शिव के कक्ष मे जाते देखा तो झटपट उसकी सूचना पार्वती को जा पहुँचाई। यह समाचार सुनकर पार्वती क्रोध से आग बबूला हो गई और उनका क्रोध भयकर सिह के रूप मे प्रकट होकर उनके शरीर से बाहर आ गया। तबसे वह सिह सदैव पार्वती के सग बना रहा। कुछेक मूर्तियो मे सिह के साथ मृग का अकन भी मिलता है। मृग तपोवन का प्राणी है और पार्वती के तपस्विनी रूप का परिचायक है। सिह के साथ उसका अकन स्वाभाविक शत्रुता को त्यागकर साधुवत शान्ति सदभाव एव सह अस्तित्त्व का प्रतीक भी प्रस्तुत करता है।

लखनऊ के राज्य सग्रहालय मे मध्यकाल की लगभग 15 पार्वती की मूर्तियॉ हैं परन्तु उनमे अधिकाश खण्डित है। कानपुर जिले मे मूसानगर के मुक्तादेवी मन्दिर की 7वी शती की एक द्विभुजी पार्वती की मूर्ति (स०स० 54 148) उल्लेखनीय है। दोनो घुटनो पर योगपटट लगाए देवी कमल के आसन पर योगासन मुद्रा मे बैठी है। उसके दाहिने ऊपर उठे हाथ मे अक्षमाला है और बाएँ नीचे झुके हाथ मे कमण्डलु। ऊपर पद्मदलाकित प्रभामण्डल है।

1 चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च सर्वाभरणभूषिता
गोधासनोपविष्ठा च कर्तव्या सर्वकामदा
उमा च पार्वती गौरी ललिता च श्रियोतमा — *अपराजितपृच्छा* गौरीद्वादशमूर्ति प्रकरण 222

2 अक्षसूत्राम्भुजेधत्ते दर्पण च कमण्डुलम।
उमानाम्नी भवेन्मूर्तिर्वन्दिता त्रिदशैरपि।।
अक्षसूत्र शिव देव गणाध्यक्ष कमण्डुलम।
पक्षद्वयेऽग्निकुण्ड च मूर्तिस्सा पार्वतीस्मृता।।
अक्षसूत्र तथा पद्म अभय च वर तथा।
गोधासनाश्रिता मूर्तिर्गृहे पूज्या श्रिये सदा।। — *रूपमण्डन* 5/2 4

11वी 12वी शती ई० की दो अन्य पार्वती की स्थानक मूर्तियॉ लगभग समूची है। एक मूर्ति के बाएँ दोनो हाथ खण्डित है दाएँ मे अक्षमाला और दर्पण है। देवी के कमलासन के नीचे गोधा का और ऊपर प्रभामण्डल का अकन है। इस मूर्ति के दोनो पार्श्वो मे पालथी मारकर दाढीयुक्त दो दो अग्निदेव की मूर्तियॉ है जो सभवत चार अग्निकुण्डो की प्रतीक है। प्रभामण्डल के पार्श्वो मे रथिकाबिम्ब के स्थान पर चतुर्भुजी शिव एव गणेश विराजमान है (स०स० एच 25)। दूसरी मूर्ति का सामान्य दायॉ हाथ खण्डित है। ऊपरी हाथ मे शिवलिग है। बाएँ हाथो मे कमण्डलु तथा गणेश है। देवी के पैरो के नीचे गोधा है। प्रभामण्डल के पार्श्वो मे तथा ऊपर ब्रह्माणी वैष्णवी तथा माहेश्वरी के अकन है (स०स० 60 368) ।

इलाहाबाद सग्रहालय मे मथुरा लाच्छागिरि (इलाहाबाद) तथा एक अज्ञात स्थान से प्राप्त पार्वती की तीन मूर्तियॉ उल्लेखनीय हे। मथुरा वाली चतुर्भुजी मूर्ति स्थानक मुद्रा मे है। देवी के नीचे फैले हुए दाहिने हाथ मे वरद मुद्रा और बाएँ मे कमण्डलु है। दाहिने और बाएँ ऊपरी हाथो मे अक्षमाला और त्रिशूल है। पादपीठ पर गोधा और अण्डाकार फलक का किनारा कुण्डलित अग्नि-ज्वाल जैसे चिह्नो से अलकृत है (स०स०-ए०एम० 976)। मूर्ति लगभग 8वी शती की है।

लाच्छागिरि से प्राप्त 9वी शती की प्रतिमा वक्ष के नीचे खण्डित है। देवी के सामान्य हाथ भी खण्डित है। ऊपरी दाहिने हाथ मे त्रिशूल तथा बाएँ मे दर्पण है। कुण्डलित और धम्मिलधारिणी पार्वती का प्रभामण्डल नुकीले पद्मदलो से अलकृत है। ऊपर दोनो ओर मालाधारी विद्याधर है (स०स० ए०एम० 283)। मूर्ति का बचा भाग आधा मीटर से अधिक ऊँचा है जो इस मूर्ति के विशाल होने का साक्षी है। किसी अज्ञात स्थान से प्राप्त तपस्विनी पार्वती के लगभग एक मीटर ऊँचे और चौकोर एक अन्य मूर्ति फलक मे भी देवी के वक्ष के नीचे से लेकर पैरो के ऊपर तक का भाग खण्डित है। उसके चारो हाथ भी खण्डित हो चुके है। देवी के बाएँ पार्श्व मे नीचे दो नारी सेविकाएँ व्याल तथा मकरिका है। उसके ऊपर गणेश और दो ऋषियो की आकृतियॉ है। देवी के दाहिने परिकर मे कार्त्तिकेय (?) तथा दो ऋषि आकृतियॉ झुककर दोनो ओर बने एक एक अग्नि कुण्ड मे हविष डाल रही हैं। देवी की भुजाओ के पास व्याल आकृतियो के पीछे भी एक एक ऋषि झुककर हविष डालने की मुद्रा मे दिखाई देता है। देवी के पद्मप्रभामण्डल के ऊपर भी विद्याधरो के बीच एक अग्निज्वाल जैसी आकृति इस मूर्ति म पार्वती के पचाग्नितप का अकन प्रस्तुत करती है। फलक मे सबसे ऊपर देवी के दाहिने एक और बाएँ पॉच शिवलिग बने है (स०स० ए०एम 942)।

बैजनाथ (अल्मोडा उ०प्र०) से प्राप्त और नई दिल्ली के राष्ट्रीय सग्रहालय (स०स० 53 14) मे मध्यकालीन स्थानक पार्वती का एक सुन्दर फलक सग्रहीत है। अनेक आकृतियो से भरे इस फलक मे देवी के पद्मासन के अगल बगल एक एक सिह बैठा दिखाया गया है। देवी के हाथो मे क्रमश वरदमुद्रा अक्षमाला एव पुष्प त्रिशूल एव कमण्डलु (खण्डित) होने से उनका तपस्विनी रूप स्पष्ट है।

दुर्गा

दुर्गा शाक्त सम्प्रदाय की प्रमुख देवी है। इसे आद्याशक्ति के तमोगुण रूप मे पूजा जाता है। वस्तुत शाक्त सम्प्रदाय की तीनो प्रमुख देवियॉ महालक्ष्मी महाकाली और महासरस्वती दुर्गा के ही रूप है। दुर्गा को सभी देवताओ ने अपना अपना तेज और अपने अपने आयुध देकर उसे अलौकिक शक्ति प्रदान की और उसकी पूजा की और तब उस देवी ने असुरो का विनाश किया था।

महाभारत तथा अनेक पुराणो मे कहा गया है कि गोकुल के नन्द की पुत्री के रूप मे उत्पन्न कन्या को अपने पुत्र के बदले जब वसुदेव मथुरा की कारागार मे ले आए तब कस ने उसे देवकी की आठवी सन्तान समझकर ज्योही शिला पर पटकना चाहा त्यो ही वह छिटककर आकाश मे उड गई और कस को दुर्गा के रूप मे दिखाई दी। वहॉ से वह कन्या विन्ध्य पर्वत पर जा पहुँची। शायद दुर्ग (जगल) मे निवास करने के कारण उसका नाम दुर्गा पड गया।

महाभारत मे विराट तथा भीष्म पर्व मे दुर्गा के स्तोत्र मिलते है जिनमे उसे विन्ध्यवासिनी और रक्त तथा मद्य का पान करने वाली देवी कहा गया हे। मार्कण्डेयपुराण म देवीमाहात्म्य के अन्तगंत दुगा ओर उसकी उपासना पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। असुरो के विनाश के लिए इस देवी का स्वरूप अत्यन्त विकराल और सहारक था। इसीलिए उसकी पूजा वनवासी भी करते थे। देवी की पूजा पद्धति भी अन्य देवा से भिन्न है। इसमे मद्य मास और बलि का महत्त्व हे जो आज भी प्रचलित है।

दुर्गा को आदिशक्ति महामाया के रूप मे अलोकिक शक्तिसम्पन्न एव चण्ड मुण्ड शुभ निशभु तथा महिष नामक असुरो का विनाश करके देवताओ की रक्षा करने वाली देवी माना गया है। जब महिषासुर नामक असुर के अत्याचारो से सभी देवता प्रताडित हो रहे थे तब देवताओ की प्रार्थना पर आदिशक्ति ने दुर्गा का उग्र रूप धारण करके महिषासुर का विनाश किया। महिषासुर का विनाश करन के कारण उसका एक नाम महिषमर्दिनी अथवा महिषासुरमर्दिनी अधिक प्रसिद्ध हो गया। उसकी मूर्तियॉ भी इस रूप मे अधिक बनाई गई थी। इस प्रकार दुर्गा के दो रूप उभरकर सामने आए एक शान्त दुर्गा का और दूसरा महिषमर्दिनी दुर्गा का।

शिल्पशास्त्रो मे महिषासुरमर्दिनी दुर्गा को बहुभुजी बनाने का निर्देश है। उनके प्रमुख आयुधो मे त्रिशूल खडग शूल चक्र धनुष पाश अकुश परशु तथा घण्टिका मानी जाती है। देवी का अभग मुद्रा मे शरीर पैर के नीचे शीश कटा महिष उसके कटे गले से निकलता असुर आदि देवी का स्वरूप दुर्गासप्तशती और भारतीय मूर्तिकला मे अकित है।

महिषमर्दिनी दुर्गा

महिषमर्दिनी दुर्गा का स्वरूप कुषाणकाल से ही मथुरा के शिल्पियो के द्वारा गढा जाने लगा था किन्तु सिहवाहिनी शान्त दुर्गा की मूर्तियॉ गुप्तकाल से उकेरी गई थी। मथुरा की कुषाणकालीन महिषासुरमर्दिनी की मूर्तियॉ प्राय चतुर्भुजी है। एक मृण्मूर्ति के ऊपरी हाथो मे खडग और ढाल है दाहिना हाथ महिषासुर की पीठ दबाता हुआ अकित है और बाएँ हाथ मे उस असुर की गर्दन है (स०स०-36 2715)। आगे चलकर षडभुजी (स०स० 37 2784) और अष्टभुजी (बर्लिन सग्रहालय स० आई 5817) मूर्तियॉ भी मथुरा मे गढी गई थी। मथुरा की एक शीशविहीन मृण्मूर्ति मे देवी के ऊपरी हाथ खण्डित है सामान्य दायॉ हाथ असुर की पीठ पर रक्खा है और बाएँ हाथ से उसने असुर की गर्दन पकडकर उसे ऊपर उठा रक्खा है (स०स० ओ 600)। गुप्तकालीन महिषमर्दिनी की मूर्तियॉ कन्नौज देवगढ (उ०प्र०) तथा उदयगिरि (विदिशा म०प्र०) आदि कई स्थानो से मिली है।

मध्यकाल मे इस देवी की मूर्तियॉ द्वादशभुजी से लेकर बीसभुजी तक बनायी गई थी। लखनऊ सग्रहालय मे महिषमर्दिनी की पॉच मूर्तियॉ हैं (स०स० जी 68 जी 108 जी-400 एच-24 और 56 351)। इनमे उसे एक मे दशभुजी तथा शेष मे अष्टभुजी बनाया गया है। देवी को प्राय प्रत्यालीढ मुद्रा मे महिष की पीठ पर पैर रखे और उसे शूल या त्रिशूल से वध करते दिखाया गया है। देवी के अन्य हाथो मे चक्र धनुष बाण खडग ढाल घण्टा उत्तरीय अभयमुद्रा आदि द्रष्टव्य है। कुछ मूर्तियो मे देवी के वाहन सिह का अकन नही है (चित्र 62)।

इलाहाबाद सग्रहालय मे महिषमर्दिनी की तीन मूर्तियॉ सग्रहीत है। भीटा (इलाहाबाद उ०प्र०) और भुमरा (सतना म०प्र०) से प्राप्त दो मूर्तियॉ वास्तुखण्ड पर उत्कीण है। दोनो चतुर्भुजी है। देवी के ऊपरी हाथो मे खडग और ढाल है बाएँ हाथ से महिष का अग दबोचकर दाहिने हाथ के शूल से उसे उसका वध करते दिखाया गया है। एक मूर्ति मे उसका वाहन सिह भी असुर पर आक्रमण करता अकित है। इनमे से भुमरा वाली मूर्ति ढलते गुप्तकाल की है (स०स० ए०एम० 152) तथा दूसरी भीटा वाली मध्यकालीन 11वी शती की है (स०स० ए०एम० 397) । तीसरी अष्टभुजी महिषमर्दिनी की स्वतत्र मूर्ति है। लगभग 9वी शती ई० की निर्मित इस मूर्ति का प्राप्ति स्थल अज्ञात है। यह मूर्ति ऊपर से लेकर नीचे तक बहुत कुछ खण्डित है। फिर भी देवी

के दाहिने हाथो मे शूल बाणकोश चक्र और खडग स्पष्ट है। देवी अपने बाएँ हाथ मे महिष के अग से उत्पन्न असुर को केश से पकडे है। देवी का एक पैर महिष पर टिका है। देवी का वाहन सिह भी अपने अगले पैर महिष पर रखकर उस पर आक्रमण कर रहा है (स०स०-ए०एम० 1088)।

कन्नौज-सग्रहालय मे भी 7वी से लेकर 9वी शती ई० के बीच निर्मित महिषमर्दिनी की दो चतुर्भुजी एक अष्टभुजी और एक दशभुजी मूर्ति है। एक चतुर्भुजी देवी के ऊपरी हाथो मे खडग और चर्म है। भूमि पर खडी देवी ने अपना दायॉ पैर महिष के भूमि पर पडे शीश पर रक्खा है बाएँ हाथ से उसके पिछले पैर पकडकर ऊपर को उल्टा करके उठा रक्खा है और अपने दाएँ हाथ मे पकडा त्रिशूल उसके पिछले अग पर गडा रक्खा है। दूसरी चतुर्भुजी मूर्ति मे देवी प्रत्यालीढ मुद्रा मे है। उसने महिष के मुख को अपने बॉये हाथ से दबा रक्खा हे और अपना दायॉ पैर उसकी पीठ पर रक्खा है। देवी के ऊपरी बाएँ हाथ मे ढाल है। देवी ने अपने अतिरिक्त दाये हाथ से महिष की पूँछ पकड रक्खी है और वह अपने सामान्य हाथ की खडग से उस पर आक्रमण कर रही है। उसका वाहन सिह भी अपने मुँह से महिष को दबोच रहा है।

अष्टभुजी देवी वाली मूर्ति मे देवी ने महिष का शीश अपने त्रिशूल से काटकर भूमि पर गिरा दिया है। उसके कटे अग से निकलते असुर को देवी ने अपने एक बाये हाथ मे दबोच लिया है। उसके अन्य बाएँ हाथो मे खडग ढाल और धनुष है। देवी के दाहिने हाथो मे त्रिशूल बाणकोश चक्र और घण्टा है। प्रत्यालीढ मुद्रा मे खडी देवी का दायॉ पैर महिष पर आरूढ है।

दशभुजी देवी प्रतिहारकला का उत्कृष्ट नमूना है। प्रत्यालीढ मुद्रा मे देवी का दायॉ पैर महिष पर आधारित है। उसने महिष की गर्दन काट दी है। उसके अग से निकलते दैत्य को देवी अपने दोनो हाथो मे पकडे शूल से वेध रही है। देवी ने अपने एक बाएँ हाथ से एक अन्य दैत्य को उसके केश पकडकर ऊपर उठा रक्खा है। देवी के अन्य बाएँ हाथो मे ढाल तथा घण्टा है। एक हाथ खण्डित है। दाहिने हाथो मे शूल चक्र खडग तथा दो अन्य अज्ञात उपकरण हैं। देवी के दाये पार्श्व मे महिष के पीछे उनका वाहन सिह भी दिखाई दे रहा है।

ग्वालियर-सग्रहालय मे उत्तर गुप्तकाल की एक मोहक षडभुजी महिषमर्दिनी की स्थानक मूर्ति है। देवी के बाएँ हाथ खण्डित है किन्तु सामान्य बायॉ हाथ कटिबन्ध के नीचे अवस्थित था। दाएँ ऊपर उठे हाथो मे अभय त्रिशूल और एक अस्पष्ट आयुध है। देवी महिष के कटे शीश पर खडी है और उस महिष शीश से पीठ सटाकर विपरीत दिशा मे मुँह किए एक एक सिह बैठा है।[1] ये दो सिह सभवत सिहासन को सार्थक करने वाले अग है। पार्वती की एकाध मूर्तियो मे भी नीचे दो सिह पाए गए है। ऐसी एक मूर्ति लखनऊ सग्रहालय मे भी है (स०स०-ओ 2521)।

शान्त दुर्गा

जब देवी को सहारक महिषमार्दिनी के रूप मे न बनाकर केवल शान्त रूप मे बनाते है तब उसे शान्त दुर्गा कहा जाता है। बहुभुजी देवी के हाथो मे ऊपर बताए गए आयुधो के आधार पर उसकी पहचान की जाती है। शान्त दुर्गा की मूर्तियो मे महिषासुर का अकन नही पाया जाता है। कुछेक मूर्तियो मे सिह भी अनुपस्थित रहता है। सिहवाहिनी दुर्गा के कई स्वरूप मूर्तिकला मे मिलते है–

1 बैठे हुए सिह पर आसीन देवी जैसे उसे चन्द्रगुप्त प्रथम के सिक्को पर दिखाया गया है। इस कोटि का एक गुप्तकालीन गोल मृत्फलक श्रावस्ती से मिला है जो सम्प्रति लखनऊ सग्रहालय मे है (स०स० बी 592)। पद्मदलो से अलकृत फुल्ले के बीच द्विभुजी देवी बैठी है। देवी का दायॉ हाथ उसके

1 नी०पु० जोशी *प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान* पटना 1977 पृ० 136 चित्र 96

दाये घुटने पर रक्खा है ओर बाये हाथ म त्रिशूल हे। देवी प्रभामण्डल त्रिनेत्र कुण्डल ग्रेवेयक मेखला ओर ककन से सुशोभित हे (चित्र 63)। इसी काल की ऐसी ही एक मूर्ति मथुरा सग्रहालय मे है (स०स० 17 128३)

2 खडे अथवा चलते हुए सिह पर आसीन देवी जैसे उसे भितरी (उ०प्र०) से प्राप्त एक मूर्ति मे दिखाया गया हे। यह गुप्तकालीन मूर्ति लखनऊ सग्रहालय मे हे (स०स० 55 201)। सिह पर आसीन इस चतुर्भुजी दवी के दाये हाथो मे त्रिशूल एव खडग है और बाये हाथो मे पदम तथा खेटक है (चित्र 64)। चन्द्रशाला से सुशोभित शिरोभूषा वाले इस चौकोर फलक के पीछे गजलक्ष्मी का अकन है। ऐसी ही मध्यकालीन कुछ मूर्तियॉ भी इसी सग्रहालय मे ह (स०स० 66 112 एव 66 224)।

3 बैठी देवी के आसन के नीचे बैठे सिह के साथ वाली दवी। एसी एक अष्टभुजी दुर्गा की मूर्ति पूर्वी भारत से प्राप्त हुई है और लखनऊ सग्रहालय मे है (स०स० 62 119) ।

4 एकाध ऐसी भी मूर्तियॉ मिली है जिनमे आसन के दोनो ओर एक एक सिह की आकृति हे जो सिहासन की सार्थकता सिद्ध करते है। ऐसी एक मूर्ति लखनऊ सग्रहालय मे है (स०स० ओ 252)। दो सिहो के कारण विद्वान इसे दुर्गा का क्षेमकरी रूप मानते है।

5 शान्तरूप मे खडी देवी और उसके पार्श्व मे बैठा सिह। कन्नौज से प्राप्त प्रतिहार युग की एक अत्यन्त सुन्दर ऐसी मूर्ति लखनऊ सग्रहालय की शोभा है (स०स० 55 287)। प्रभामण्डल एव सुरुचिपूर्ण जटाजूट और अलकारो से विभूषित स्मितवदना अष्टभुजी देवी त्रिभग मुद्रा मे खडी है। दाये हाथो मे अभय अक्षमाला खडग है। उसका सामान्य बायॉ हाथ कटि के नीचे स्थित है। अन्य हाथो मे त्रिशूल खेट और घण्टिका है। देवी के दोनो ओर एक एक चतुर्भुजी देवियॉ है। दोनो सामान्य हाथो से नमस्कार मुद्रा मे है। परन्तु दाई ओर की देवी के ऊपरी हाथो मे चामर और पद्म है तथा बायी ओर की देवी के ऊपरी दाएँ के ऊपर देवी के त्रिशूल का दण्ड रक्खा है और बायॉ हाथ देवी के समान जघा पर अवस्थित हे। डा० जोशी ने इन्हे पद्मपुरुष और त्रिशूलपुरुष के स्थान पर पदमदेवी और त्रिशूलदेवी माना है। देवी के बाई ओर अजलिबद्ध एक सेविका और दाई ओर शान्त मुद्रा मे वाहन सिह बैठा है।

6 सिह पर आरूढ देवी के गोद मे बालक। ऐसी मूर्तियो की पहचान स्कन्दमाता दुर्गा से की जाती है। स्कन्दमाता उत्तरी भारत की परम्परा मे नवदुर्गा का एक रूप है (1 शैलपुत्री 2 ब्रह्मचारिणी 3 चन्द्रघटा 4 कुष्माण्डा 5 स्कन्दमाता 6 कात्यायनी 7 कालरात्रि 8 महागौरी और 9 सिद्धिदात्री)। दुर्गासप्तशती मे दुर्गा के इन रूपो का वर्णन है।[1]

ख अन्य देवियॉ

मातृकाओ एव लोकदेवियो का अकन मथुरा मे कुषाणकाल से प्रारभ हो चुका था। इनमे से कुछ देवियो की लोकप्रियता तो केवल कुषाणकाल तक और केवल मथुरा क्षेत्र तक ही सीमित रह गई थी। ऐसी देवियो मे मुख्यरूप से वसुधारा एकानशा और षण्मुखी षष्ठी के नाम उल्लेखनीय है। नदी देवियो मे गगा और यमुना को भी भारतीय मूर्तिकला मे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया था।

वसुधारा

एक हाथ मे अभय और दूसरे मे प्राय दो मछली लिए स्थानक मुद्रा मे एक देवी का अकन शुग कुषाणकाल की मृण्मूर्तिकला मे मिलता है। कुछ मूर्तियो मे कलश और छत्र का अकन भी है। इसे

1 यहॉ पर यह उल्लेख आवश्यक है कि भारत की दक्षिणात्य परम्परा मे नवदुर्गा के नाम भिन्न हैं। सुप्रभेदागम के नौ रूप इस प्रकार बताए गए हैं— 1 नीलकण्ठी 2 क्षेमकरी 3 हरसिद्धि 4 रुद्राश 5 वानदुर्गा 6 अग्निदुर्गा 7 जयदुर्गा 8 विन्ध्यवासिनी और 9 रिपुमरी।

वासुदेवशरण अग्रवाल एव रत्नचन्द्र अग्रवाल आदि विद्वानो ने वसुधारा नाम दिया है। परन्तु इसकी साहित्यिक सपुष्टि नही हो सकी है।

एकानशा

द्विभुजी यह देवी भी केवल कुषाणकाल मे ही लोकप्रिय रही किन्तु अपने नाम भेद से आज भी पूजी जाती है। एकानशा कृष्ण और बलराम की वह बहन थी जिसे कस ने जब पटका था तब वह छिटककर आकाश मे चली गई थी। इसका उल्लेख हरिवश विष्णु अग्नि आदि अनेक पुराणो मे मिलता है। विष्णुधर्मोत्तर तथा बृहत्सहिता मे भी इस देवी के रूपो का वर्णन है। मथुरा मे कुषाणकालीन ऐसी तीन मूर्तियॉ मिली है जिनमे कृष्ण और बलराम के बीच देवी का अकन है और जो आकार मे भाइयो से छोटी बनाई गई है[1] (चित्र 65)। कुषाणकालीन एकानशा की एक मूर्ति हरियाणा के गुडगॉव जिले मे सघेल नामक स्थान से मिली है और सम्प्रति चण्डीगढ मे हरियाणा पुरातत्त्व एव सग्रहालय विभाग मे सरक्षित है।[2] कुछ कुषाण गुप्तकालीन मूर्तियॉ नॉद तथा अमझरा (राजस्थान) से भी मिली है। उडीसा के पुरी मदिर मे जगन्नाथ की मूर्ति म कृष्ण और बलदाऊ के बीच सुभद्रा आकार मे छोटी है और एकानशा की परम्परा पर प्रकाश डालती है।

षण्मुखी षष्ठी

एकानशा के ही समान स्कन्द और विशाख के बीच मे अपेक्षतया छोटे आकार मे द्विभुजी यह देवी अभय एव कटिविन्यस्त हाथो से स्थानक मुद्रा मे दिखाई देती है। देवी के शीश के ऊपर घेरकर प्राय पॉच उपदेवियॉ या उनके मुखभाग अकित रहते हैं। मथुरा मे ऐसी लगभग आठ मूर्तियॉ पाई गई है। षष्ठी भी स्कन्द या कार्त्तिकेय और विशाख की बहन थी। इसीलिए डा० जोशी इसे एकानशा जैसी परम्परा पर स्वीकार करते है (चित्र 66)।[3]

गगा यमुना

गगा तथा यमुना हमारे देश की पवित्र नदियॉ है। पहले वैदिक युग मे सिन्धु तथा सरस्वती नदी की स्तुतियॉ की जाती थी। तब गगा और यमुना का महत्त्व कम था। बाद मे सरस्वती के सूख जाने और आर्यावर्त मे आर्य सस्कृति के फेल जाने पर गगा और यमुना नदियॉ महत्त्वपूर्ण हो गई। हमारे यहॉ मदिर मे प्रवेश करने से पहले पवित्र नदियो मे स्नान करने की परम्परा थी। गुप्तकाल से इन नदी देवियो को मदिर के प्रवेशद्वार के पक्खो पर स्थापित किया जाने लगा। स्नान न कर पाने वाला भक्त केवल इनके दर्शन मात्र से पवित्र हो जाता था। कालिदास ने इनका इसी रूप मे वर्णन किया है। गुप्तकालीन गगा यमुना की मूर्तियॉ उदयगिरि (म०प्र०) भुमरा आदि कई स्थानो से मिली है परन्तु सर्वाधिक सुन्दर आदमकद मकरवाहिनी जलकुम्भ लिए गगा और कच्छपवाहिनी यमुना की मृण्मूर्तियॉ आहिच्छत्रा मे शिव मन्दिर के पक्खो पर जडी थी जो अब राष्ट्रीय सग्रहालय नई दिल्ली की निधि है (चित्र 67 69) । आगे चलकर प्राय सभी मदिरो के प्रवेशद्वार मे नीचे अगल बगल इन नदी देवियो की मूर्तियॉ आवश्यक रूप से स्थापित की जाने लगी थी।

ग मातृकाऍ और सप्तमातृकाऍ

मातृका का शाब्दिक अर्थ है माता के समान । ऐसा माना जाता है कि ये मातृकाऍ यो तो क्रूर स्वभाव वाली होती हैं परन्तु यदि इन्हे प्रसन्न किया जाए तो ये मातृवत पालन करती है। मातृकाओ की उत्पत्ति की एक कथा वाराहपुराण मे मिलती है। एक बार अन्धकासुर से देवताओ का भयानक सग्राम हुआ। अन्धक के शरीर से निकली रक्त की एक एक बूँद के पृथिवी पर गिरते ही उसी के समान शक्तिशाली अन्धक उत्पन्न हो रहे थे। अन्त मे शिव के विकराल क्रोध से एक ज्वाला उत्पन्न हुई जो योगेश्वरी मातृका बन गई। इसी

1 नी०पु० जोशी *प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान* छाया चित्र 65 रेखाचित्र 80 81

2 देवेन्द्र हाण्डा *सग्रहालय पुरातत्त्व पत्रिका* स० 29 30 पृ० 41 43 तथा चित्र।

3 नी०पु० जोशी *उपरोक्त* पृ० 132

प्रकार अन्य देवो के तेज स उनकी शक्तियॉ भी मातृका बन बनकर निकल पडी। इन मातृकाओ ने अन्धकासुर के अग से निकलती रक्त की बूँदा को पृथिवी पर गिरने से पहले ही पीना शुरू कर दिया आर तब अन्धक मारा गया।

इन मातृकाओ की कुल सख्या सात होने से वे सप्तमातृकाएँ कहलाइ। ये सात मातृकाएँ थी–

वाराही चैव कौमारी चामुण्डा भैरवी तथा।
माहेन्द्री वैष्णवी चैव ब्रह्माणी सप्तमातर ।।

ये शक्तियॉ जिन देवो की थी उनके नाम इस प्रकार है–

वाराही	वाराह विष्णु
कौमारी	कुमार या कार्त्तिकेय
चामुण्डा	यम
भैरवी (माहेश्वरी)	भैरव (शिव)
माहेन्द्री (ऐन्द्री)	महेन्द्र (इन्द्र)
वैष्णवी	विष्णु
ब्रह्माणी या ब्राह्मी	ब्रह्मा

कही कही योगेश्वरी और नारसिही को भी मातृकाओ मे गिनाया गया है। योगेश्वरी शिव की और नारसिही नृसिह विष्णु की शक्तियॉ थी। ये मातृकाएँ मनुष्य के अन्त करण की दुष्प्रवृत्तियो की अधिष्ठात्री देवियॉ मानी गई है। योगेश्वरी का सम्बन्ध काम से माना जाता हे और इसी प्रकार माहेश्वरी का क्रोध से वैष्णवी का लोभ से ब्राह्मी का मद से कौमारी का मोह से माहेन्द्री का मात्सर्य से चामुण्डा का पैशुन्य से एव वाराही का असूया से सम्बन्ध माना जाता है।

देवीकवच मे इन सप्तमातृकाओ के वाहनो का उल्लेख मिलता है जिसके आधार पर भारतीय मूर्तिकला मे उनकी पहचान की जा सकी है।

प्रेतसस्था तु चामुण्डा वाराही महिषानना।
ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना।।
माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना।
ब्राह्मी हसमारूढा सर्वाभरणभूषिता।।

अर्थात चामुण्डा प्रेत (शव) पर वाराही महिष पर इन्द्राणी हाथी पर वैष्णवी गरुड पर माहेश्वरी वृषभ (बैल) पर कौमारी मयूर पर और ब्राह्मी हस पर आरूढ रहती है। वस्तुत ये वाहन इन मातृकाओ के देवो के हैं। निम्न तालिका से यह बात स्पष्ट हो जाती है–

महेश्वर (शिव)	माहेश्वरी	वृषभ (बैल)
विष्णु	वैष्णवी	गरुड
ब्रह्मा	ब्राह्मी	हस
कुमार (कार्त्तिकेय)	कौमारी	मयूर
वराह	वाराही	महिष (वाराह भी)
इन्द्र	ऐन्द्री (इन्द्राणी)	गज (हाथी)
क्रूर माताएँ या यम	चामुण्डा	शव

एक दो तीन चार पॉच छह और सात मातृकाओ को एक साथ अकित करने वाले फलक कुषाणकाल से ही मथुरा मे ऑके जाने लगे थे। इनमे कुछ के मुख पक्षी और किसी पशु के है तथा कुछ की गोद मे बालक

भी है। डा० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी ने विस्तार से इन मूर्ति फलको का विवेचन प्रस्तुत किया है।[1] उनकी मान्यता है कि यद्यपि भारत मे सप्तमातृकाओ की पूजा का प्रचलन पुराना है तथापि मूर्ति लक्षणो के अभाव मे कुषाणकालीन इन फलको पर उकेरी गई मातृकाओ मे ब्राह्मी माहेश्वरी वैष्णवी कौमारी आदि की पहचान कर पाना सभव नही है।

गुप्तकाल से इन सप्तमातृकाओ को प्रमुख देवताओ की शक्तियो के रूप मे देखा जाने लगा और तब ब्रह्मा की ब्रह्माणी विष्णु की वैष्णवी महेश्वर की माहेश्वरी कार्त्तिकेय की कौमारी इन्द्र की इन्द्राणी और वराह (महावराह विष्णु) की वाराही सप्तमातृकाओ मे गिनी जाने लगी। सातवी मातृका चामुण्डा क्रूर मातृकाओ की प्रतीक थी। तदनन्तर वीणाधर शिव और फिर गणेश इन सप्तमातृका फलको पर उकेरे जाने लगे। उदयगिरि (म०प्र०) की एक गुफा के सप्तमातृका फलक मे कार्त्तिकेय का भी अकन है परन्तु कालान्तर मे शिव और गणेश ही प्रमुख रूप से उकेरे जाते रहे थे। गुप्तकालीन सप्तमातृका फलको पर अभी देवियो के वाहन नही उकेरे गए थे। केवल उनके मुखो आयुधो अथवा ध्वजो से ही उनकी पहचान सभव थी।

गुप्तकाल से लेकर मध्यकाल तक सप्तकातृकाओ का महत्त्व बढता ही गया। अब इन देवियो के साथ उनके वाहनो का अकन भी किया जाने लगा था। कुछ फलको पर देवियो की गोद मे अब भी बालको का अकन किया जाता था। यह भी आवश्यक नही था कि बालक सभी की गोद मे बनाया जाए। इन सप्तमातृकाओ को या तो आसनस्थ मुद्रा मे बैठे अथवा नृत्य मुद्रा मे खडे दिखाया गया है। मध्ययुगीन सप्तमातृकाओ के विविध अकन देश भर मे पाए गए है। मध्यकाल मे इन सप्तमातृकाओ को अलग अलग स्वतत्र रूप मे भी उकेरा गया था। विभिन्न शिल्प ग्रथो मे उनके मूर्ति निर्माण के लिए स्वरूप-निर्धारण भी किया गया था। इनमे विष्णुधर्मोत्तरपुराण अपराजितपृच्छा और रूपमण्डन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वाराही इन्द्राणी और कौमारी की वाहनोसमेत गुप्तकालीन मूर्तियॉ बडौदा सग्रहालय मे है। (स०स०-2 553 2 546 2 547 चित्र 70 73) ।

लखनऊ के राज्य-सग्रहालय मे स्वतत्र मातृकाओ और सप्तमातृकाओ के अनेक फलक सग्रहीत है। इनमे से दो पर सातो मातृकाएँ अपने अपने वाहनो के साथ ललितासन मे बैठी है (स०स० एच 34 चित्र 75) ओर मथुरा से प्राप्त दूसरे फलक पर शिव तथा गणेश के बीच सभी नृत्य मुद्रा मे है। (स०स०-एच 83) । इस फलक पर गणेश के बाद नैगमेष तथा तीन अन्य देवियो के भी अकन है। कर्णप्रयाग चमोली से प्राप्त तथा रानीहाट मन्दिर टिहरी गढवाल (जो अल्मोडा सग्रहालय मे हैं) के दो फलको पर केवल ब्राह्मी माहेश्वरी और कौमारी के अकन है (स०स० 65 172 एव 56 358) । रानीहाट मन्दिर वाला फलक कत्यूरी शिल्प का एक उत्तम उदाहरण है। इस फलक की चतुर्मुखी ब्रह्माणी दो हसो पर आधारित कमलासन पर पालथी मारकर बैठी है।[2] उसके हाथो मे क्रम से वर अक्षमाला स्रुवा पुस्तक और घट है। दूसरी देवी माहेश्वरी अपने त्रिशूल और वाहन वृषभ से तथा तीसरी कौमारी शक्ति और वाहन मयूर से स्पष्ट पहचान रखती है। ये दोनो ललितासन मे विराजमान है। स्वतत्र और अकेली मातृकाओ मे ब्राह्मी के तीन (स०स० एच 141 एच 153 और 65 175) वैष्णवी का एक (स०स०-65 170) कौमारी का एक (स०स० 65 177) वाराही के तीन (स०स० एच 32 53 3 एव 65 173) और चामुण्डा के छ (स०स०-जी-283 एच-73 एच-74 एच-75 56.285 और 65 174) फलक भी इसी सग्रहालय मे हैं।

इलाहाबाद सग्रहालय मे भी मध्ययुगीन सप्तमातृकाओ के तीन ब्रह्माणी के दो इन्द्राणी का एक काली के दो कौमारी के तीन माहेश्वरी के पॉच और वैष्णवी के तीन फलक सग्रहीत है। गुर्गी (रीवा म०प्र०) तथा रीवा से प्राप्त एक एक फलक अखण्डित है। गुर्गी से प्राप्त दसवी शती ई० के फलक मे सबसे पहले वीणाधर शिव और सबसे बाद मे गणेश के बीच सातो मातृकाएँ नृत्य मुद्रा मे अकित है। सभी मातृकाओ की गोद मे

1 नी०पु० जोशी *ब्रह्मैनिकल स्कल्पचर्स इन द स्टेट म्यूजियम लखनऊ* वाल्यूम 1 पृ० 55 66

2 पार्वती और दुर्गा की मूर्तियो मे दो सिहो के अकन के आलोक मे ब्रह्माणी के ये दो हस भी द्रष्टव्य हैं।

बालक है और वे अपने अपने आयुधो तथा वाहनो के साथ हे। फलक के पाश्व और ऊपरी किनारा ज्यामितिक पर्णलताओ से ओर ललाटबिम्ब कीत्तिमुख से अलकृत है (स०स० ए०एम० 1091)। रीवा से प्राप्त 11वी शती के फलक पर भी वीणाधर शिव और गणेश के बीच सप्तमातृकाओ का अकन हे। सादे किनारे वाले इस फलक पर सभी को अर्द्धपर्यकासन मुद्रा मे दिखाया गया है (स०स० ए०एम० 624)।

कौशाम्बी (इलाहाबाद) से लगभग 9वी शती का एक खण्डित फलक मिला हे जिसम प्रारभिक कुछ मूर्तियॉ नही हे। केवल छ मातृकाऍ माहश्वरी कौमारी वेष्णवी वाराही इन्द्राणी और चामुण्डा त्रिभग जेसी आकर्षक मुद्राओ मे खडी है। बायी ओर के फलक के साथ माहेश्वरी ओर कौमारी के शीश भी खण्डित हा चुके है। अन्य मातृकाओ के मुख भाग भी खण्डित है। इसमे चामुण्डा चतुर्भुजी और शेष मातृकाऍ द्विभुजी ह (स०स०-ए०एम० 1081)। पद्मप्रभामण्डल से सयुक्त इन सप्तमातृकाओ का अग सौष्ठव प्रतिहार-शिल्प की देन जान पडता है।

एकाकी मातृकाओ के जो स्वतत्र फलक इलाहाबाद-सग्रहालय मे है उनम निम्नलिखित मुख्य हे–

कौमारी (स०स० ए०एम० 783) सारनाथ (वाराणसी उ०प्र०) से प्राप्त लगभग 5वी शती का खण्डित फलक केवल नीचे का भाग शेष जिसमे खडी देवी के दोनो पेर और उनके पीछे खडा मयूर बचा है।

वैष्णवी (स०स० ए०एम० 413) सिरसा (इलाहाबाद) से प्राप्त 12वी शती का अखण्डित फलक दो स्तम्भो के बीच गरुडासीन चतुर्भुजी वैष्णवी मालाधारी विद्याधरो से सयुक्त है।

चामुण्डा (स०स०-ए०एम० 426) बघाडा (इलाहाबाद) से प्राप्त 11वी शती का लगभग खण्डित फलक देवी के हाथ पैर भी खण्डित भयकर खुला मुखभाग ऊपरी बाऍ हाथ म पानपात्र और पैरो के नीचे लेटा पुरुष (शव) देवी की पहचान के लिए साक्षी है।

काली-चामुण्डा (स०स०-ए०एम० 403) गुर्गी (रीवा म०प्र०) से प्राप्त 11वी शती का अखण्डित फलक लेटे पुरुष के आगे निर्मासा चामुण्डा नृत्य करती हुई। द्वादशभुजी देवी के दाहिने हाथो मे कटार त्रिशूल कपाल खडग और पानपात्र और बाऍ हाथो मे खटवाग खेटक तथा एक नरमुण्ड है। देवी ने ऊपरी दोनो हाथो से गजचर्म को अपने ऊपर तान रक्खा है। देवी के वक्ष पर मुण्डमाल पेट पर बिच्छू और बाऍ पैर मे सर्प लिपटा है। देवी के अगल बगल नग्न निर्मासी आकृतियॉ दिखाई दे रही है। जमसोत (इलाहाबाद) से प्राप्त 12वी शती का चामुण्डा का एक अशत खण्डित फलक भी इलाहाबाद सग्रहालय मे है। देवी की सभी छ भुजाऍ खण्डित है। फिर भी देवी का क्षत विक्षत मुख कपाल-सज्जित केशपाश खुले दॉत गले मे सर्प की मालाऍ वक्ष तक पहना गया विचित्र वस्त्र भुजाओ के ऊपर से निकलकर पैरो तक लम्बी मुण्डमाला पेट पर बना बिच्छू और पैरो के पीछे अपने दाऍ हाथ की टेक लगाकर लेटा पुरुष दर्शनीय है (चित्र 74)।

कन्नौज सग्रहालय के दो सप्तमातृका फलक यद्यपि खण्डित और अधूरे है तथापि प्रतिहारकला के सुन्दर उदाहरण कहे जा सकते है। एक फलक का दाहिना भाग टूट गया है। शेष आकृतियो के भी मुखभाग खण्डित है। बायीं ओर से वीणाधर शिव चतुर्मुखी ब्रह्माणी गरुड के साथ वैष्णवी मयूरवाहना कौमारी तथा एक अन्य मातृका है। सभी के ऊपर उडते हुए एक-एक विद्याधर की आकृति भी है। कन्नौज के एक अन्य फलक का बायॉ भाग टूट गया है। शेष भाग पर वैष्णवी वाराही ऐन्द्री और चामुण्डा पदमासन पर खडी और पद्मप्रभामण्डल से विभूषित है। चतुर्भुजी इन देवियो वाला यह प्रतिहारयुगीन मूर्ति फलक 1985 ई० मे अमरीका मे आयोजित भारत महोत्सव मे वहॉ की यात्रा भी कर चुका है।

❑

आठवॉ अध्याय

अन्य देव-मूर्तियो के लक्षण

1 लोकपाल, दिक्पाल और अष्टदिक्पाल

दिशाओ के स्वामी दिक्पाल कहे गए है। मुख्य रूप से चार दिशाएँ पूर्व पश्चिम उत्तर और दक्षिण मानी जाती है। इसलिए मुख्य दिक्पाल भी चार ही माने जाते है– इन्द्र वरुण कुबेर और यम। रामायण (2/16/14) मे इन्द्र यम वरुण कुबेर को तथा महाभारत मे अग्नि यम वरुण और सोम को चार दिशाओ के स्वामी बताया गया है। बौद्ध ग्रथो मे भी चार लोकपालो का उल्लेख मिलता है– पूर्व दिशा मे गधर्वो के राजा धृतराष्ट्र दक्षिण दिशा मे कुष्माण्डो के राजा विरुद्धक पश्चिम दिशा मे नागो के राजा विरूपाक्ष और उत्तर दिशा मे यक्षो के स्वामी वैश्रवण या कुबेर। इन्हे बौद्ध ग्रथो मे चातुर्महाराजिक भी कहा गया है।

अथर्ववेद तथा कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय सहिता मे इनकी सख्या छ बताई गई है– अग्नि इन्द्र वरुण सोम विष्णु (यम) तथा बृहस्पति। मनुस्मृति (5/96) मे अष्टदिक्पालो का उल्लेख मिलता है जहॉ उन्हे अष्टलोकपाल कहा गया है। इनकी स्थिति इस प्रकार मानी जाती है

1	इन्द्र	पूर्व	5	वरुण	पश्चिम
2	अग्नि	दक्षिण पूर्व	6	वायु	उत्तर पश्चिम
3	यम	दक्षिण	7	कुबेर	उत्तर
4	निऋत	दक्षिण पश्चिम	8	ईशान	उत्तर पूर्व

इनमे से अधिकाश देवता वैदिक काल मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे परन्तु धीरे धीरे उनकी स्थिति मे गिरावट आई और वे लोकपाल बनकर रह गए। ऐसे देवो मे इन्द्र अग्नि और वरुण के नाम उल्लेखनीय है। बृहत्सहिता अग्निपुराण मत्स्यपुराण और मानसोल्लास मे इन्हे द्विभुजी किन्तु विष्णुधर्मोत्तरपुराण रूपमण्डन और अपराजितपृच्छा मे इन्हे चतुर्भुजी बनाने का निर्देश मिलता है। परन्तु उनके आयुधो का विवरण सबमे एक सा नही है।

मथुरा मे कुषाणकाल के कुछ फलको पर चार पुरुष आकृतियो की पहचान चार लोकपालो अथवा दिक्पालो से की गई है। ऐसा जान पडता है कि सॉची के विशाल स्तूप के चारो तोरणो के द्वार स्तभो मे नीचे आमने सामने जो द्वारपाल उत्कीर्ण किए गए है यही आगे चलकर लोकपाल अथवा दिक्पाल के रूप मे विकसित हुए थे। परन्तु सॉची शिल्प मे विशिष्ट लक्षणो के अभाव मे उनकी इन लोकपालो से पहचान कठिन है। हॉ दिशाओ के आधार पर उनके नाम निर्धारित किए जा सकते है। किन्तु जब मध्यकालीन मन्दिरो का निर्माण किया गया तब इन दिक्पालो को शिल्प शास्त्रो के आधार पर उनकी दिशाओ के अनुसार मन्दिरो की भित्तियो स्तभो और कोणो मे इनकी विशिष्ट लक्षणो वाली मूर्तियॉ स्थापित की गई ताकि वे मन्दिर की रक्षा कर सके। इन दिक्पालो की पहचान उनके जटाजूट अथवा किरीट से उनके वाहनो से अथवा उनके आयुधो से की जाती है।

इन्द्र या शक्र

वैदिक काल मे इन्द्र को सर्वशक्तिमान देवो का अधिपति और बादलो का स्वामी माना गया था। उनकी पूजा और उनके नाम पर मेले लगा करते थे। बाद मे उनका स्थान गौण हो गया। बौद्ध धर्म मे वे बुद्ध की सेवा मे लगे बताए गए है। लगभग यही स्थिति ब्राह्मण धर्म मे भी हो गई थी। पौराणिक आख्यानो मे उन्हे

विष्णु और शिव के सेवक के रूप मे ही अकित किया गया है। किन्तु अब भी उन्हे देवलोक यानी स्वग का स्वामी तथा बादलो का नियता माना गया है। इन्द्र की सभा मे अन्य देवो के साथ साथ मेनका उवेशी आदि अनेक अप्सराएँ भी रहती थी जो अपने नृत्य गान से इन्द्र का मनोरजन करती थी और उनक आदेश पर तपस्या मे लीन ऋषियो को मोहित करके उनका तप भग भी किया करती थी। इन्द्रपद प्रतिष्ठा का पद था। जब भी कोई ऋषि कठोर तपस्या करता था तो इस डर से कि तपस्या मे सफल होकर वह कही इन्द्रपद की इच्छा न करने लगे इन्द्र प्राय किसी अप्सरा के द्वारा उसकी तपस्या भग करवा देते थे। इन्द्र अब भी देवताओ की सेना के सेनापति थे। उनका मुख्य आयुध वज्र था। जातक कथाओ मे उन्हे इसीलिए बजिरहत्था कहा गया है। हाथी की सवारी करने के कारण अकुश भी उनका आयुध माना गया है। उनमे इन्द्र को तावतिस स्वर्ग का स्वामी बताया गया है। उनका नन्दनवन और वैजयन्त प्रासाद अपनी शोभा और वैभव के लिए प्रसिद्ध थे। इन्द्र का वाहन ऐरावत नामक हाथी था जो सागर मथन से निकला था। इसी को बौद्ध ग्रथो मे एरावण कहा गया है– एरावण नागराजम अर्थात हाथियो का राजा एरावण। पुराणो मे इन्द्र के तीन स्वरूप स्पष्ट है– 1 वज्रधारी इन्द्र 2 गजारूढ इन्द्र और 3 रथारूढ इन्द्र।

भारतीय मूर्तिकला मे सबसे पहले इन्द्र को सॉची शिल्प (प्रथम शती ई०पू० / ई०) मे ब्रह्मा के साथ बुद्ध की सेवा मे या फिर दानवीर वेस्सन्तर की परीक्षा लेते दिखाया गया है। एक दृश्य मे उन्हे अपनी पत्नी शची के साथ ऐरावत पर बैठे भी अकित किया गया है। इन दृश्यो मे उनकी पहचान उनके ऊँचे चौकोर मुकुट से वज्र से या फिर ऐरावत हाथी से सभव है। मथुरा के कुषाण शिल्प मे भी इन्द्र गजारूढ होकर बुद्ध से इन्द्रशाल गुहा मे मिलते हुए दिखाए गए है (म०स०स० एम 3)। उन्हे बुद्धजन्म के दृश्यो मे भी नवजात शिशु को ग्रहण करते हुए दिखाया गया है।

दिक्पाल के रूप मे इन्द्र पूर्व दिशा के स्वामी है। विष्णुधर्मोत्तर और मत्स्यपुराण मे शची के साथ उनकी आलिगन मूर्तियो का विवरण है। इन्द्र की अकेली और शची के साथ उकेरी गई मूर्तियॉ मध्यकाल मे कई स्थानो से पाई गई है। राजघाट (वाराणसी उ०प्र०) से प्राप्त लगभग 10वी 11वी शती के एक वास्तुखण्ड पर इन्द्र दम्पति की अलिगन मुद्रा मे एक स्थानक मूर्ति लखनऊ सग्रहालय मे है (स०स०-एच 26)। इसमे इन्द्र को चतुर्भुजी दिखाया गया है। उनके ऊपरी हाथो मे अकुश एव वज्र है तथा पैरो के पीछे हाथी है। इन्द्र की एकाकी मूर्तियॉ भी इस सग्रहालय मे है। पूर्व और दक्षिण पूर्व दिशा के वास्तुखण्डो पर इन्द्र और अग्नि की मूर्तियॉ अष्टभुजा मदिर मिर्जापुर (उ०प्र०) से मिली है। इनमे इन्द्र अपने वाहन और अग्निदेव के साथ होने से पहचाने जा सके है (स०स० 56 413 56 481)।

सिरोनखुर्द (ललितपुर उ०प्र०) से प्राप्त 10वी 11वी शती ई० की ऐसी ही अग्नि के साथ वाली इन्द्र की मूर्तियॉ झॉसी-सग्रहालय मे भी है (स०स० 81 8 81 169 81 183)।

वरुण

वरुण भी वैदिक काल मे एक महत्त्वपूर्ण देवता थे। इन्द्र और अग्नि के बाद उन्ही का स्थान था। उन्हे जल जलचरो और ऋतुओ का स्वामी माना जाता था। उनका निवास सागर मे था और उन्हे पश्चिम दिशा का अधिपति माना गया था। मकर उनका वाहन और पाश प्रमुख आयुध था। किन्तु विभिन्न पुराणो और शिल्पग्रथो मे वरुण के वाहन और उनके आयुध भिन्न भिन्न बताए गए है–

ग्रथ	वाहन	आयुध
विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3/52/1 3)	सात हसो से जुता रथ एव मकर	पद्म पाश शख रत्न मजूषा
बृहत्सहिता (58/57)	हस	पाश
अपराजितपृच्छा (213/13)	मकर	वरद पाश पदम कमण्डलु
रूपमण्डन (2/35)	नक्र (घडियाल)	वरद् पाश उत्पल कुण्डी

अग्निपुराण (56/23 24)	मकर	पाश या नागपाश
मत्स्यपुराण (261/17 18)	झष (मकर)	पाश एव शख

मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला मे वरुण की स्थानक (खडी) और आसन (बैठी) दोनो प्रकार की मूतियॉ उकेरी गई थी। लखनऊ के राज्य सग्रहालय मे वरुण की एक खडी और दूसरी बैठी मूर्ति है (स०स० एच 66 जी 204)। खडी द्विभुजी मूर्ति मे उनके दाहिने हाथ मे पाश है बायॉ कटि पर अवस्थित है। मुकुट और मेखलाधारी वरुण के दाहिने पैर के निकट उनका वाहन मकर दिखाई देता है। बैठी मूर्ति बॉदा के रामनगर स्थान से मिली है। मूर्ति अत्यन्त सुन्दर थी किन्तु अब वह शीशविहीन और लगभग पूर्णतया खण्डित है। ललितासन मे बैठे विद्याधरो प्रभामण्डल और आभूषणो से सयुक्त देवता की पहचान मात्र उनके नीचे का घडियाल है।

वायु के साथ वरुण को अकित करने वाले 8वी और 11वी शती के दो वास्तुखण्ड ललितपुर के सिरोनखुर्द स्थान से मिले है जो सम्प्रति झॉसी-सग्रहालय मे है (स०स० 81 192 81 193)। त्रिभग मुद्रा मे मकर वाहन के साथ ऑकी गई एक मूर्ति मे वे द्विभुजी (पाश कटि पर स्थित) है और दूसरी मे चतुर्भुजी है (दाहिने दोनो खण्डित ऊपरी दोनो मे पाश नीचे घट)।

वरुण की मूर्तियॉ देश भर मे मिली है। आशापुरी वराहखेडी (रायसेन) तथा अन्तरा (शहडोल तीनो म०प्र०) से प्राप्त वरुण की मूर्तियॉ बिडला-सग्रहालय भोपाल में हैं (स०स० बी०एम० 153 123 एव 249 चित्र 76)।

कुबेर या वैश्रवण

कुबेर यक्षो के अधिपति और उत्तर दिशा के लोकपाल कहे गए है। महाभारत के अनुसार कुबेर पुष्पक विमान से चलते है। अन्यत्र उन्हे नरवाहन भी कहा गया है। कुबेर धन के देवता हैं उन्हे धनपति कहा जाता है। उन्हे अष्टनिधियो का स्वामी माना गया है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3/53/3 4) मे उन्हे लम्बोदर अर्थात तुन्दिल या बडे पेट वाला चतुर्भुजी कवच तथा हार से सुशोभित बताया गया है। कुबेर की पत्नी ऋद्धि है और लक्ष्मी को भी कुबेरप्रिया कहा गया है। इनसे कुबेर का धनपति स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। कुबेर या वैश्रवण को रावण का सौतेला भाई और अलकापुरी को उनकी राजधानी बताया गया है।

भारतीय मूर्तिकला मे कुबेर का अकन शुगकाल से ही पाया जाता है। भरहुत के बौद्ध शिल्प मे कुपिरो यखो' (कुबेर यक्ष) का लेखयुक्त अकन मिला है। कुषाणकाल से कुबेर का धनपति रूप स्पष्ट होने लगा था। उन्हे बडे पेट वाला कभी कभी मूँछो से युक्त हाथ मे थैली (धन से भरी) या चषक (प्याला) या घट लिए दिखाया गया है। मथुरा मे अपनी प्रिया सहचरी के साथ भी उनकी मूतियॉ मिली हैं।

कुषाणकाल मे कुबेर को लक्ष्मी तथा अन्य मातृकाओ के साथ भी उकेरा जाता था। मथुरा (स०स० 61 5371 सी 10 33 2329 12 243) तथा लखनऊ (स०स०-ओ 241) सग्रहालयो मे उनकी कुछ मूर्तियॉ हैं। गुप्तकाल मे कुबेर की मूर्तियॉ कम मिली है। परन्तु प्रतिहारकाल से पुन कुबेर को लक्ष्मी और गणेश के साथ अथवा गणेश और ऋद्धि के साथ उकेरा जाने लगा था।पभोसा (इलाहाबाद) से प्राप्त और लखनऊ के राज्य सग्रहालय मे प्रदर्शित (स०स० जी 56) ललितासन मे बैठी द्विभुजी कुबेर की प्रतिहारकालीन प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर और पूर्णत अखण्डित है। विद्याधरो और पद्मप्रभामण्डल से विभूषित कुबेर के दाहिने हाथ मे प्याला और बाएँ मे नकुलक (नकुल के आकार की धन से भरी थैली) है। ललितासन मे बैठे कुबेर के पैरो के नीचे धन के प्रतीक दो कलश रक्खे है। उनके दाये मदिरापात्र लिए तथा बाएँ थैली लिए एक एक नारी और पुरुष की आकृतियॉ है। आभूषणो से सुशोभित बडे पेट तथा ठिगने कद वाले कुबेर वास्तव मे धनदेवता जान पडते है (चित्र 77)।

लोकपाल कुबेर की मूर्ति से युक्त एक वास्तु खण्ड झॉसी सग्रहालय मे है जिसमे एक चौकोर फलक के भीतर चषकधारी द्विभुजी कुबेर को अपने नरवाहन के साथ दिखाया गया है (स०स० 81 142)।

बारा जमसोत तथा भीटा (इलाहाबाद) से प्राप्त 11वी 12वी शती की कुबेर मूर्तियाँ इलाहाबाद सग्रहालय मे भी है (स०स० ए०एम० 724 1063 और 279)। इनमे केवल भीटा वाली मूर्ति ही सुरक्षित हें जिसम अर्द्धपर्यकासन मे बैठे कुबेर के हाथो मे चषक और नकुलक हे। उनके कधा के अगल बगल दायी आर मधुकलश लिए एक पुरुष तथा बायी ओर चामर लिए एक स्त्री अकित हे।

यम

वेदो मे यम एक महत्त्वपूर्ण देवता थे। पौराणिक युग मे वे दक्षिण दिशा के लोकपाल और मृत्यु के देवता बताए गए है। महाभारत के शल्यपर्व (32/40 45) मे उन्हे गदाधारी विशाल शरीर वाले तथा सीगो से युक्त पर्वत के समान बताया गया है– गदाहस्त तु त दृष्टवा सश्रृगमिव पर्वतम । बृहत्सहिता (58/9/57) मे यम का वाहन महिष और प्रमुख आयुध दण्ड बताया गया है– दण्डी यमो महिषगो । विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3 51 1 4) मे भी उनका वाहन महिष (महिषस्थश्च कर्तव्य) तथा उनके आयुध दण्ड खडग और चर्म है– दण्ड खडगावुभौ कार्यो यम दक्षिणहस्तयो तथा धूमोर्णा पृष्ठवामाग चर्मयुक्त तथापरम ।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3 51 5 6) मे यम के दाहिने पार्श्व मे लेखनी तथा बही (पुस्तक) लिए चित्रगुप्त को बनाने का निर्देश है जबकि रूपमण्डन मे स्वय यम के हाथो मे लेखनी पुस्तक कुक्कुट तथा दण्ड बनाने की बात कही गई है– लेखनी पुस्तक धत्ते कुक्कट दण्डमेव च (2/33)।

जौनपुर से प्राप्त इलाहाबाद सग्रहालय मे 11वी शती की यम की एक मूर्ति है जिसमे उनके चारो हाथ तथा बायाँ पैर खण्डित है। वक्ष पर सर्प शिरोभूषा मे तीन कपाल और पैरो के पीछे महिष के आधार पर इस मूर्ति की पहचान यम से की गई है (स०स० ए०एम० 637)।

सिरोनखुर्द (ललितपुर उ०प्र०) से प्राप्त 11वी शती के दो ऐसे वास्तुखण्ड है जिनमे निऋत के साथ यम का अकन है (स०स०-81 147 81 101)। दोनो मे उन्हे चतुर्भुजी बनाया गया था। एक मूर्ति मे उनके बाएँ हाथ मे कपालपात्र है शेष खण्डित है उनके वक्ष पर मुण्डमाल और पैरो के पास बैठा महिष है। दूसरी मूर्ति मे उनके दाये हाथो मे खटवाग और पद्म है सामान्य बायाँ कटि पर है और चौथा टूट चुका है नीचे महिष दिखाई दे रहा है।

अग्नि

यज्ञ मे महत्त्वपूर्ण अग्निदेव वेदत्रयी (इन्द्र वरुण अग्नि) मे सम्मिलित थे वे देवताओ के पुरोहित थे। उन्हे गृहदेवता भी कहा गया है। महाभारत मे वे चमकती दाढी-मूँछ वाले तथा जटाधारी बताए गए है। अग्निपुराण 56/19) मे बकरे पर बैठे हुए और शक्ति धारण किए हुए अग्नि का आवाहन किया गया है- आगच्छग्ने शक्तियुक्त छागस्य बलसयुतम । विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3 56 1) मे उनकी लाल जटाएँ ज्वालाओ से घिरे तीन नेत्र तथा दाढी मूँछ का वर्णन है-

रक्तजटाधरे वह्नि कुर्याद्वै धूमवाससम।
ज्वालामालाकुल सौम्य त्रिनेत्र श्मश्रुधारिणम

उनके हाथो मे ज्वाला त्रिशूल अक्षमाला और शक्ति को दिखाया जाना चाहिए। रूपमण्डन (2 32) मे उन्हे मेष पर आरूढ और हाथो मे वर शक्ति कमण्डलु लिए ज्वालापुज से घिरा बताया गया है (मेषारूढो हुताशन)। शिल्परत्न (13/9 10) मे अग्नि को मेष की पीठ पर बैठा दाहिने हाथ मे अक्षमाला और बाएँ मे कमण्डलु लिए द्विभुजी यज्ञोपवीतधारी और लम्बी दाढी वाला तथा पार्श्व मे पत्नी स्वाहादेवी के साथ बनाने का निर्देश है।

राज्य सग्रहालय लखनऊ मे अग्नि की पाँच मूर्तियाँ हैं। इनमे दो इन्द्र के साथ एक का केवल शीश एक स्थानक और एक आसन मूर्ति है (स०स० 56 413 56 481 एच-62 एच 91 और ओ 266)। इन्द्र के साथ वाली दोनो मूर्तियाँ मिरजापुर के अष्टभुजा मन्दिर के वास्तुखण्डो पर उत्कीर्ण हैं। इन पर अग्नि अपनी

दाढी मूँछ यज्ञोपवीत तथा अपने वाहन शीशविहीन बकरे से पहचाने जा सकते है। रुद्रपुर (गोरखपुर) से प्राप्त मूर्ति के वक्ष पर यज्ञोपवीत बाएँ हाथ मे कमण्डलु नीचे बैठा हुआ बकरा और फलक पर ज्वालाओ से अग्नि की पहचान स्पष्ट है (स०स० एच 91)।

इन्द्र और अग्नि को एक साथ अकित करने वाले कुछ वास्तुखण्ड झाँसी सग्रहालय मे है (स०स० 81 8 81 169 81 183) जिन पर लम्बी दाढी ज्वालाओ और वाहन छाग (बकरा) के आधार पर अग्नि को पहचाना जा सकता है।

कडा (इलाहाबाद) चित्रकूट (बाँदा) तथा मानिकपुर (प्रतापगढ) से प्राप्त अग्नि की तीन मूर्तियाँ इलाहाबाद-सग्रहालय मे है (स०स० ए०एम० 680 ए०एम० 790 और ए०एम० 416)। इन मर्तियो मे उन्हे चतुर्भुज दाढी प्रभामण्डल ज्वालाओ और वाहन छाग से युक्त बनाया गया है। सभी मूर्तियाँ 11वी शती की है। उनके हाथो मे स्रुक स्रुवा अक्षमाला कलश और वरद मुद्रा का प्रदर्शन है।

निऋत

निऋत भी एक वैदिक देवता है जो दक्षिण पश्चिम दिशा के स्वामी है। इन्हे पाप और दोष का देवता माना गया है। इनका पौराणिक स्वरूप भिन्न है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3/57/1 3) मे इन्हे विरूपाक्ष और इनकी पत्नी को निऋति कहा गया है। इसके अनुसार इन्हे ज्वाला निकलते फैले मुख वाला उठे केश वाला दाढी मूँछ युक्त और भयकर मुख वाला बनाया जाना चाहिए। ऊँट इनका वाहन और दण्ड तथा ऊँट की लगाम उनके आयुध है। अग्निपुराण (51/14) मे निऋत का आयुध खडग और रूपमण्डन (2/34) मे खडग और खेटक (खडग च खेटक हस्तै) बताए गए है। मत्स्यपुराण मे उष्ट्र के स्थान पर उनका वाहन नर बताया गया है (261/15 16)।

स्वतत्र निऋत की मूर्तियाँ भी सख्या मे कम मिली है। झाँसी सग्रहालय मे यम के साथ निऋत को अकित करने वाले दो फलक हैं जो सिरोनखुर्द (ललितपुर) से प्राप्त हुए है। 11वी शती की ये दोनो मूर्तियाँ चतुर्भुज हैं और लगभग खण्डित है। एक मे खडग लिए सामान्य दाहिने हाथ को छोडकर शेष तीन हाथ तथा दाहिना पैर टूट चुका है। देवता के गले और हाथ मे नाग के आभूषण है। केशवेश विचित्र है। छोटी दाढी भी है। पैर के नीचे एक पुरुष शव पडा है (स०स० 81 147)। दूसरी मूर्ति मे सामान्य दाहिने मे खडग ऊपरी खण्डित सामान्य बाएँ मे नरमुण्ड और ऊपरी मे खेटक है। इस मूर्ति का भी केश विन्यास पहले जैसा है। इन मूर्तियो का निऋत मानने के दो आधार है– एक तो यम की निकटता और दूसरे मत्स्यपुराण मे अकित उनका वाहन नर का होना।

इलाहाबाद सग्रहालय मे उसी जनपद के चिल्ला (भीटा के निकट) नामक स्थान से प्राप्त लगभग 11वी शती का एक मूर्ति फलक (स०स० ए०एम० 429) है जिसे प्रमोदचन्द्र ने निऋति माना है।[1] इस खण्डित मूर्ति के दाहिने हाथ मे खडग है शेष खण्डित है।

गोपीनाथ राव ने अहोबिलम से प्राप्त एक प्रतिमा प्रकाशित की थी जिसे दाहिने हाथ मे दण्ड लिए हुए एक नर के कधे पर बैठा दिखाया गया है।[2] राजशाही सग्रहालय (उत्तरी बगाल) की एक ऐसी ही मूर्ति का उल्लेख जे०एन० बनर्जी ने भी किया है। इस मूर्ति के हाथो मे खडग और खेटक है।[3]

वायु

दक्षिण पश्चिम वाली वायव्य दिशा के दिकपाल वायु है। वे भी एक वैदिक देवता है। रामायण (6 74 61 62) मे उन्हे सभी की आत्मा और जीवन माना गया है। ठीक ही है। वायु के बिना कोई भी प्राणी

1 प्रमोदचन्द्र *स्टोन स्कल्पचर इन द इलाहाबाद म्युजियम* बम्बई 1970 पृ० 110
2 टी०ए० गोपीनाथ राव *एलीमेण्टस ऑव हिन्दू आइक्नोग्रैफी* वाल्यूम 2 पृ० 529 फलक 154 चित्र 2
3 जे०एन० बैनर्जी *डेवलपमेण्ट ऑव हिन्दू आइक्नोग्रैफी* नई दिल्ली 1985 पृ० 526

जीवित नही रह सकता है। महाभारत (आदिपव 223/78) मे उन्हे अग्नि का मित्र बताया गया हे। उन्हे मघ की वर्षा करवाने वाला एक शक्तिशाली देवता के रूप मे पूजा गया ह। महाभारत (आदिपव 123/12) म उनका वाहन मृग बताया गया है– वायुर्मृगारूढो महाबल ।रूपमण्डन (2/36) मे भी वर ध्वज पताका तथा कमण्डलु लिए चतुर्भुजी दिकपाल वायु को मृग पर आरूढ अकित किया गया हे। अपराजितपृच्छा (213/14) मे भी इसी प्रकार का वर्णन है। किन्तु विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3/58/1 2) मे उन्हे अपन दोनो हाथो मे वस्त्र पकडे द्विभुजी बताया गया है। अशुमद्भेदागम मे भी ध्वजा और दण्ड लिए उन्हे द्विभुजी दिखाया गया है।

वायु की मूर्तियॉ भी मध्यकाल मे ही उकेरी गई थी सभवत पहले नही। वायु की दो सुन्दर मूर्तियॉ ललितपुर जनपद के सिरोनखुर्द नामक स्थान से मिली है और झॉसी सग्रहालय मे प्रदर्शित है। एक मूर्ति 8वी शती की है। दो अलकृत स्तभो तथा तिहरे सिरदल के बीच त्रिभग मुद्रा मे खडे द्विभुज वायुदेव ने अपने दाहिने हाथ मे वस्त्र को पतली रस्सी (कोडा) के रूप मे इस प्रकार पकड रखा हे कि उससे उनके शीश के ऊपर गोल वितान बन गया है। उनका बायॉ हाथ कटि के नीचे जघा पर अवस्थित है। शान्त और स्मित मुद्रा मे खडे देव के पैरो के पीछे उनका वाहन मृग भी खडा उत्कीर्ण है (स०स० 81 192)। 11वी शती की दूसरी मूर्ति चतुर्भुज है। त्रिभग मुद्रा मे खडे देवता के दाहिने हाथो मे अभय मुद्रा एव कोई आयुध (खण्डित) है तथा बाएँ हाथो मे घट और पद्म है। वायुदेव के दाहिने पैर के पास उनका मृग बैठा है (स०स० 81 193)।

खजुराहो के मदिरो मे वरुण के साथ वायु की मूर्तियॉ ऑकी गई थी। खजुराहो सग्रहालय मे दो मूर्तियॉ है दोनो चतुर्भुजी है। एक के हाथो मे वरद ध्वज कमल और पुस्तक तथा दूसरी के हाथो मे वरद ध्वज पताका और कमण्डलु है।

ईशान

ईशान उत्तर पूर्व दिशा के दिक्पाल है। ईशान वस्तुत शिव के ही एक रूप है। विष्णुधर्मोत्तर पुराणकार शिव के अर्धनारीश्वर रूप को ही ईशान बताता है (3/55/1 6) किन्तु अन्य शिल्पग्रथो यथा मत्स्यपुराण (261/23 24) मे ईशान को त्रिनेत्र त्रिशूलधारी तथा वृषभ पर बैठे दिखाने का निर्देश है। अग्निपुराण (51/15 16) मे उन्हे वृषभारूढ और जटाधारी बताया गया है। रूपमण्डन (2/38) और अपराजितपृच्छा (13/16) मे ईशान को चतुर्भुजी (वरद त्रिशूल नागेन्द्र या सर्प तथा बीजपूरक) तथा वृषभारूढ कहा गया है–

वर तथा त्रिशूल च नागेन्द्रबीजपूरकम।
विभ्राणे वृषभारूढो ईशाने धवलद्युति ।। रूपमण्डन 2/38

सिरोनखुर्द (ललितपुर उ०प्र०) मे 8वी और 11वी शती के लगभग सभी दिक्पालो की मूर्तियॉ मिली है जो सम्प्रति झॉसी सग्रहालय मे है। ईशान की भी 8वी शती की एक मूर्ति कुबेर के साथ वाले वास्तुखण्ड पर मिली है (स०स० 81 142)। दो स्तभो के बीच बने आले मे द्विभुजी देव खडे हैं। उनके दाहिने हाथ मे त्रिशूल है और बायॉ कटिविन्यस्त है। उनका वाहन वृषभ उनके पैरो के पीछे से झॉक रहा है।

इलाहाबाद सग्रहालय मे ईशान की तीन मूर्तियॉ है। बारा (इलाहाबाद) मानिकपुर (प्रतापगढ) तथा एक अज्ञात स्थान से 11वी-12वी शती की इन दिक्पाल मूर्तियो मे पहली एक भारपुत्रक के ऊपर आसीन है (स०स० ए०एम० 444) दूसरी अभय और त्रिशूलधारी द्विभुजी है और चन्द्रमौलि है (स०स० ए०एम० 552) तथा तीसरी चतुर्भुजी है जिसके तीन हाथ खण्डित है और एक मे त्रिशूल है। वाहन वृषभ पैरो के पास बैठा है (स०स० ए०एम 755)।

2 अन्य गौण देव-योनियॉ

भारत मे कुछ ऐसे देवी देवताओ की भी महत्ता सभी धर्मो और सम्प्रदायो मे रही है जिनकी शक्ति मनुष्य से अधिक होते हुए भी उन्हे देवताओ के समकक्ष नही रक्खा गया। इनका स्थान मनुष्य से ऊँचा किन्तु देवताओ से निम्न माना गया। विष्णुपुराण मे इन्हे देवयोनियॉ कहा गया है अन्यत्र इन्हे व्यन्तर देवता भी माना

गया है। विद्वान उन्हे डेमी गाडस अर्थात अर्द्धदेवता भी कहते है। विष्णुपुराण मे आठ प्रकार की देवयोनियॉ बताई गई है– सिद्ध गुह्यक गन्धर्व यक्ष राक्षस सर्प या नाग विद्याधर और पिशाच। दिक्पालो की चर्चा के अन्तर्गत पहले बताया जा चुका है कि गन्धर्व यक्ष नाग और कुष्माण्ड जाति के राजा ही धृतराष्ट्र कुबेर विरूपाक्ष और विरुद्धक थे और जो क्रमश पूर्व उत्तर पश्चिम और दक्षिण दिशा के लोकपाल थे। किन्नरो और अप्सराओ की गणना भी इसी कोटि मे आती है। इनमे निम्न उल्लेखनीय है–

यक्ष

यक्षो की परम्परा बडी पुरानी है। इनका उल्लेख वैदिक साहित्य मे भी मिलता है। अथर्ववेद (8/8/11) मे इन्हे इतरजना और उसकी पिप्पलादि टीका (8/8/15) मे पुण्यजना बताया गया है। रामायण (3/11/94) मे यक्षत्व और अमरत्व को समान कहा गया है। जैन साहित्य मे यक्ष तीर्थकरो के शासनदेवता माने गए है। बौद्ध धर्म मे यक्ष बुद्ध की सेवा मे लगे दिखाए गए है। यक्षो के राजा कुबेर अष्टदिक्पालो मे एक थे।

यक्ष बलशाली स्वरूपवान और पूज्य देवो की कोटि मे थे। यक्षियॉ भी अपने मोहक रूप के लिए प्रसिद्ध थी। विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3/42/16) मे उन्हे सभी अलकारो से विभूषित और रूपवान कहा गया है। किन्तु हेमाद्रि के ग्रथ चतुवर्ग चिन्तामणि (वाल्यूम 2 भाग 1 पृ० 138) मे यक्षो को बडे पेट वाला द्विभुज मदिरापान से उन्मत और भयानक बताया गया है।

भारत मे मौर्य शुगकाल की बनाई गई यक्ष-यक्षियो की दो दर्जन से अधिक आदमकद मूर्तियॉ विभिन्न स्थानो से पाई गईं है। इनमे कुछ पर अभिलेख भी हैं। अब तक पाई गई यक्ष मूर्तियो मे निम्नलिखित उल्लेखनीय है–

1 परखम (मथुरा) से प्राप्त मणिभद्र यक्ष (चित्र 78)।
2 बारोद (मथुरा) से प्राप्त यक्ष।
3 झीग का नगरा (मथुरा) से प्राप्त मनसादेवी यक्षी।
4 मथुरा से प्राप्त यक्ष।
5 पटना से प्राप्त यक्ष (पटना-सग्रहालय)।
6 पवाया (ग्वालियर) से प्राप्त मणिभद्र यक्ष (गूजरीमहल सग्रहालय ग्वालियर)।
7 दीदारगज (बिहार) से प्राप्त यक्षी (पटना-सग्रहालय)।
8 विदिशा से प्राप्त यक्ष (विदिशा-सग्रहालय)।
9 विदिशा से प्राप्त यक्षी (विदिशा सग्रहालय)।
10 बेसनगर (विदिशा) से प्राप्त यक्षी (भारतीय सग्रहालय कलकत्ता)।

विभिन्न ग्रथो से पता चलता है कि प्रत्येक नगर का रक्षक एक यक्ष अथवा यक्षी होती थी। उनके मदिरो उनकी पूजा तथा उनसे प्राप्त वरदानो का विवरण भी मिलता है।

शुगकालीन भरहुत तथा सॉची के स्तूपो के तोरणद्वार स्तभो पर द्वारपाल अथवा लोकपाल अथवा चातुर्महाराजिक के रूप मे कई यक्षो की आदमकद मूर्तियॉ मिली हैं। सॉची के विशाल स्तूप के चारो तोरणो के दो दो स्तभो के प्रवेश वाले भीतरी भाग पर एक एक यक्ष की मूर्ति है। भरहुत स्तूप के तोरणद्वारो पर तत्कालीन ब्राह्मी अक्षरो वाले लेखो मे दिए गए इन यक्षो के नामो से उनकी पहचान की गई है। भरहुत मे कुपिरो यखो (कुबेर यक्ष) अजकालको यखो (अजकालक यक्ष) सुपवस यखो (सुपवस यक्ष) विरूढको (विरुद्धक यक्ष) सुचिलोम यखो (सुचिलोम यक्ष) के साथ साथ सुदसना यखी (सुदर्शना यक्षी) चूलकोका यखी महाकोका यखी चन्दा यखी तथा सिरिमा देवता (श्री मॉ देवी) की अभिलिखित मूर्तियॉ मिली है। यक्ष यक्षियो की ये सभी मूर्तियॉ स्थानक मुद्रा (खडी) में हैं और तत्कालीन नर नारियों की सुन्दर और आकर्षक वेशभूषा में हैं।

विद्वान ऐसा मानते है कि इन्ही यक्ष यक्षियो से प्रेरणा पाकर आगे चलकर कुषाणकाल मे मूर्तिकारो ने

पहले जैन तीर्थकरो और बोधिसत्त्वो की आदमकद मूर्तियॉ बनाइ और फिर गुप्तकाल तक आते आते उनका आकार छोटा हुआ तथा उनके अगो मे बलिष्ठता के स्थान पर कोमलता दिखाई पडने लगी।

सर्प और नाग

नागो का उल्लेख भी यक्षो गन्धर्वो और अप्सराओ के साथ अथर्ववेद मे 'पुण्यजना की कोटि मे पाया गया है। उनकी पूजा अत्यन्त प्राचीनकाल से होती आई है और आज भी नागपचमी के अवसर पर समूचे देश मे उनकी पूजा की जाती है। नाग भी कामरूपी थे अर्थात अपनी इच्छानुसार वे अपना रूप बदल लेते थे। उन्हे रसातल अथवा पाताल का निवासी माना गया है। जल के भीतर निवास के कारण उन्हे वरुण लोक का निवासी भी कहा गया है।

वेदो मे वृत्रासुर एक विशाल सर्प (अहि) था जो देवो का शत्रु था। अथर्ववेद मे तक्षक धृतराष्ट्र और ईरावन्त नामक नागो का उल्लेख मिलता है। महाभारत मे शेषनाग वासुकि कर्कोटक धृतराष्ट्र तक्षक आदि नागो का वर्णन है। विष्णुपुराण (2/10/5 17) मे ऐरावत तक्षक कम्बल शखपाल वासुकि अनन्त कालिय आदि के विवरण है। वासुकि नागो के राजा थे। कृष्ण द्वारा कालियमर्दन का आख्यान भी प्रसिद्ध है। जैन धर्म मे नागो को पार्श्वदेव माना गया है और बौद्ध धर्म मे वे बुद्ध की सेवा मे समर्पित बताए गए है।

विष्णुधर्मोत्तर (3/42) मे नागो के दो स्वरूप बताए गए है– एक मानव रूप और दूसरा स्वाभाविक नाग या सर्प रूप। भारतीय मूर्तिकला मे ये दोनो रूप पाए जाते हैं। सैन्धवघाटी सभ्यता की मोहरो पर तथा भरहुत शिल्प मे (एलापात्र-एरापात्र) प्राकृतिक नागरूप मे उनका अकन है। परन्तु भरहुत सॉची अमरावती मथुरा आदि के तत्कालीन शिल्प मे उन्हे मानव रूप मे भी उकेरा गया था। मानव रूप मे नाग का अकन करते समय कलाकार ने मूर्ति के शीश के पीछे से सर्पफण बना दिया है। सॉची शिल्प मे प्राय नागिनियो के एक फण तथा नागराज के तीन अथवा पॉच फण बनाए गए हैं। सॉची के एक फलक मे तपस्यारत बुद्ध की रक्षा के लिए मुचलिन्द नामक नाग उनके ऊपर अपना फण ताने है। सॉची शिल्प के एक अन्य फलक मे उरुविला के उस मन्दिर का अकन है जिसमे बुद्ध के द्वारा रात बिताने और उसमे रहने वाले भयकर नाग को वश मे करने का अकन है। सॉची की पहाडी पर स्वतत्र नाग एव नागी की मानवाकार मूतियॉ भी मिली हैं। नागो की मूर्तियॉ मदिरो मे स्थापित की जाती थी। आज भी प्रयाग मे नागवासुकि का प्रसिद्ध मदिर है। बलराम शेषनाग के अवतार थे। इसलिए मथुरा से मिली उनकी मूतियो मे सर्पफणो का अकन पाया जाता है। अजन्ता की एक गुफा मे इसी रूप मे बैठे नाग-दम्पति की एक गुप्तकालीन मूर्ति है (चित्र 79)। पाताल से पृथिवी का उद्धार करने वाले महावराह का जो गुप्तकालीन मूर्ति-फलक उदयगिरि (विदिशा म०प्र०) की एक गुफा मे मिला है उसमे नागराज का ऊपरी भाग सर्पफणयुक्त मानव का तथा निचला भाग सर्पकुण्डलियो के रूप मे दिखाया गया है (चित्र 9)। अर्द्धमानव तथा अर्द्धनाग का यह मिश्रित स्वरूप भी भारतीय मूर्तिकला मे उकेरा गया था।

सक्षेप मे नाग और नागी की प्रमुख पहचान उनके शीश के ऊपर सर्पफण का होना है। यदि उनका अधोभाग वास्तविक नाग जैसा हो तब तो उनकी पहचान और भी सहज हो जाती है (चित्र 80)।

गन्धर्व

नृत्य गीत मे निपुण गन्धर्व अपनी इच्छानुसार रूप धारण कर लेते थे। इन्हे मृदग वीणा ढोल आदि सभी वाद्य बजाना आता था। गान तथा वाद्य विद्या के साथ साथ नृत्य करने मे उनकी स्त्रियॉ निपुण थी। महाभारत विष्णुपुराण विष्णुधर्मोत्तरपुराण श्रीमद्भागवतपुराण मानसार आदि ग्रथो मे उनके इन गुणो का वर्णन मिलता है।

गन्धर्वो की मूर्तियॉ देवगढ (ललितपुर उ०प्र०) तथा खजुराहो (छतरपुर म०प्र०) मे मिली है जिनमे सुन्दर वेशभूषा वाले सभ्रान्त मनुष्य का अकन है। खजुराहो के विश्वनाथ मन्दिर मे एक गन्धर्व-मिथुन का भी अकन

उपलब्ध है। अजता की चित्रकला मे भी किरीटधारी और आकाशचारी गधर्वो को देखा जा सकता है (चित्र 81)। सॉची शिल्प मे कतिपय नृत्य सगीत के दृश्यो मे गधर्वो की पहचान की जा सकती है।

किन्नर

किन्नर भी सगीतप्रिय थे। वीणा लिए देवो का यशगान करते देवमूर्तियो मे विद्याधरो के साथ उन्हे भी देखा जा सकता है। किन्नरो का ऊपरी भाग मनुष्य का तथा निचला भाग पक्षियो का अकित किया गया है। सॉची शिल्प मे उनका यह रूप द्रष्टव्य है। इसके अतिरिक्त उनके दो और स्वरूप भी सॉची शिल्प मे ऑके गए है। मनुष्य के धड पर अश्व का मुख और अश्व के धड पर मनुष्य का मुख विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3/42/13) मे इन दोनो प्रकार के किन्नरो का वर्णन है– किन्नरा द्विविधा प्रोक्ता नृवक्त्रा हयविग्रहा । मुख के आधर पर इन्हे किन्नर (अश्वमुख) तथा किपुरुष (मानवमुख) भी कहा जा सकता है।[1]

विद्याधर

विद्याधर और उनकी स्त्रियॉ भी अत्यन्त सुन्दर और अनेक अलकारो से विभूषित बताई गई है। उन्हे विभिन्न देवताओ के प्रभामण्डल के अगल बगल अकेले अथवा अपनी सहचारी के साथ दोनो हाथो मे माला लिए हुए आकाश मे उडता दिखाया गया है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3/42/9) मे उनके इसी रूप का वर्णन है 'सपत्नीकाश्च ते कार्या माल्योलकारधारिण । विद्याधरो के राजा चित्रकेतु का उल्लेख श्रीमद्भागवतपुराण (6/13/28) मे पाया जाता है। उनकी स्वतत्र मूर्तियॉ नही मिली है।

अप्सराऍ

अप्सरा' शब्द का अर्थ जलपरी होता है। शतपथ ब्राह्मण (11/5/1/4) मे उन्हे पानी पर तैरती हसिनी बताया गया है। अप्सराऍ देवराज इन्द्र के दरबार मे नृत्य गान करके उनका मनोरजन करती थी। उर्वशी मेनका तिलोत्तमा रम्भा विपुला आदि उल्लेखनीय अप्सराऍ थी। अप्सराओ का मुख्य कार्य देवो का मनोरजन करना अथवा घोर तपस्या करने वाले ऋषि मुनि का इन्द्र की आज्ञा से तपभग करना था। अप्सराऍ अत्यन्त सुन्दर और मोहिनी स्वरूप वाली थी। वे भी अपनी इच्छानुसार अपना रूप बदल लेती थी। अप्सराऍ सुर सुन्दरियॉ थी। उनके पति नही हुआ करते थे। वे अपनी रूपमाधुरी सुरीले सगीत और नयनाभिराम नृत्य से देवताओ का मनोरजन करती थी।

भारतीय मूर्तिकला मे इन अप्सराओ का अकन अत्यन्त मोहक और महत्त्वपूर्ण है। शुगकालीन भरहुत शिल्प मे मिश्रकेशी अलम्बुषा सुभद्रा तथा पद्मावती आदि अप्सराओ को नृत्य करते दिखाया गया है। सॉची शिल्प मे भी इन्द्रसभा मे इन देव-नृत्यागनाओ का अकन मिलता है।

मथुरा के भूतेश्वर मदिर के कुषाणकालीन अवशेषो मे प्राप्त स्तभो पर कन्दुकक्रीडारत खडगनृत्यरत शुकसारिकायुक्त सद्य स्नाता शालभजिका रूपदर्शना आदि विभिन्न आमोद प्रमोद मे लीन नवयौवना इन नारी आकृतियो को अप्सराओ की कोटि मे रक्खा जा सकता है। ऐसी त्रिभगमुद्रा वाली मोहक पुत्तलिकाऍ अन्य स्थानो से भी पाई गई है।

मध्यकालीन मूर्तिकला मे इन अप्सराओ के एक से बढकर एक स्वरूप उकेरे गए थे। खजुराहो तथा कोणार्क मे अनेक मोहक अप्सराओ की मूर्तियॉ है। सुन्दर त्रिभग मुद्रा वाली विभिन्न आभूषणो से अलकृत और विभिन्न भाव भगिमाओ मे इन्हे देखा जा सकता है। वे कभी ॲगडाई लेती हुई कभी अपने पैर मे चुभे कॉटे को निकालती हुई कभी पैर मे नूपुर पहनती हुई कभी नेत्रो मे शलाका से अजन लगाती हुई अथवा प्रेम पत्र लिखती हुई उत्कीर्ण है। अजन्ता की चित्रकला मे भी इन अप्सराओ को अकित किया गया था (चित्र 82)।

1 किन्नर-सम्बन्धी विस्तृत जानकारी के लिए देखे लेखक का निबन्ध 'किन्नर-किन्नरी इन इण्डियन आर्ट ऐण्ड देयर एलाइड प्राब्लम्बस *ग्रीको इण्डिका इण्डियाज कल्चरल काण्टैक्टस विद द ग्रीक वर्ल्ड* (स०) यू०पी० अरोडा नई दिल्ली 1991 पृ० 14 24 चित्र 1 18

नवॉ अध्याय

बौद्ध देव-मूर्तियो के प्रमुख लक्षण

बौद्ध देव-परिवार

बौद्ध देव परिवार का बीजारोपण भले ही कुषाणकाल मे हो गया था परन्तु उसका पूर्णरूपेण विकास मध्यकाल मे ही हो पाया था। तीसरी शती ई० के गुह्यसमाजतत्र और लगभग उसी काल के ग्रथ आर्यमजुश्रीमूलकल्प मे बौद्ध देवी देवताओ के परिवारो की सूचियॉ मिलने लगती हैं जिनमे ध्यानी बुद्ध और बोधिसत्त्वो आदि के परिवार दिए गए हैं। परन्तु पूर्णरूप से बौद्ध देवमण्डल का विकास 12वी शती ई० के ग्रथ साधनमाला मे मिलता है।

बौद्ध देवमण्डल मे सर्वप्रथम आदिबुद्ध और उनकी शक्ति आदिप्रज्ञा (प्रज्ञापारमिता) की कल्पना की गई। उनसे पॉच ध्यानीबुद्धो और उनकी शक्तियो का विकास हुआ। और फिर प्रत्येक ध्यानीबुद्ध के बोधिसत्त्व और फिर उन बोधिसत्त्वो से मानुषीबुद्धो का अवतरण माना जाता है। इस बौद्ध देवकुल को समझने के लिए निम्न तालिका से सहायता ली जा सकती है। इसमे प्रत्येक ध्यानीबुद्ध के वाहन चिह्न उनकी शक्तियॉ और फिर उनके बोधिसत्त्व तथा उन बोधिसत्त्वो के मानुषी बुद्ध दिए गए हैं–

आदिबुद्ध+आदिप्रज्ञा

ध्यानीबुद्ध	वैरोचन	अक्षोभ्य	रत्नसभव	अभिताभ	अमोघसिद्धि
वाहन	सपक्षनाग	हाथी	सिह	मयूर	गरुड
मस्तक पर चिन्ह	चक्र	वज्र	रत्न	कमल	विश्ववज्र
शक्ति	वज्रधात्वीश्वरी	लोचना	मामकी	पाण्डरा	तारा
बोधिसत्त्व	समन्तभद्र	वज्रपाणि	रत्नपाणि	अवलोकितेश्वर	विश्वपाणि
मानुषी बुद्ध	क्रकुच्छन्द	कनकमुनि	कश्यप	गौतम	मैत्रेय

बौद्ध धारणा के अनुसार सृष्टि के प्रत्येक कल्प (युग) मे एक ध्यानीबुद्ध और उनसे सम्बन्धित बोधिसत्त्व मानुषीबुद्ध तथा अन्य परिवार देवता होते आए है। ऐसा माना जाता है कि सृष्टि के तीन कल्प बीत चुके है। यह चौथा कल्प चल रहा है जिसके ध्यानीबुद्ध अभिताभ बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर और मानुषीबुद्ध गौतमबुद्ध हैं। वर्तमान कल्प का होने के नाते मूर्तिकला मे भी सर्वाधिक मूर्तियॉ गौतमबुद्ध की ही बनाई गई हैं और इसीलिए गौतमबुद्ध तथा अवलोकितेश्वर को बौद्ध देव-परिवार मे सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।

गौतम बुद्ध

जैसा पहले कहा जा चुका है कि वर्तमान कल्प का होने के कारण गौतम बुद्ध को बौद्ध धर्म मे सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है और इसीलिए भारतीय मूर्तिकला मे उनकी मूर्तियो की सख्या भी सबसे अधिक है। इसीलिए सबसे पहले चर्चा उन्ही की प्रस्तुत है।

गौतम बुद्ध मूर्तिपूजा और अवतारवाद के विरुद्ध थे। उनके निर्वाण के बाद भी उनकी मूर्ति नही बनाई गई क्योकि निर्वाणप्राप्त बुद्ध को पुन मूर्ति के आकार मे बॉधना बौद्ध विचारधारा के विरुद्ध था परन्तु भक्ति आन्दोलन से भोले-भाले भावुक बौद्ध धर्मावलम्बी अपने इष्ट देव की पूजा के लिए उतावले थे। उनकी पिपासा और बौद्ध विचारधारा दोनो का निर्वाह करते हुए कुछ प्रतीको की रचना की गई जिनके माध्यम से बुद्ध की उपस्थिति दर्शायी जाने लगी। भरहुत सॉची अमरावती आदि स्थानो की प्रारभिक बौद्ध कला मे धर्मचक्र

त्रिरत्न स्तूप बोधिवृक्ष आसन पदचिह्न आदि के रूप मे बुद्ध के इन प्रतीको की पूजा के दृश्य देखे जा सकते हैं। पर विकासवादी महायान विचारधारा से प्रभावित बौद्ध अनुयायी अधिक दिनो तक बुद्ध की साक्षात मूर्ति के बिना नही रह सके। बुद्ध शरण गच्छामि दीक्षा की सार्थकता के लिए उन्होने जैन तीर्थकरो और कृष्ण विष्णु बलराम जैसी बुद्ध की मानव मूर्तियॉ गढ डाली। इन विकासवादी बौद्धो ने अपने को महायानी बौद्ध और मूर्ति विरोधी पूर्व परपरा वालो को हीनयानी बौद्ध कहा। आगे चलकर महायानी विचारधारा मे तत्र मत्र का व्यापक प्रचार प्रसार हो गया। परिणामस्वरूप तत्र साधना पर आधारित वज्रयानी विचारधारा का उद्भव हुआ और इसी के साथ बौद्ध धर्म मे एक विशाल देव परिवार का विकास हो गया।

प्रारम्भिक प्रतीक-पूजा

दार्शनिक विवेचना से नितात अपरिचित भक्तिभावना से भरे हृदयो वाले बौद्ध अनुयायी बुद्ध की साक्षात् पूजा के लिए विचलित थे। इसलिए हीनयान विचारधारा की मर्यादा तोडे बिना कतिपय बुद्ध के प्रतीको का मूर्तांकन प्रस्तुत किया जाने लगा। ये प्रतीक शुग कुषाणकालीन बौद्ध कला मे भरहुत सॉची बोधगया मथुरा अमरावती आदि अनेक स्थानो पर मिले है। इन्हे आसन छत्र फूलमालाओ तथा पताकाओ से सजाया गया था। इनको हाथ जोडते इनका स्पर्श करते तथा इन पर पूजा सामग्री अर्पित करते भक्त नर नारी दिखाई देते है। उनके ऊपर आकाशचारी किन्नरो और मालाधारी विद्याधरो की उपस्थिति उन्हे नि सन्देह देवता तुल्य सपूजनीय सिद्ध करती है। इन प्रतीको मे निम्नलिखित मुख्य थे–

1 **हाथी** हाथी बुद्ध के जन्म का प्रतीक था। गर्भधारण करने से पहले उनकी माता मायादेवी ने स्वप्न मे एक सफेद हाथी को अपनी दाई कोख मे प्रवेश करते देखा था।

2 **बोधिवृक्ष** यह बुद्ध की तपस्या और सम्बोधि (बुद्धत्त्व) का प्रतीक था। अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त होने के कारण उसे बोधिवृक्ष कहा गया। इसे घेरकर बनाए गए भवनो को बोधिघर कहा जाता था।

3 **धर्मचक्र** सम्बोधि के बाद सारनाथ आकर बुद्ध ने अपना पहला उपदेश दिया था जिसे बौद्ध ग्रथो मे प्रथमधर्मचक्रप्रर्वतन कहा जाता है अर्थात धर्मचक्र को पहली बार बुद्ध ने गतिमान बनाया।

4 **स्तूप** स्तूप बुद्ध के निर्वाण या महापरिनिर्वाण का प्रतीक था। बुद्ध के शारीरिक अवशेष मिटटी के जिस ढेर मे सचित करके रक्खे गए थे उसे स्तूप कहा जाता था। इन्हे समाधि के समान समझा जा सकता है। इनका आकार औंधे कटोरे अथवा पानी के बुलबुले के समान होता था। बुद्ध के अवशेष पवित्र थे इसलिए उन पर बनाए गए स्तूप पहले मिटटी से फिर ईटो से और बाद मे पत्थर के सुगढ टुकडो से बनाए गए थे। ये स्तूप तीन प्रकार के थे। 1 शारीरिक जिनमे बुद्ध के शरीर का कोई अवशेष रक्खा जाता था जैसे अस्थि बाल दॉत नाखून आदि 2 पारिभौगिक जिनमे बुद्ध द्वारा उपभोग की गई कोई वस्तु दफनायी जाती थी जैसे कमण्डलु खडाऊॅ चीवर आदि और 3 उद्देशिक ये स्मृति चिह्न थे।

बौद्ध स्तूपो विहारो अथवा तीर्थो मे एक ही पत्थर के टुकडे से तराशे गए छोटे-छोटे आकार के स्तूप बहुत बडी सख्या मे दिखाई देते है। इन्हे भक्तजन स्तूप निर्माण का पुण्य उठाने के लिए बनवाकर वहॉ स्थापित करते थे। यह परम्परा ब्राह्मण धर्मावलम्बी भक्तो मे भी थी जो छोटे छोटे आकार के एकाश्मक मन्दिर बनवाकर किसी विशाल मदिर के परिसर मे पूजार्थ चढाते थे। ये चार प्रतीक बुद्ध के जीवन की चार प्रमुख घटनाओ के प्रतीक माने जाते हैं।

इन प्रमुख बौद्ध प्रतीको के अतिरिक्त अन्य प्रतीक भी लोकप्रिय थे जैसे अश्व बुद्ध के गृहत्याग (महाभिनिष्क्रमण) का वज्रासन उनकी तपस्या अथवा उपस्थिति का गधकुटी उनके निवास का पदचिह्न साक्षात बुद्ध का और त्रिरत्न बुद्ध धर्म और सघ के समुच्चय का। त्रिरत्न एक चक्र के ऊपर त्रिशूल के आकार

मे रक्खे गए दो अर्द्धचक्रो से बनी आकृति थी जिसे नन्दिपद और नन्दयावर्त भी कहा गया हे। इन प्रतीको का भी अकन प्रारम्भिक बौद्धकला मे पाया जाता है।

बुद्ध-मूर्तियॉ

कुषाण नरेश कनिष्क के शासनकाल मे आयोजित चौथी बौद्ध सगीति के बाद बौद्ध सघ खुलकर दो सप्रदायो मे (हीनयान और महायान) बॅट गया। कनिष्क के सरक्षण मे महायान की विकासवादी विचार्धारा ने बौद्ध प्रतीको के स्थान पर बुद्ध की मानव मूर्तियो का अकन प्रारम्भ कर दिया। यह मूर्तांकन मथुरा मे और बाद मे मथुरा तथा गधार क्षेत्रो ने किया गया था। शैली की दृष्टि से माथुरी और गाधारी कला मे बुद्ध की मूर्तियो मे अन्तर था–

मथुरा कला	*गाधार कला*
1 सफेद चित्तीदार लाल बलुआ पत्थर।	1 भूरे रग का सलेटी पत्थर
2 झीने और सलवटोदार वस्त्रो (सघाटि) का केवल बाएँ कधे पर प्रयोग।	2 सलवटोदार भारी भरकम वस्त्रो (सघाटि) का दोनो कधो पर प्रयोग।
3 पहले मुण्डित केश और फिर कुचित केश (घुँघराले) ऊपर जूडा।	3 सभी पर लहरियादार केश और मध्य मे जूडा भी।
4 अगो की सुन्दरता और समानुपात के स्थान पर भाव भगिमाओ का स्पष्ट प्रर्दशन मूर्तियॉ सजीव।	4 अग सौष्ठव समानुपात पर जोर भाव भगिमाओ का अभाव मूर्तियॉ निष्प्राण।
5 बुद्ध की मूँछो का अभाव।	5 बुद्ध की मुँछे भी बनाई गई थी (चित्र 83)।

बौद्धो ने मथुरा मे बुद्ध-मूर्तियॉ बना तो ली परन्तु उन्होने इन्हे बोधिसत्त्व कहा। इसका कारण सभवत पूर्व परम्परा का प्रभाव था। कुषाणकालीन बोधिसत्त्व और बुद्ध की स्थानक तथा आसन मूर्तियॉ मथुरा और सारनाथ मे मिली है (चित्र 84)। स्थानक बोधिसत्त्व की मूर्तियॉ निश्चय ही यक्ष परम्परा पर आधारित थी। आगे चलकर गुप्तकाल मे मथुरा तथा सारनाथ मे बुद्ध की एक से बढकर एक सुन्दर मूर्तियो को उत्कीर्ण किया गया था (चित्र 85)। परन्तु कुषाणकालीन और गुप्तकालीन मथुरा की बुद्ध मूर्तियो मे बडा अन्तर था जैसे–

कुषाणकालीन	*गुप्तकाल*
1 सादा प्रभामण्डल केवल किनारा हस्तिनख से चिह्नित	1 पद्मदलो मालाओ और मनको से अलकृत प्रभामण्डल।
2 मासल वलिष्ठ गात	2 छरहरा हलका गात
3 प्राय मुण्डित केश	3 कुचित केश
4 केवल बाएँ कधे पर सघाटिवस्त्र	4 दोनो कधो पर सघाटिवस्त्र
5 सादी सघाटि अथवा मोटी सलवटे।	5 महीन सलवटो वाली पारदर्शी सघाटि।
6 गोल और पूरे खुले नेत्र	6 पद्मदल जैसे लम्बे और अधखुले नेत्र।
7 मस्तक पर भौहो के बीच गोल तिलक जैसा चिह्न (ऊर्णा) सभी मूर्तियो पर	7 केवल एकाध मूर्तियो पर ही।
8 हथेलियो और पैरो के तलुवो पर धर्मचक्र सरीखे मगल चिह्न	8 मगल चिह्नो के स्थान पर सामान्य रेखाएँ।

आगे चलकर विभिन्न मुद्राओ मे बुद्ध की मूर्तियो को उकेरा गया था। इनमे उनकी धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा भूमिस्पर्श मुद्रा और महापरिनिर्वाण मुद्रा केवल बौद्ध मूर्तियो पर ही मिलती है अन्यत्र नही। बुद्ध मूर्तियो को इन मुद्राओ मे पहली बार सारनाथ के कलाकारो ने उकेरा था। उन्होने ही बुद्ध के प्रभामण्डल मे मालाधारी

विद्याधरो का अकन भी प्रारम्भ किया था। सारनाथ की धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा वाली गुप्तकालीन मूर्ति ससार की सर्वश्रेष्ठ मूर्तियो मे एक मानी जाती है। इनके अतिरिक्त ध्यानमुद्रा वरदमुद्रा और अभय मुद्रा मे भी बुद्धमूर्तियो का निर्माण किया गया था (चित्र 84 86)।

कुछ ऐसे भी फलक पाए गए है जिन पर बुद्ध के जीवन की चार प्रमुख घटनाएँ एक पक्ति मे उत्कीर्ण है। ऐसा एक कुषाण गुप्तकालीन फलक लखनऊ सग्रहालय (स०स० 46 13) मे भी है जो अहिच्छत्रा (रामनगर बरेली उ०प्र०) मे मिला था। ठीक ऐसे ही दृश्यो वाले कुषाणकालीन फलक मथुरा सग्रहालय (स०स० 00 एच 1) और अमरीका की फ्रियर आर्ट गैलरी मे भी है। बाद वाला फलक गाधार शैली का है।

बौद्ध देव-परिवार

आदिबुद्ध और आदिप्रज्ञा

मध्यकाल मे पूर्ण विकसित बौद्ध धर्म मे आदिबुद्ध और उनकी शक्ति आदिप्रज्ञा (या प्रज्ञापारमिता) को सृष्टि के कर्ता और माता पिता माना गया था। यह सकल्पना ब्राह्मण धर्म के पुरुष और प्रकृति तथा शिव एव शक्ति की धारणा से मिलती जुलती है। मनुष्य रूप मे आदिबुद्ध को वज्रधर कहा गया है। मूर्तियो मे वे या तो अकेले है अथवा अपनी शक्ति आदिप्रज्ञा के साथ आलिगन मुद्रा मे। अकेली मूर्तियो मे आदिबुद्ध सामान्यत वज्रपर्यकमुद्रा (ध्यानमुद्रा) मे आसीन और विभिन्न आभूषणो से विभूषित बनाए गए है। उनके दाएँ हाथ मे वज्र और बाएँ मे घटा होता है। आलिगन मूर्तियो मे आदिप्रज्ञा के हाथो मे कटारी और कपाल होता है।

ध्यानीबुद्ध

आदिबुद्ध और आदिप्रज्ञा से पाँच ध्यानीबुद्धो का विकास हुआ। ध्यानीबुद्धो का प्राचीनतम उल्लेख गुह्यसमाजतत्र (लगभग तृतीय शती ई०) मे और उनका प्राचीनतम अकन मथुरा की कुषाणकालीन बोधिसत्त्व की मूर्तियो पर पाया गया है।

ध्यानीबुद्ध सदैव ध्यान मे निमग्न रहते हैं और सासारिक कार्य कलाप मे उनका कोई योगदान नही होता है। ध्यानीबुद्धो का स्वतत्र अकन नही मिलता है। उन्हे सामान्यत अपने बोधिसत्त्व के मुकुट मे उकेरा गया था। गुह्यसमाजतत्र मे ऐसा ही उल्लेख मिलता है। कभी कभी पाँचो ध्यानीबुद्धो को एक पक्ति मे बोधिसत्त्व की पृष्ठशिला पर वज्रासन पर अथवा मुकुट पर अकित किया गया था। ऐसी स्थिति मे उस बोधिसत्त्व से सम्बन्धित ध्यानीबुद्ध बीच मे रहते हैं। मथुरा और गधार को छोडकर प्रारभ मे अन्य किसी स्थान पर ध्यानीबुद्धो का अकन नही किया गया था।

ध्यानीबुद्ध प्राय द्विभुज वज्रासन मे बैठे गोद मे रखे एक हाथ मे प्राय भिक्षापात्र लिए और दूसरे मे कोई अभय आदि मुद्रा लिए बनाए गए हैं। उन्हे बोधिसत्त्वो के अतिरिक्त अन्य देवी देवताओ के मुकुट पर भी बनाया गया था। लखनऊ (स०स० बी 82) और मथुरा सग्रहालयो मे (स० स० 2367 1944) कुषाणकालीन मूर्तियो पर ध्यानीबुद्ध उकेरे मिलते है।

बोधिसत्त्व

ध्यानीबुद्धो के निरन्तर ध्यानमग्न रहने के कारण उनसे विकसित बोधिसत्त्व क्रियाशील रहते है। वे सम्बोधि की प्राप्ति के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते है। ये अलग अलग कल्पो (युगो) मे प्रकट होते है और ससार मे सामान्य स्थिति स्थापित करने के बाद अपने निर्माण के मौलिक तत्त्वो मे विलीन हो जाते है। इन्हे सभी वस्त्रालकारो से विभूषित बनाया गया था जबकि बुद्ध मूर्तियो पर अलकारो का पूर्णतय अभाव रहता है। बोधिसत्त्वो के मुकुटो मे उनके ध्यानीबुद्ध की नन्ही मूर्ति उकेरी गई है।

यो तो पाँच ध्यानीबुद्धो के पाँच बोधिसत्त्व हैं परन्तु इनके अतिरिक्त अन्य बोधिसत्त्वो की परिकल्पना भी की गइ थी। इनमे मैत्रेय और मजुश्री मुख्य है। मैत्रेय का अकन तो कुषाणकाल से ही किया जाने लगा था

किन्तु मजुश्री की मूर्तियॉ मध्यकाल मे ही गढी गई थी।

अपने मुकुट मे सम्बन्धित ध्यानीबुद्ध की छोटी आकृति समेटे बाधिसत्त्वो की अनेक मूर्तियॉ ल्खनऊ सग्रहालय (स०स० बी० 82 मैत्रेय स०स० बी 208 सिद्धार्थ) मथुरा सग्रहालय (स०स० 2367 विश्वपाणि 2573 मैत्रेय 1944 रत्नपाणि एव तृतीय शती ई० की अवलोकितेश्वर) तथा सारनाथ सग्रहालय (स०स० बी० डी० 1 बी०डी० 3 बी०डी० 4 एव बी०डी० 5 सभी अवलोकितेश्वर बी०डी० 2 बी०डी० 52 मैत्रेय बी०डी० 6 मजुश्री तथा एफ 43 घण्टापाणि पॉचो ध्यानीबुद्ध के साथ) मे देखी जा सकती है।

1 *अवलोकितेश्वर*

अवलोकितेश्वर वर्तमान कल्प (युग) के बोधिसत्त्व हैं। साधनमाला (10वी-12वी शती ई०) मे इनके 38 रूपो का उल्लेख मिलता है जिनमे पद्मपाणि स्वरूप सबसे अधिक लोकप्रय हुआ। बौद्ध ग्रथो मे इन्हे भगवान और ससार के मनुष्यो का हितैषी माना गया। पद्मपाणि अवलोकितेश्वर के दाऍ हाथ मे वरद मुद्रा और अक्षमाला तथा बाऍ हाथ मे सनाल पद्म रहता है। इनके दूसरे स्वरूप सिहनाद लोकेश्वर की मूर्ति मे इन्हे शिव के समान जटाजूटधारी महाराजलीलासन मुद्रा मे बैठे दिखाया गया है। इनके बाऍ हाथ के पद्म पर खडग रक्खी है। और दाहिनी ओर सर्प लिपटा त्रिशूल भी दिखाई देता है। ऐसी एक मध्यकालीन सुन्दर मूर्ति महोबा (उ०प्र०) से मिली है और लखनऊ सग्रहालय मे है (स०स० ओ 225 चित्र 87)। अजन्ता की दूसरी चौथी और सत्तरहवी गुफाओ (लगभग 5वी-6ठी शती ई०) मे भी अवलोकितेश्वर की मूर्तियॉ उत्कीर्ण पाई गई है। अजन्ता की पहली गुफा (गुप्तकालीन) मे अपने दाऍ हाथ मे पद्म लिए बायॉ कटि पर रक्खे त्रिभग मुद्रा मे खडे और विश्व करुणा से ओतप्रोत तात्त्विक विचारो मे लीन पद्मपाणि अविलोकितेश्वर का एक भावपूर्ण चित्राकन है।

2 *मजुश्री*

मजुश्री का विकास किसी ध्यानीबुद्ध से न होकर मजुश्रीमूलकल्प नामक पवित्र धर्मग्रन्थ से हुआ था। इसे नानकपथी गुरुग्रथ साहब के समान समझा जा सकता है। बोधिसत्त्व मजुश्री का प्राचीनतम उल्लेख लगभग तीसरी चौथी शती ई० के आर्यमजुश्रीमूलकल्प एव गुह्यसमाजतत्र मे मिलता है परन्तु उनकी मूर्तियॉ पहली बार गुप्तोत्तर काल म ही बनाई गई थी। उनके प्रमुख आयुध खडग और पुस्तक (प्रज्ञापारमिता) क्रमश अज्ञान के विनाश और ज्ञान के प्रसार के प्रतीक है। साधनमाला मे मजुश्री के 14 स्वरूपो का वर्णन मिलता है।

3 *मैत्रेय*

भविष्य मे मानुषीबुद्ध होने वाले मैत्रेय अभी बुद्धत्त्व पाने के लिए प्रयत्नशील है। इसीलिए अभी उन्हे बोधिसत्त्व कहा जाता हे। वे ध्यानीबुद्ध अमोघसिद्धि के परिवार से सबधित एकमात्र ऐसे बोधिसत्त्व है जिनकी पूजा हीनयान और महायान दोनो सम्प्रदायो मे लोकप्रिय रही है। मैत्रेय की मूर्तियो का निर्माण कुषाणकाल मे ही मथुरा तथा गधार कला मे प्रारभ्भ हो गया था। इनके मुकुट पर ध्यानीबुद्ध अमोघसिद्धि की नन्ही मूर्ति अथवा चैत्य बना रहता है। साधनमाला मे मुख्य तथा सहायक देवता के दोनो रूपो मे मैत्रेय का उल्लेख और वैसे ही उनकी मूर्तियॉ भी मिलती है।

मानुषीबुद्ध

मानुषीबुद्ध वस्तुत बोधिसत्त्वो के मनुष्य रूपधारी प्रतिनिधि होते है जो सामान्य मनुष्यो की तरह जन्म लेकर अपना कार्य करते है। अब तक मिली सूचियो से लगभग 32 मानुषीबुद्धो के नाम मिले हैं। इनमे सात मानुषी बुद्ध (तथागत) ही मुख्य है। ये हैं– विपश्यिन शिखी विश्वभू क्रकुच्छन्द कनकमुनि कश्यप और शाक्यसिह (गौतम बुद्ध)। सॉची के विशाल स्तूप (शुग सातवाहनकाल) के कुछ फलको पर बोधिवृक्षो और स्तूपो को एक पक्ति मे बनाकर इन सातो मानुषीबुद्धो का प्रतीकात्मक अकन सर्वाधिक प्राचीन हे। इन अकनो

मे स्तूपो के अण्ड पर तत्कालीन अभिलेख है जिनसे तथा भरहुत स्तूप के उत्कीर्ण शिल्प मे ऐसे ही दृश्यो मे मिले अभिलेखो से मानुषी बुद्धो की पहचान सभव हो सकी है। मैत्रेय भविष्य मे होने वाले मानुषीबुद्ध है। वे इस समय तुषित स्वर्ग मे हैं और सम्बोधि प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है।

मानुषीबुद्ध बोधिसत्त्व और ध्यानीबुद्ध की मूर्तियो की पहचान अत्यन्त सरल है। मानुषीबुद्ध यानी गौतम बुद्ध की मूर्तियॉ विभिन्न मुद्राओ मे खडी बैठी और लेटी (महापरिनिर्वाण मुद्रा) बनाई गई थी। इन पर अलकार या आभूषणो का अभाव था। शीश या तो मुण्डित या जूडे मे बधे केश रहते थे। बोधिसत्त्व की मूर्तियॉ प्राय खडी और अधिकतर अभय मुद्रा मे बनाई गई थी। अवलोकितेश्वर को पद्मपाणि (हाथ मे कमल लिए) के स्वरूप मे भी अकित किया गया था। बोधिसत्त्व सभी प्रकार के वस्त्र और आभूषणो से अलकृत बनाए गए थे। उनके शीश पर राजाओ जैसा मुकुट भी रहता था। ध्यानीबुद्ध केवल ध्यानमुद्रा मे बैठी आकृति वाले थे। इनकी स्वतत्र मूर्तियॉ नही बनाई गई थी। इनकी नन्ही आकृतियॉ प्राय इनके बोधिसत्त्व के मुकुट के बीच अथवा पृष्ठशिला पर बना दी जाती थी।

अन्य बौद्ध देवी-देवता

जम्भल

ये कुबेर के समान बौद्धो के धनपति देवता हैं। कुबेर के समान इनके हाथो मे फल और नकुलक या धन की थैली रहती है। बैठे होने पर इनके पैरो के पास उल्टा घट रहता है जिससे धनराशि निकलती दिखाई देती है। जम्भल की शक्ति वसुधारा है। दो मछली लिए कुषाणकालीन वसुधारा से यह भिन्न है। इसका मुख्य चिह्न अनाज की बाली है। इनकी मध्यकालीन मूर्तियॉ मिली है।

मार

मार कामदेव जैसा देवता है। उसका मुख्य आयुध धनुष बाण है। बोधिसत्त्व सिद्धार्थ के तपस्यालीन होने पर मार अपनी चार सुन्दरी बेटियो और सेना द्वारा विघ्न डालने का प्रयास करता है किन्तु असफल रहता है। मार का अकन सॉची तथा भरहुत के शिल्प मे पाया जाता है। अहिच्छत्रा से प्राप्त और लखनऊ सग्रहालय मे सग्रहीत कुषाण-गुप्तकालीन एक फलक पर (स०स०-46 13) बुद्धजन्म तपस्या प्रथम उपदेश तथा महापरिनिर्वाण के चार दृश्य हैं। इसमे मार को उसकी चारो कन्याओ के साथ उकेरा गया है।

तारा

बौद्ध देवियो मे तारा का सर्वाधिक महत्त्व है। सामान्य स्थिति मे तारा के दाहिने हाथ मे वरद मुद्रा और बाएँ मे पद्म होता है। रग भेद से तारा के पॉच प्रकार है जिनमे हरिततारा और श्वेततारा मुख्य है। मूर्तियो मे रग का अभाव होने से परिवार देवताओ की सहायता से तारा के प्रकार विशेष की पहचान की जाती है। कन्नौज सग्रहालय मे प्रतिहारकाल की तारा की एक मूर्ति उल्लेखनीय है। इसके पृष्ठ भाग मे अर्द्धनारीश्वर का अकन है (चित्र 88)।

प्रज्ञापारमिता

प्रज्ञापारमिता मूलत एक महायानी बौद्धग्रथ का नाम है जिसे आर्य असग ने साधना बनाकर देवी का रूप दिया। भारत मे इसकी पूजा लगभग पॉचवी शती ई० से प्रारम्भ हुई। प्रज्ञापारमिता वज्रपर्यकासन मे बैठी होती है और कमल पर रक्खी पुस्तक इसका मुख्य चिह्न है (चित्र 89)।

बौद्ध देव परिवार मे अनेक ब्राह्मण धर्मावलम्बी देवी देवताओ को भी सम्मिलित कर लिया गया था। इनमे शिव गणेश और सरस्वती मुख्य है। शिव के महाकाल स्वरूप को भी बौद्धो ने अपनाया था। इसके अतिरिक्त अष्टदिक्पाल नवग्रह ब्रह्मा विष्णु कार्त्तिकेय वाराही चामुण्डा यक्ष गधर्व किन्नर आदि भी उनके देव परिवार के अग थे।

❑

दसवॉ अध्याय

जैन देव-मूर्तियो के प्रमुख लक्षण

जिन या तीर्थंकर

जिन के अनुयाइयो को जैन तथा जिनो' के द्वारा प्रतिपादित धर्म को जैन धर्म कहा जाता है। कठोर तपस्या से इन्द्रियो को जीत लेने वाला जिन' कहलाता है। जिन अपनी तपस्या से काम-क्रोध आदि विकारो को जीतकर और कर्ममल का विनाश कर अपनी आत्मा को शुद्ध कर लेते है। वे त्याग और साधना के बल पर वीतरागी हो जाते हैं। ऐसे महापुरुष तीर्थकर केवली (कैवल्य=ज्ञान प्राप्त करने वाला) अर्हत अरिहन्त आदि कहे जाते है। ससार सागर को पार करने के साधन को तीर्थ कहते हैं और इसके प्रयत्नकर्त्ता को तीर्थकर कहा जाता है।

जैन धर्म के अनुसार जिनो अथवा तीर्थकरो की सख्या 24 है। इनमे सबसे पहले होने वाले तीर्थकर ऋषभनाथ थे। प्रथम होने के कारण उन्हे आदिनाथ भी कहा जाता है। अतिम 24वे तीर्थकर वर्द्धमान या महावीर थे। अतिम तीन (22वे तीर्थकर नेमि अथवा अरिष्टनेमि 23वे पार्श्वनाथ और 24वे महावीर) को ऐतिहासिक पुरुष माना जाता है। महावीर आज से 2500 वर्ष पहले हुए थे।

24 जिनो की धारणा जैन धर्म की धुरी है। अन्य जैन देवताओ की कल्पना इन्ही जिनो से सम्बद्ध है। ये जिन अथवा तीर्थकर ईश्वर या उसके अश नही माने गए हैं अपितु इन्हे देवाधिदेव के रूप मे सर्वश्रेष्ठ और इन्द्र आदि देवो के द्वारा वन्दनीय माना गया है।

जैन मतानुसार आत्मा कर्मफलो के बन्धन मे रहता है। तपस्या से कर्मफलो का विनाश होता है यही आत्मा की मुक्ति है। मुक्त हुए महापुरुष सिद्ध कहलाते हैं। सिद्धो मे अर्हन्त सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।

जैन धर्म निरीश्वरवादी होते हुए भी घोर ईश्वरवादी वैष्णव धर्म से बहुत प्रभावित हुआ। आज जैन मतावलम्बियो मे वैष्णव धर्म के अवतारवाद और इष्टदेव भक्ति का व्यापक प्रचार है। उनके त्रिषष्ठि (63) शलाका पुरुष इसके सबल साक्ष्य हैं। इनमे 24 तीर्थकर 12 भरत आदि चक्रवती सम्राट 9 वासुदेव 9 प्रतिवासुदेव और 9 बलदेव सम्मिलित थे। वासुदेवो मे कृष्ण और लक्ष्मण तथा बलदेवो मे बलराम और राम की गणना की गई है। प्रतिवासुदेवो मे वासुदेव विरोधी तत्त्वो की गणना है जैसे रावण कस जरासध आदि। वैष्णव धर्मावलम्बियो के समान जैन धर्मावलम्बी भी अपने घरो मे अपने इष्टदेवो की मूर्तियॉ रखते हैं। परन्तु वे पूजा अर्चा केवल मन्दिरो मे ही करते हैं।

तीर्थंकर मूर्तियॉ और उनके लाछन

जैन धर्म मे 24 तीर्थकरो की मान्यता है। गुप्तोत्तरकाल मे इन तीर्थकरो की पहचान के निमित्त उनके लाछनो यक्षो और शासनदेवियो का निर्धारण किया गया था जिसे निम्न तालिका से समझा जा सकता है—

क्र० स०	तीर्थकर	लाछन	यक्ष	यक्षी अथवा शासन देवी दिगम्बर / श्वेताम्बर
1	ऋषभनाथ	वृषभ या बैल	गोमुख	चक्रेश्वरी
2	अजितनाथ	हाथी	महायक्ष	रोहिणी / अजितबला
3	सम्भवनाथ	अश्व	त्रिमुख	प्रज्ञप्ति / दुरितारि
4	अभिनन्दननाथ	वानर	यक्षेश्वर / नायक	वज्रश्रृखला / कालिका

5	सुमतिनाथ	चक्रवाक / क्रौच	तुम्बुरु	पुरुषदत्ता / महाकाली
6	पद्मप्रभनाथ	कमल	कुसुम	मनोवेगा / श्यामा
7	सुपार्श्वनाथ	नन्द्यावर्त / स्वस्तिक	वरनन्दी / मातग	काली / शान्ता
8	चन्द्रप्रभनाथ	चन्द्रमा	विजय	ज्वालामालिनी / भृकुटी
9	पुष्पदन्तनाथ	केकडा या मकर	अजित	महाकाली / सुतारका
10	शीतलनाथ	स्वस्तिक / श्रीवत्स	ब्रह्मा	मानवी / अशोका
11	श्रेयासनाथ	गरुड / गैडा	ईश्वर / यक्षेट	गौरी / मानवी
12	वासुपूज्यनाथ	महिष (भैसा)	कुमार	गाधारी / चण्डा
13	विमलनाथ	वराह	षण्मुख	वैरोटी / विदिता
14	अवन्तनाथ	रीछ / श्येन	पाताल	अनन्तमति / अकुशा
15	धर्मनाथ	वज्र	किन्नर	मानसी / कदर्पा
16	शान्तिनाथ	मृग	किम्पुरुष / गरुड	महामानसी / निर्वाणी
17	कुथुनाथ	अज (बकरा)	गधर्व	विजया / बला
18	अरनाथ	मीन / नन्द्यावर्त	रखेन्द्र / यक्षेन्द्र	अजिता / धणा
19	मल्लिनाथ / मल्लि (स्त्री)	कुम्भ	कुबेर	अपराजिता / धरणप्रिया
20	मुनिसुव्रत	कच्छप	वरुण	बहुरूपिणी / नरदत्ता
21	नमि / निमि	अशोक / नीलोत्पल	भृकुटी	चामुण्डी / गन्धारी
22	अरिष्टनेमि / नेमिनाथ	शख	सर्वाह्न / गोमेध	कूष्माण्डिनी / अम्बिका
23	पार्श्वनाथ	सर्प	पार्श्वधरणेन्द्र	पद्मावती
24	महावीर	सिह	मातग	सिद्धायिका

जैन मूर्तियो का प्रारम्भ

साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर तीर्थकर महावीर की मूर्ति उनके जीवनकाल मे ही गढी गई थी जिसे जीवन्तस्वामी कहा गया। परन्तु अब तक मिली जैन तीर्थकर मूर्तियो मे सबसे प्राचीन बिहार के लोहानीपुर स्थान वाले मौर्यकालीन नग्न धड को माना जाता है। क्योकि तीर्थकर दिगम्बर (दिशाएँ ही जिनका वस्त्र हो अर्थात वस्त्रहीन या नग्न) थे इसीलिए लोहानीपुर वाले धड को तीर्थकर की प्राचीनतम मूर्ति माना जाता है।[1] परन्तु मथुरा के ककाली टीले से कुषाणकालीन जैन स्तूप खण्ड आयागपटट तीर्थकर मूर्तियाँ तथा अनेक वास्तुखण्ड मिले हैं। इन पर पाए गए अभिलेखो से वहाँ देवनिर्मित स्तूप का भी पता चलता है। वस्तुत मथुरा जैन धर्म और कला का प्राचीनतम केन्द्र था। यहाँ से मिली जैन कलाकृतियाँ लखनऊ के राज्य सग्रहालय की अमूल्य निधि हैं।

आयागपटट

पत्थर के चौकोर टुकडो पर केन्द्र मे चक्र स्वस्तिक अथवा तीर्थकर मूर्ति को घेरकर स्वस्तिक श्रीवत्स मीन-मिथुन नन्द्यावर्त पूर्णघट माला वर्द्धमान भद्रासन आदि अष्टमागलिक चिह्नो को उकेरा गया था (चित्र 90 91)। इन पर पाए गए कुछ अभिलेखो मे इन्हे आयागपटट कहा गया है और इनकी स्थापना अर्हत की पूजा के लिए बताई गई है। इसलिए इन आयागपटों को जैन पूजा के प्रथम सोपान कहा जा सकता है। ये आयागपटट इस बात का प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि पहले प्रतीक पूजा की जाती थी बाद मे इन आयागपटटो पर केन्द्र मे पालथी मारकर ध्यानस्थ बैठे तीर्थकरो को भी उकेरा जाने लगा और कालान्तर मे

1 काशीप्रसाद जायसवाल और रामचन्द्रन सहित कुछ विद्वान तो हडप्पा से प्राप्त एक निर्वस्त्र धड को ऋषभदेव की कायोत्सर्ग मुद्रा वाली मूर्ति मानते थे (*अहिसावाणी* मे उद्धृत अप्रैल-मई 1957 पृ० 54 56)।

उनकी स्वतत्र मूर्तियॉ भी गढी जाने लगी। जैन आयागपटट मथुरा के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान स नही पाए गए है।

तीर्थंकर मूर्तियॉ

तीर्थकर मूर्तियॉ सर्वप्रथम मथुरा मे ही बनाई गई थी। कुषाणकाल से लेकर मध्यकाल तक बनाई गई मूर्तियॉ ककाली टीले से मिली है (चित्र 92 95)। इससे यह स्पष्ट होता है कि एक हजार से भी अधिक वर्षो तक मथुरा निरन्तर एक जैन कलाकेन्द्र के रूप मे विकसित रहा था। कुषाणकालीन मूर्तियो की सख्या सर्वाधिक है। जैन तीर्थकरो की मूर्तियॉ तीन प्रकार की थी–

1 पालथी मारकर ध्यानमुद्रा मे बैठी।
2 कार्योत्सर्ग मुद्रा मे खडी।
3 एक ही प्रस्तर खण्ड पर पीठ से पीठ जोडकर खडी चार तीर्थकर मूर्तियॉ जिन्हे चौमुखी अथवा सर्वतोभद्र भी कहा जाता है।

लाछन

मथुरा मे पहले पहल गढी गई तीर्थकर की सभी मूर्तियॉ एक जैसी थी। उनमे भेद कर पाना कठिन था। कुषाणकाल तक तीर्थकरो के लाछनो का विकास नही हुआ था। इसीलिए मथुरा की प्राथमिक तीर्थकर मूर्तियो की चरण चौकी पर कोई लाछन नही था। फिर भी उनमे से कुछ मूतियो की पहचान की जा सकी जैसे आदिनाथ को उनके कधो तक लटकती जटाओ से पार्श्वनाथ को उनके शीश के ऊपर तने सर्पफणो के छत्र से नेमिनाथ को उनके उभय पार्श्व मे अकित कृष्ण और बलराम से तथा महावीर को उनके आसन मे बनी सिह आकृतियो से। कुछ मूर्तियो को उन पर उकेरे गए अभिलेखो के आधार पर भी पहचाना जा सका था। मथुरा से प्राप्त लगभग 70 75 तीर्थकर प्रतिमाएँ समूची अथवा खण्डित सप्रति लखनऊ के राज्य सग्रहालय मे भी है। इनमे से कई पर अभिलेख है और उनकी स्थापना की तिथि भी अकित है। चरण चौकी पर शख लाछनयुक्त नेमिनाथ की सबसे पुरानी मूर्ति गुप्तकाल की थी जो बिहार के राजगीर नामक स्थान से मिली थी। परन्तु जैन ग्रथो मे लाछनो के उल्लेख 7वी 8वी शती ई० के बाद से ही पाए जाते है।

महापुरुषलक्षण

चरण चौकी वाले लाछनो का विकास तो कुषाणकाल मे हुआ नही था। तब फिर उसी काल मे लगभग उन्ही स्थानक और आसन मुद्राओ मे ऑकी गई मथुरा की बुद्ध बोधिसत्त्व की मूर्तियो और जैन तीर्थकर की मूर्तियो मे भेद करने का प्रमुख साक्ष्य महापुरुषलक्षण था। जैन तीर्थकर की मूर्तियो के वक्ष पर महापुरुषलक्षण श्रीवत्स का अकन उन्हे बौद्ध मूर्तियो से अलग पहचान देता है क्योकि तत्कालीन मथुरा की बौद्ध मूर्तियो के वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न का अभाव है।

ध्यानमुद्रा मे बैठी तीर्थंकर मूर्तियो की हथेलियो पर प्राय चक्र और पैर के तलुओ पर चक्र और नन्दयावर्त के मागलिक चिह्न उकेरे मिलते है। कुछ मूर्तियो की उँगलियो के अग्रभाग पर भी श्रीवत्स आदि मगल चिह्न उकेरे गए थे (चित्र 96 97)।

अन्य विशेषताएँ

1 तीर्थंकरो को या तो मुण्डित मस्तक बनाया गया था अथवा कुचित केश वाला।
2 भौहो के बीच बौद्ध मूर्तियो जैसी ऊर्णा थी।
3 तीर्थंकर मूर्तियॉ पूर्णतया दिगम्बर (नग्न) थी क्योकि अभी श्वेताम्बर विचारधारा का जन्म नही हुआ था

परवर्तीकालीन तीर्थंकर मूर्तियो की विशेषताएँ

1 परवर्तीकाल की तीर्थंकर मूर्तियो मे ऊर्णा का अभाव।
2 प्रभामण्डल और उसका विविधरूपी अलकरण।

3 परिवार देवताओ (यक्ष शासनदेवी चामरधारी उपासक आदि) का अकन।
4 शीश के ऊपर त्रिछत्र।
5 त्रिछत्र के ऊपर देवदुन्दुभि (ढोल बजाते देवता)।
6 परिकर मे ऊपर मालाधारी विद्याधर तथा अन्य देवगण।
7 प्राय आसन के नीचे बीचो बीच रक्खा धर्मचक्र।
8 नवग्रहो का भी समावेश।

अन्य देव-मूर्तियॉ

जीवन्तस्वामी

जैन साहित्य से पता चलता है कि महावीर के जीवनकाल मे ही चन्दन से उनकी एक प्रतिमा का निर्माण किया गया था। जीवनकाल मे निर्माण किए जाने से इसे जीवित स्वामी या जीवन्तस्वामी कहा गया। साहित्य और शिल्प दोनो मे जीवन्तस्वामी की मूर्ति को कायोत्सर्ग मुद्रा मे मुकुट मेखला हार आदि अलकरणो से विभूषित एक राजकुमार के रूप मे बनाने का साक्ष्य मिलता है। जीवन्तस्वामी बौद्ध धर्म के बोधिसत्त्व जैसे थे जो बुद्ध बनने से पहले सम्बोधि पाने के लिए सतत् क्रियाशील माने गए थे। शायद इसीलिए उमाकान्त प्रेमानन्द शाह ने जीवन्तस्वामी को जिनसत्त्व कहा है। जीवन्तस्वामी की प्राचीनतम मूर्तियॉ अकोटा (गुजरात) से मिली है। 5वी 6ठी शती की ये कास्यमूर्तियॉ बडौदा-सग्रहालय मे है। मध्ययुगीन मूर्तियॉ गुजरात (शत्रुजय) और राजस्थान (ओसियॉ नागोर आदि) से भी मिली है जिनका निर्माण 9वी और 15वी शती के बीच किया गया है।

कृष्ण-बलराम

कृष्ण ओर बलराम की गणना 63 शलाका पुरुषो मे की गई है। वे नेमिनाथ के चचेरे भाई थे। मथुरा की कुषाणकालीन नेमिनाथ की मूर्तियो के अगल-बगल कृष्ण और हलधर बलराम की आकृतियॉ उकेरी गई थी (लखनऊ राज्य सग्रहालय स० 34 2502 जे० 47 जे० 117 आदि)। देवगढ (ललितपुर) की नेमिनाथ मूर्तियो मे भी कृष्ण और बलराम के अकन है।

नैगमेष

अजमुख या बकरे के मुखवाला नैगमेष इन्द्र की पदाति सेना का सेनापति था। उसने महावीर के भ्रूण को ब्राह्मणी देवनन्दा के गर्भ से क्षत्राणी त्रिशला के गर्भ मे स्थापित किया था। मथुरा मे कुषाणकाल की कुछ नैगमेष की मूर्तियॉ मिली हैं जो लखनऊ सग्रहालय (स०स० जे- 626) तथा मथुरा सग्रहालय (34 2547 15 1115) मे हैं।

रेवती

नैगमेष की शक्ति अजामुख की एक मूर्ति मथुरा सग्रहालय मे है।

इन्द्र

जैन ग्रथो मे उल्लेख है कि जिनो के जन्म दीक्षा और कैवल्य प्राप्ति के अवसरो पर इन्द्र तुरन्त धरती पर आते हे। मूर्तिकला मे इन्द्र का अकन 11वी 12वी शती ई० मे राजस्थान के जैन मन्दिरो मे मिलता है।

गजलक्ष्मी

जिन-माताओ के द्वारा देखे गए शुभ स्वप्नो मे लक्ष्मी का उल्लेख है। लक्ष्मी की मूर्तियॉ शुगकाल से ही ब्राह्मण जैन तथा बौद्ध धर्म सम्बन्धी कला मे उपलब्ध होती है।

सरस्वती

जैन धर्म मे भी सरस्वती को विद्या एव बुद्धि की देवी माना गया था। श्रुतदेवी के नाम से उसकी पहचान थी। कुषाणकालीन मथुरा की सरस्वती की मूर्ति सम्पूर्ण मूर्तिकला मे सर्वाधिक प्राचीन है और यह ककीली टीले के जैन परिसर मे मिली है (लखनऊ सग्रहालय स० जे-24 चित्र 56)।

चक्रेश्वरी

यह आदिनाथ की शासन देवी हे। इसके पास चक्र रहत हे। इसका वाहन गरुड ह। मध्यकाल म इसकी स्वतत्र मूर्तियॉ ऑकी गइ थी।

अम्बिका

पाश अकुश आम्र की बौर वाली टहनी ओर बाल्क लिए सिह वाहन वाली यह देवी तीथकर नमि की शासन यक्षी है। इसका अकन भी मध्यकाल मे हुआ था (लखनऊ स०स० जी 33 जी 312)।

पद्मावती

यह पार्श्वनाथ की शासनदेवी है। शीश पर सर्पफणा का छत्र मुख्य लक्षण हे (ल०स०स० जी 316)

क्षेत्रपाल

भैरव के समान इनकी गणना भी जैनो ने भैरव ओर योगिनियो के साथ की है। भयकर मुखाकृति श्यामवर्ण बिखरे बाल पैरो मे खडाऊॅ हाथो मे मुदगर डमरू अकुश और साथ म कुत्ता इनके मुख्य लक्षण है। मथुरा सग्रहालय मे एक पुरानी मूर्ति है (स०स० 60 486) जिसके दाहिने हाथ मे दण्ड हे और बाएँ हाथ मे कुत्ते की रस्सी। 11वी 12वी शती की मूर्तियॉ देवगढ (ललितपुर उ०प्र०) तथा खजुराहो (छतरपुर म०प्र०) मे मिली है।

बाहुबली

ऋषभनाथ के पुत्र बाहुबली ने अपने भाई भरत को युद्ध मे पराजित करने के बाद उन्हे राज्य लौटा दिया और स्वय ससार छोडकर कठोर तपस्या की और कैवल्य प्राप्त किया। जैन धर्म मे उनकी गणना सिद्ध पुरुषो मे की गई है। जैन साहित्य ओर शिल्प मे उन्हे सम्मानित स्थान मिला था। उनकी मूर्तियॉ कायोत्सर्ग मुद्रा मे है। कठोर और दीर्घकाल तक तपस्या करने के कारण लताएँ उनके पेरो मे लिपटकर ऊपर तक चली गइ है। यही लताएँ और कायोत्सर्ग मुद्रा बाहुबली की प्रमुख पहचान है। कर्नाटक के श्रवणबेलगोला मे बाहुबली की दो मूर्तियॉ बनाई गई थी। नवी शती ई० की एक मूर्ति सम्प्रति मुम्बई के प्रिस ऑव वेल्स म्यूजियम मे है (स०स० 105 चित्र 98) और दूसरी वही पर्वत की चटटान मे तराशकर बनाई गई है। श्रवणबेलगोला मे पर्वत की चटटान मे तराशकर बनाई गई बाहुबली की मूर्ति सबसे बडी 57 फिट की है और गोम्मटेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। जूनागढ तथा लखनऊ सग्रहालयो के अतिरिक्त खजुराहो के पार्श्वनाथ मदिर तथा देवगढ (ललितपुर उ०प्र०) के जैन मदिरो मे भी बाहुबली की मूर्तियॉ है।

आदिमिथुन या जुगलिया

सृष्टि के कारण आदिमिथुन या जुगलिया (युगुल मिथुन) जैन कला मे विशेष स्थान रखती हे। इन्हे प्राय विशाल वृक्ष के नीचे बैठा दिखाया जाता है। चरण चौकी पर बालको का अकन तथा वृक्ष के ऊपर कोई जिनबिम्ब बना होता है। लखनऊ-सग्रहालय मे भी एक जुगलिया है (स०स० ओ 333)। उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जनपद मे कूॅड नामक स्थान से लगभग 11वी शती ई० का एक ऐसा ही सुन्दर जुगलिया फलक उ०प्र० राज्य पुरातत्त्व सगठन ने खोज निकाला है।

बुद्ध एव तीर्थंकर मूर्तियो मे मुख्य अन्तर

1 बुद्ध की मूर्तियो मे बाएँ अथवा दोनो कधो से सघाटि वस्त्र नीचे तक लटकता है जब कि तीर्थकर सदैव निर्वस्त्र (दिगम्बर) रहते है।
2 तीर्थकर की मूर्तियों के वक्ष पर श्रीवत्स' महापुरुष लक्षण बना होता है जो बुद्ध मूर्तियो मे प्राय नहीं मिलता है।
3 तीर्थकर मूर्तियॉ या तो ध्यानमुद्रा मे बैठी अथवा कायोत्सर्ग मुद्रा मे खडी बनाई गई हैं। उनमे अभय वरद अथवा अन्य किसी मुद्रा का पूर्ण अभाव रहता है। इसके विपरीत बुद्ध मूर्तियॉ प्राय अभय मुद्रा मे रहती है या फिर भूमिस्पर्श मुद्रा मे धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा मे (बैठी) अथवा महापरिनिर्वाण मुद्रा मे (लेटी)।

❑

सन्दर्भ-ग्रथ सूची

क मूल ग्रथ

अगस्त्यसहिता

अग्निपुराण

अथर्ववेद (स० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

अपराजितपृच्छा

अभिज्ञान शाकुन्तलम

आचारदिकर (वर्धमानसूरिकृत)

आर्यमजुश्रीमूलकल्प

अशुमदभेदागम

ईशानशिवगुरुदेवपद्धति

ऋग्वेद (स० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

कालिदासग्रथावली (स०प० सीताराम चतुर्वेदी)

गणपति अथर्वशीर्ष

गणपतिपुराण

गरुडपुराण

गुह्यसमाजतत्र

चतुर्वर्गचिन्तामणि (हेमाद्रिकृत)

जयाख्यसहिता (बडौदा 1931)

जातक (अनु०भदन्त आनन्द कौसलायन प्रयाग)

तत्रसार

त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र (हेमचन्द्रकृत)

दुर्गासप्तशती

देवतामूर्तिप्रकरण (स०उपेन्द्रमोहन साख्यतीर्थ कलकत्ता 1936)

देवीभागवत

नारदपुराण

पद्मपुराण

प्राणतोषिणी

प्रज्ञापारमिताशास्त्र

ब्रह्मपुराण

ब्रह्मवैवर्तपुराण

बृहत्सहिता (वराहमिहिरकृत)

मत्स्यपुराण
मनुस्मृति
मयमत
महाभारत
मानसार
मार्कण्डेयपुराण
मुदगलपुराण
रघुवश
रामायण (गीताप्रेस गोरखपुर)
रूपमण्डन (सूत्रधार मण्डनकृत स० बलराम श्रीवास्तव)
ललितविस्तर (स० पी० एल० वैद्य नालन्दा 1958)
लिगपुराण
वायुपुराण
विश्वकर्मावास्तुशास्त्र
विष्णुधर्मोत्तरपुराण (स० प्रियबाला शाह बडौदा 1958)
विष्णुपुराण (गीता प्रेस गोरखपुर)
शतपथ ब्राह्मण
शारदातिलक
शिल्परत्न (श्रीकुमारकृत)
शिवपुराण
श्रीतत्त्वनिधि
श्रीमद्भागवतगीता
श्रीमद्भागवतपुराण
श्रीरामचर्यापद्धति
श्रीरामतापनीयोपनिषद
समरागणसूत्रधार (परमार भोजकृत)
समवायागसूत्र
साम्बपुराण
सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद् (निर्णय सागर प्रेस बम्बई 1925)
स्कन्द पुराण
हरिवशपुराण

ख आधुनिक ग्रथ

अमलानन्द घोष (स०)	*जैन कला एव स्थापत्य* 3 खण्ड दिल्ली 1974 75
इन्दुमती मिश्रा	*प्रतिमा विज्ञान* भोपाल द्वितीय सस्करण 1987
उमाकान्त प्रेमानन्द शाह	*स्कल्पचर्स फ्राम शामलाजी ऐण्ड रोडा* बडौदा 1960
उ०प्रे० शाह एव एम०ए० ढाकी (स०)	*ऑस्पेक्टस ऑव जैन आर्ट ऐण्ड आर्कीटेक्चर* अहमदाबाद 1975
ए०एल० श्रीवास्तव	*भारतीय कला* प्रथम सस्करण इलाहाबाद 1988
	भारतीय कला प्रतीक इलाहाबाद 1989
	श्रीवत्स भारतीय कला का एक मागलिक प्रतीक इलाहाबाद 1983
	लाइफ इन सॉची स्कल्पचर नई दिल्ली 1983
ऋषिराज त्रिपाठी	*मास्टरपीसेज ऑव द इलाहाबाद म्यूजियम* इलाहाबाद 1984
किरन अरोडा	*मध्यप्रदेश मे गणेश प्रतिमाओ का समालोचनात्मक अध्ययन* (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध भोपाल विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत 1995)
कृष्णदत्त बाजपेयी	*तुमैन* सागर 1974
	मल्हार सागर 1978
	सागर थ्रू द एजेज सागर 1964
गोपालकृष्ण अग्निहोत्री	*कन्नौज आर्कियोलॉजी ऐण्ड आर्ट* कन्नौज 1978
जे०एन० बनर्जी	*डेवेलपमेण्ट ऑव हिन्दू आइक्नोग्रैफी* दिल्ली 1985
	रेलिजन इन आर्ट ऐण्ड आर्कियोलॉजी लखनऊ 1968
टी०ए० गोपीनाथ राव	*एलीमेण्टस ऑव हिन्दू आइक्नोग्रैफी* 2 खण्ड नई दिल्ली 1968
देवेन्द्र हाण्डा (स०)	*अजय श्री* (प्रो० अजय मित्र शास्त्री फेलिसिटेशन वाल्यूम) 2 खण्ड दिल्ली 1989
नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी	*प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान* पटना 1977
	ब्रह्मैनिकल स्कल्पचर्स इन द स्टेट म्यूजियम लखनऊ खण्ड 1 1972
	ब्रह्मैनिकल स्कल्पचर्स इन द स्टेट म्यूजियम लखनऊ खण्ड 2 भाग 2 1989
	मथुरा स्कल्पचर्स मथुरा 1966
प्रमोद चन्द्र	*स्टोन स्कल्पचर इन द इलाहाबाद म्यूजियम* बम्बई 1970
मारुतिनन्दन तिवारी	*जैन प्रतिमा विज्ञान* वाराणसी 1981
मार्शल फूशे ऐण्ड मजूमदार	*मान्यूमेण्टस ऑव सॉची* 3 खण्ड लन्दन 1940

यू०सी० भटटाचार्य	*कैटेलॉग ऐण्ड गाइड टु राजपूताना म्यूजियम* अज्मेर 1960 61
रत्नचन्द्र अग्रवाल	*स्कल्पचर्स फ्राम उदयपुर म्यूजियम*
राय गोविन्दचन्द्र	*प्राचीन भारत मे लक्ष्मी प्रतिमा* वाराणसी 1964
वासुदेवशरण अग्रवाल	*इण्डिन आट* वाराणसी 1965
	स्टडीज इन इण्डियन आर्ट वाराणसी 1965
	प्राचीन भारतीय लोकधर्म अहमदाबाद 1964
	महादेव– द ग्रेट गॉड शिव वाराणसी 1966
एस०के०शर्मा एव पी०एस० द्विवेदी	*भारतीय साहित्य और कला मे गणेश* वाराणसी 1996
एस०डी० त्रिवेदी	*स्कल्पचस इन द झॉसी म्यूजियम* झॉसी 1983
एच० डेनियल स्मिथ	*वैष्णव आइक्नोग्रैफी* मद्रास 1969
हरिमोहन मालवीय (स०)	*श्रीपथरचटटी रामलीला कमेटी स्मारिका* गणपति विशेषाक इलाहाबाद 1995

ग शोध प्रत्रिकाएँ

आर्टस एसियाटीक्स पेरिस

ईस्ट ऐण्ड वेस्ट रोम

कला (जर्नल ऑव द इण्डियन आर्ट हिस्टरी काग्रेस) गुवाहाटी

जर्नल ऑव द एशियाटिक सोसाइटी ऑव बाम्बे बम्बई

जनल ऑव द इण्डियन सोसाइटी ऑव ओरियण्टल आर्ट कलकत्ता

जर्नल ऑव द गगानाथ झा केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ इलाहाबाद

जर्नल ऑव द यू०पी० हिस्टारिकल सोसाइटी लखनऊ

द रिसर्चर (जर्नल ऑव द आर्कियोलाजी ऐण्ड म्यूजियम्स राजस्थान) जयपुर

पुरातन (म०प्र० पुरातत्त्व विभाग की शोध पत्रिका) भोपाल

प्राग्धारा (उ०प्र० पुरातत्त्व विभाग की शोध पत्रिका) लखनऊ

प्राच्यप्रतिभा (प्राच्य निकेतन बिडला सग्रहालय की शोध पत्रिका) भोपाल

पञ्चाल (पञ्चाल शोध सस्थान की शोध पत्रिका) कानपुर

बुलेटिन ऑव बडौदा म्यूजियम ऐण्ड पिक्चर गैलेरी बडौदा

जर्नल ऑव हरियाणा शिमला मार्ग बम्बई

सग्रहालय पुरातत्त्व पत्रिका लखनऊ

साप्ताहिक हिन्दुस्तान (हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन) नई दिल्ली

❑

चित्र – सूची

(चित्र स० 1 से 98 तक
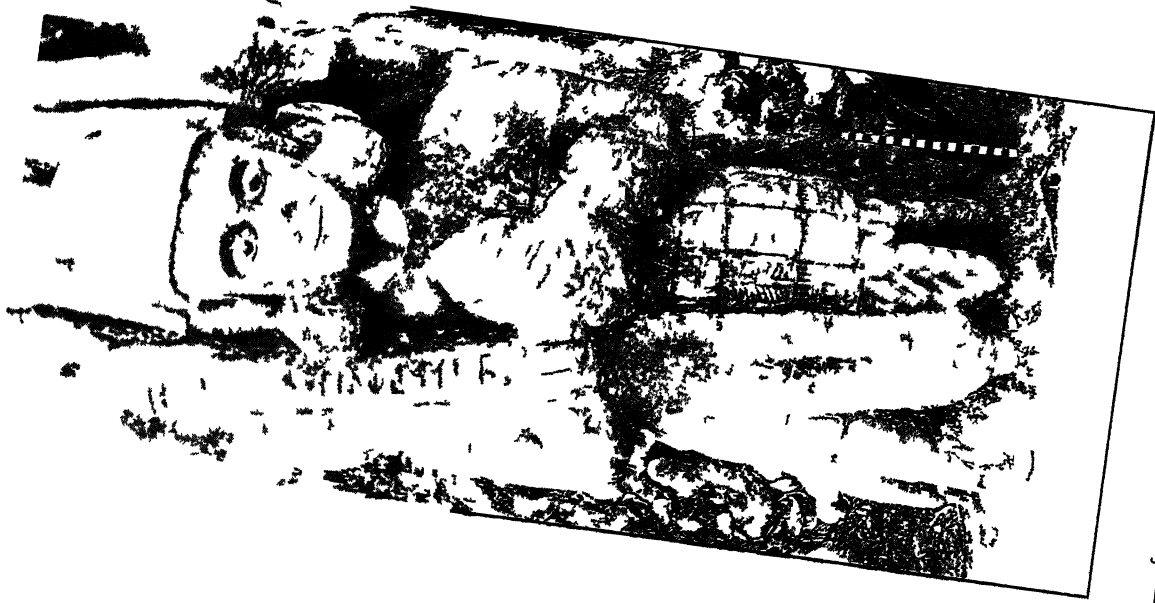
1 चतुर्भुज विष्णु मल्हार (बिलासपुर म०प्र०) मौर्य शुंगकाल
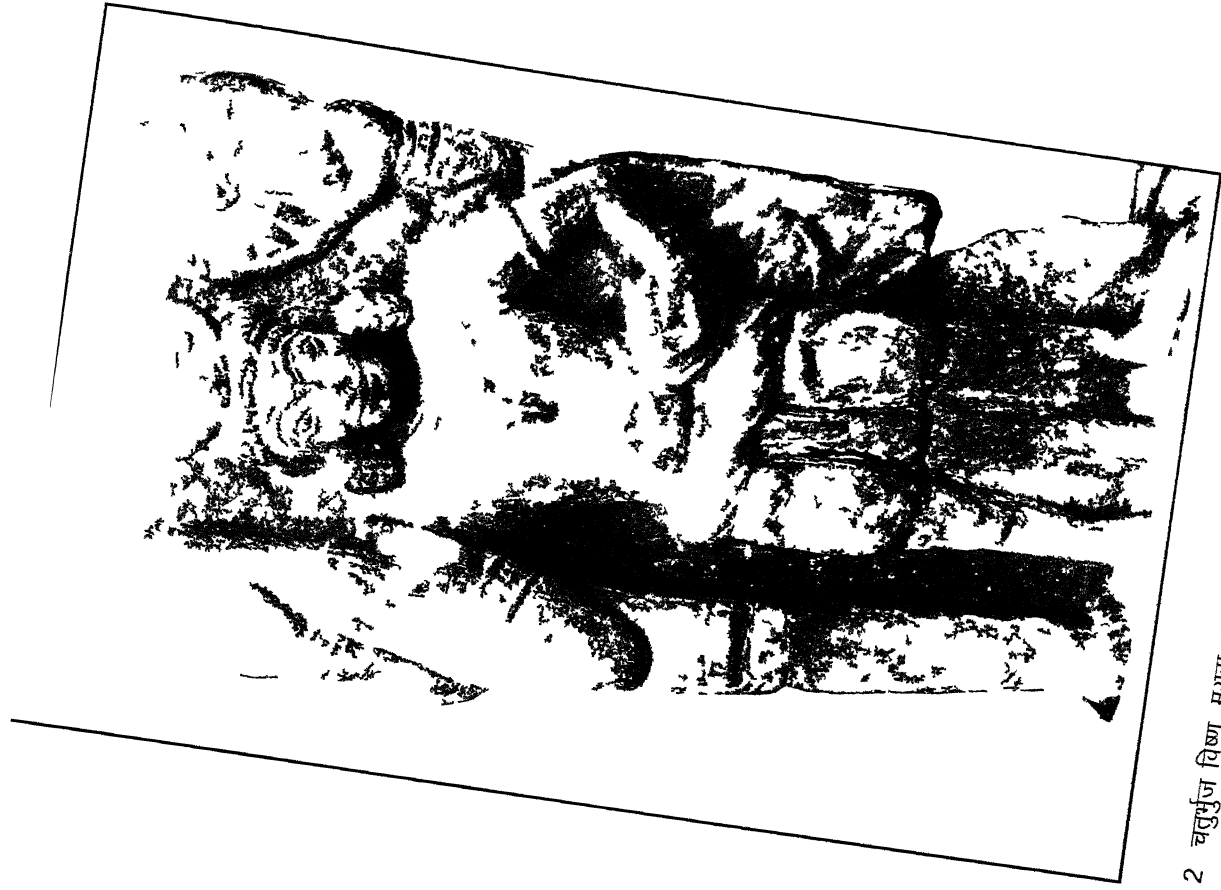
2 चतुर्भुज विष्णु मथुरा कुषाणकाल (मथुरा संग्रहालय संख्या 34 2487)
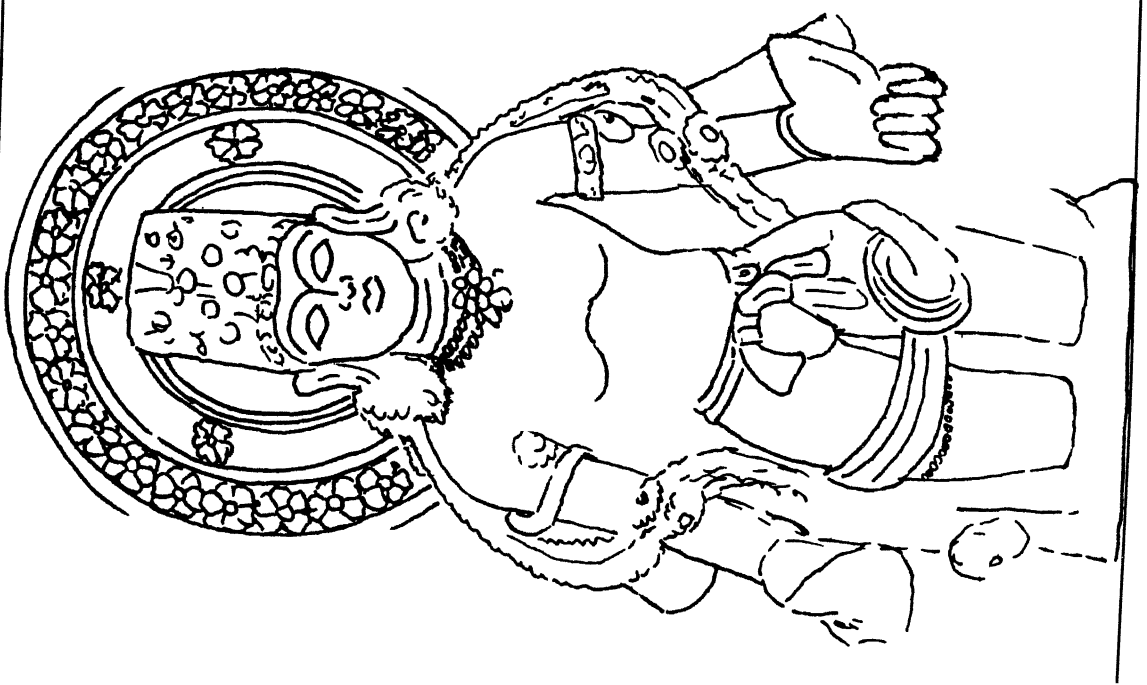
3 प्रलम्बबाहु विष्णु मथुरा गुप्तकाल (लखनऊ सग्रहालय स० एच 111)
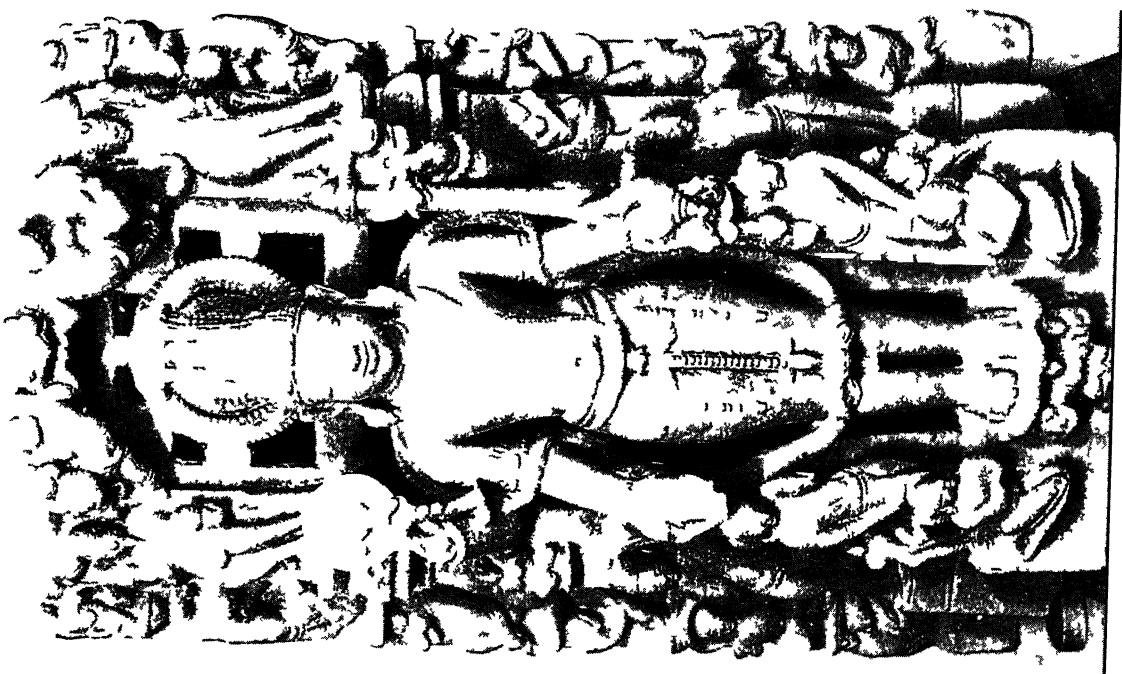
4 चतुर्भुज विष्णु देहरादून ल० 10वी शती ई० (निजी सग्रह)

5 गरुडासीन लक्ष्मीनारायण अरैल (इलाहाबाद) ल० 12वी शती ई० (इलाहाबाद सग्रहालय स० 856)

6 गरुडासीन विष्णु गजेन्द्रमोक्ष फलक दशावतार मदिर देवगढ ल० 6ठी शती ई०

7 गरुडासीन विष्णु खजुराहो 11वी शती ई०
(इलाहाबाद सग्रहालय स० 265)
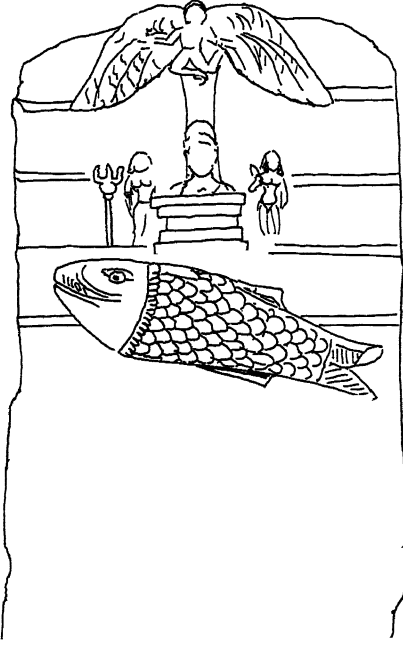
8 मत्स्यावतार अज्ञात स्थान 9 वी शती ई०
(ब्रिटिश सग्रहालय लन्दन स०स० 1872 1 1 50)
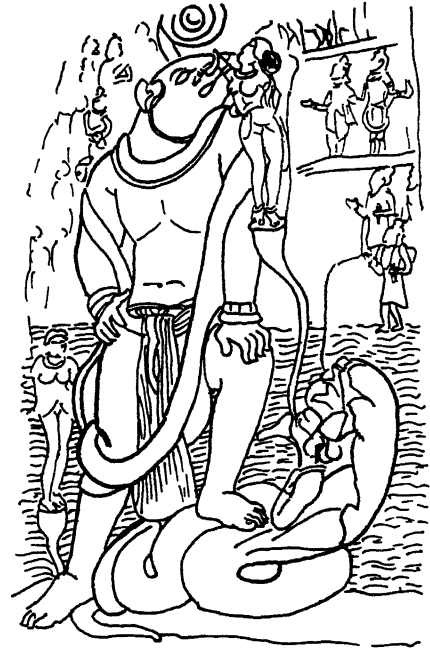
9 महावराह उदयगिरि गुहा (विदिशा म०प्र०) गुप्तकाल
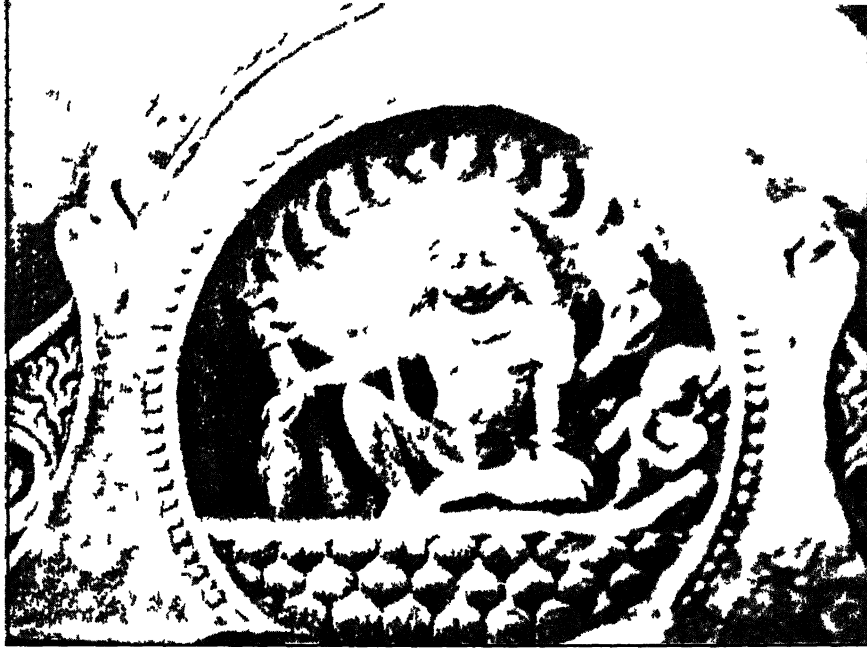
10 नृसिहावतार देवगढ छठी शती इ०

11 वामन अवतार मध्य भारत मध्यकाल
(राष्ट्रीय सग्रहालय नई दिल्ली स०स० 58 10/1)

12 त्रिविक्रम विष्णु मध्यकाल
(इलाहाबाद सग्रहालय स० 245)

13 बलराम मथुरा कुषाणकाल
(मथुरा सग्रहालय स० सी 15)

14 अनन्तशायी विष्णु दशावतार मदिर
देवगढ छठी शती ई०

15 वैकुण्ठ विष्णु खरार (चण्डीगढ पजाब)
लग० 10वी शती ई०

16 विश्वरूप विष्णु मथुरा गुप्तकाल
(मथुरा सग्रहालय स० 42 43 2989)

17 विश्वरूप विष्णु कन्नोज 8वी शती ई० प्रतिहारकाल
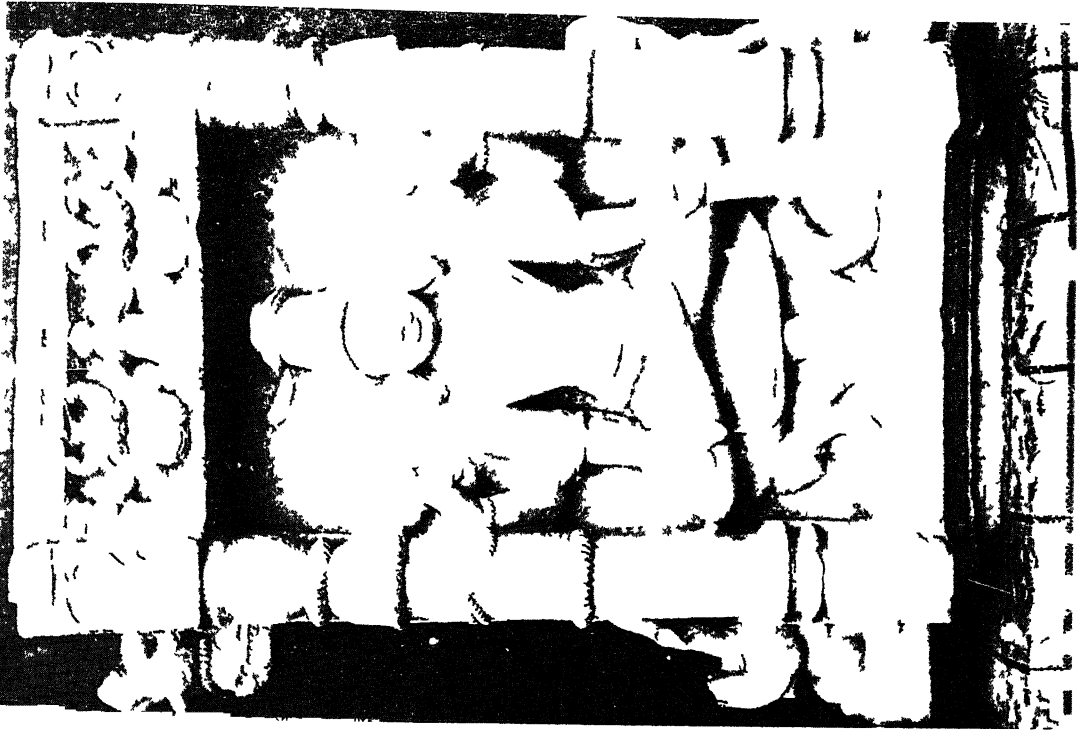
18 योगनारायण विष्णु देहरादून लग० 9वी 10वी शती ई० (निजी संग्रह)
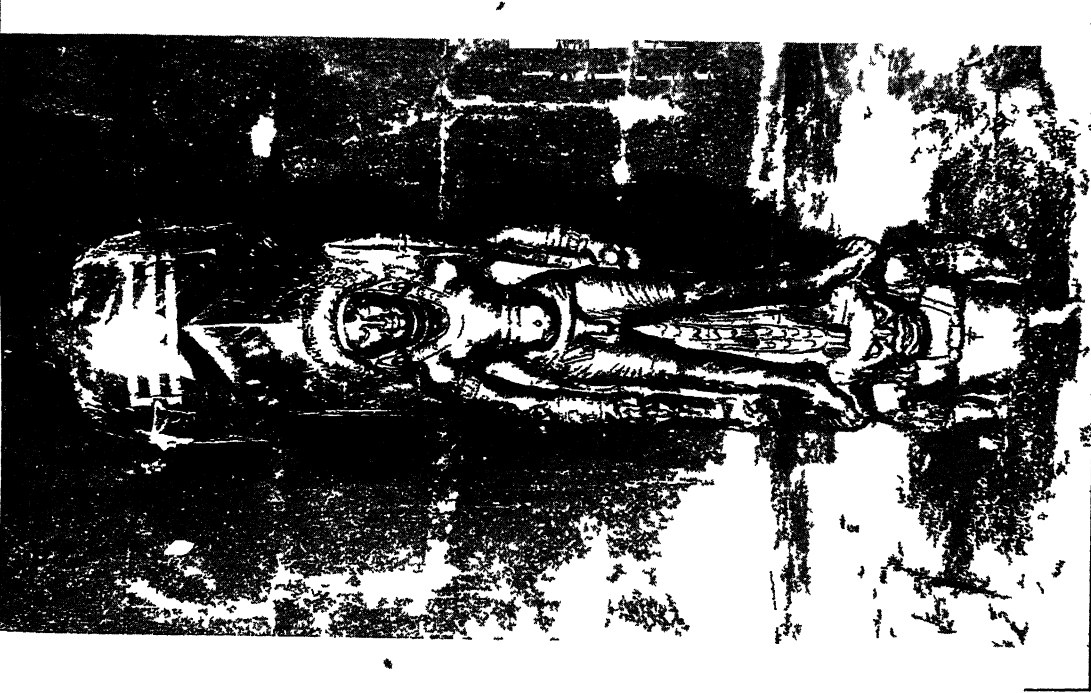
19 सकल लिग गुडडीमलम (रेणूगुण्ठा तमिलनाडु) प्रथम शती ई०पू०

26 चतुर्मुख लिग कन्नौज प्रतिहारकाल

'0 एकमुखलिग मथुरा कुषाणकाल 21 एकमुखलिग मथुरा गुप्तकाल 22 एकमुखलिग ऊँचहरा (म०प्र०) गुप्तकाल

23 चतुर्मुख लिग कौशाम्बी कुषाणकाल 24 चतुर्मुख लिग मथुरा कुषाणकाल 25 पचास्य लिग आगरा कुषाणकाल
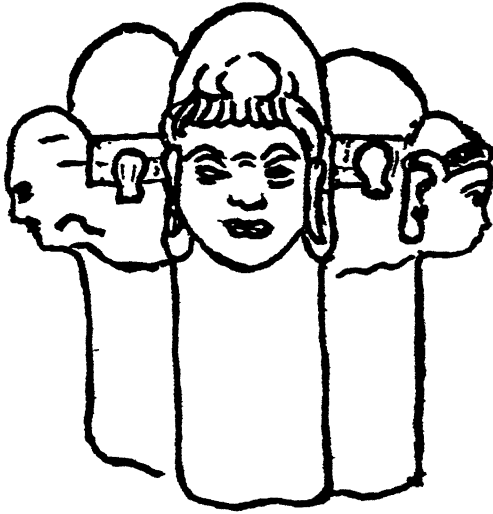
27 नीलकण्ठ शिव पाली (ललितपुर उ०प्र०) नीलकण्ठेश्वर मदिर

28 वृषवाहन शामलाजी (गुजरात) 5वी शती ई० (बडोदा सग्रहालय स० 2 544)
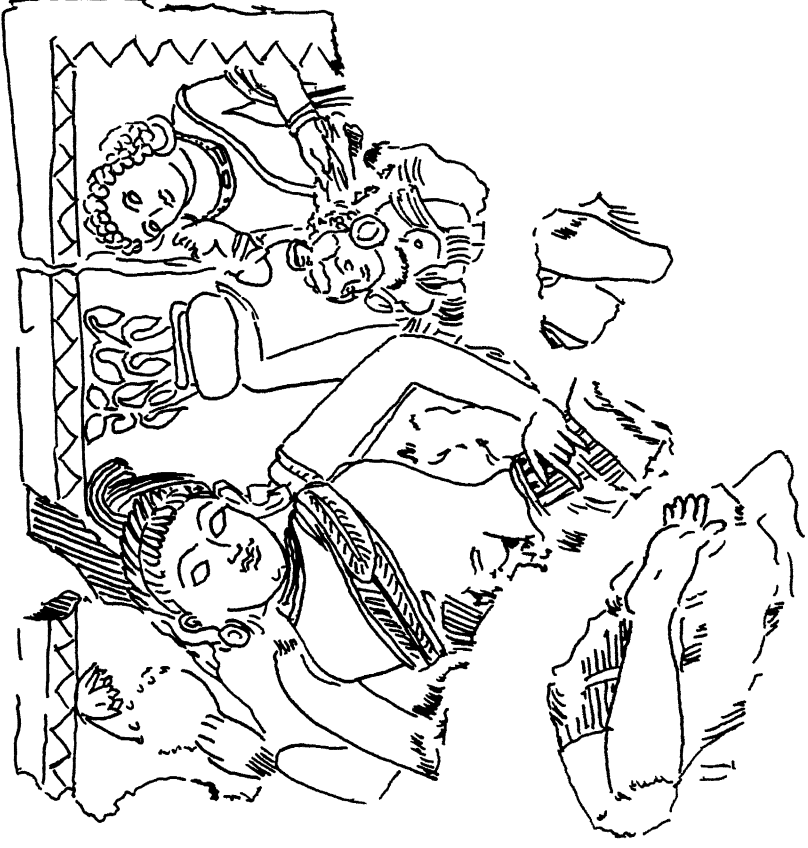
29 दक्षिणामूर्ति शिव अहिछत्रा (बरेली उ०प्र०) गुप्तकाल (मृण्मूर्ति)

30 लिगोद्भव मूर्ति स्वर्गब्रह्मा मदिर आलमपुर (आन्ध्रप्रदेश) मध्यकाल

31 लिगोदभवमूर्ति वाराणसी मध्ययकाल
(स्रात नी०पु० जोशी)
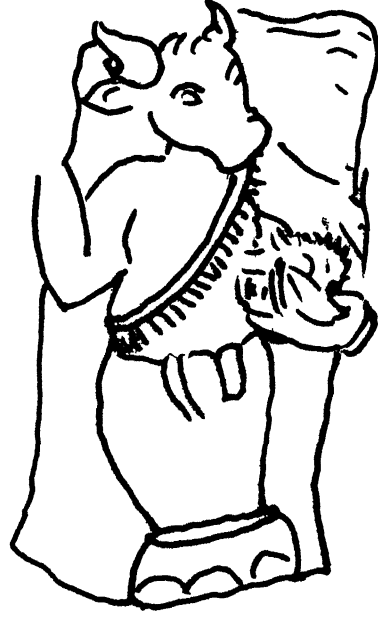
32 अजएकपाद रगमहल राजस्थान (बीकानेर सग्रहालय
स० 224 बी एम मृण्मूर्ति)

33 लकुलीश मथुरा गुप्तकाल
(मथुरा सग्रहालय स० 45 3211)

34 नटराज शिव नचना कुठार (म०प्र०) गुप्तकाल
(स्व० श्रीमती पुपुल जयकर का निजी सग्रह)
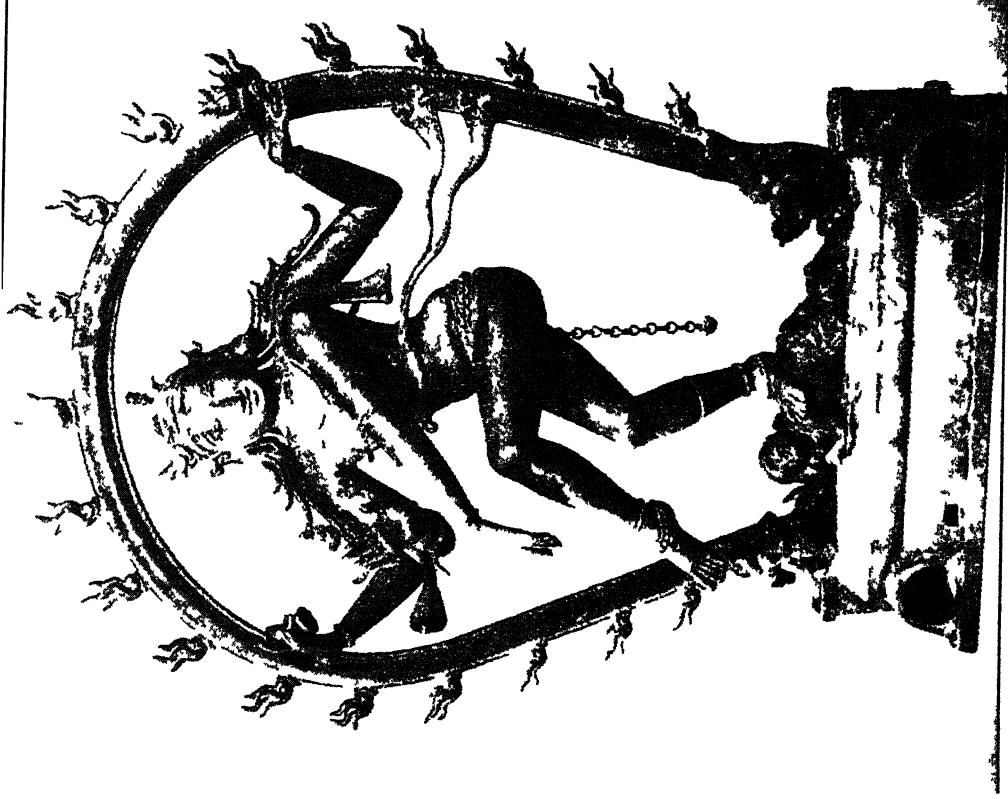
35 नटराज नल्थूनै मदिर पुजई (तजौर तमिलनाडु)
मध्यकाल (कास्य)
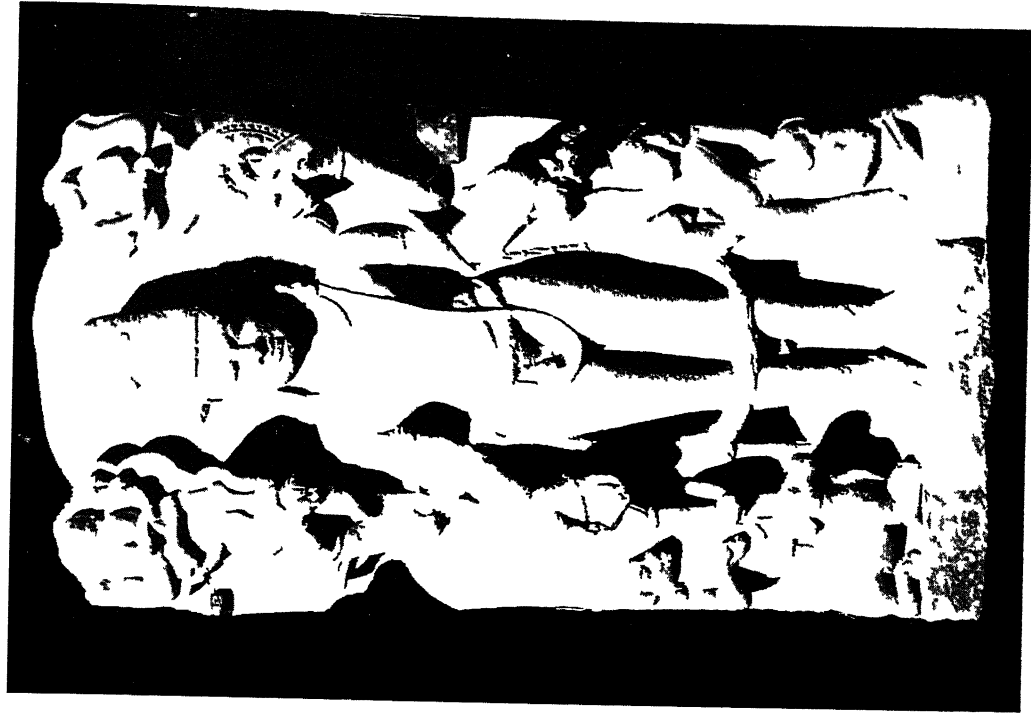
38 हरिहर अज्ञात स्थान लग० 8वी शती ई०
(लखनऊ संग्रहालय सं० पृष्ठ 110)
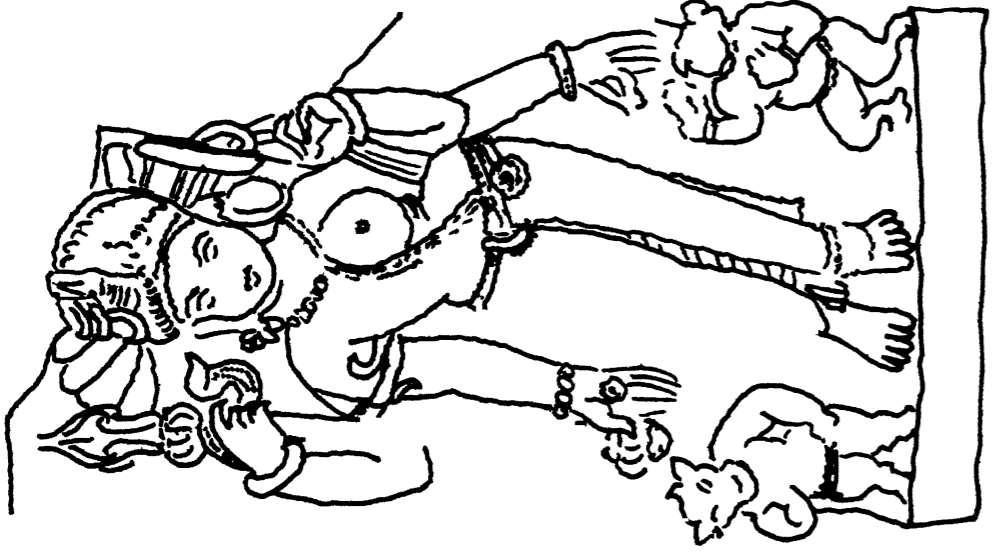
36 अर्द्धनारीश्वर कन्नौज प्रतिहारकाल (कन्नौज-सग्रहालय स्रोत नी०पु० जोशी)

37 अर्द्धनारीश्वर राजस्थान लग० 8वी शती ई० प्रतिहारकाल

41 रावणानुग्रह कन्नौज लग० 10वी शती ई०
(कन्नौज-सग्रहालय)

42 बटुक भैरव कन्नौज गुप्तकाल
(निजी सग्रह)

43 काल भैरव अहिच्छत्रा
गुप्तकाल (मृण्मूर्ति)

44 गजासुर-सहार तेली का मदिर ग्वालियर दुर्ग
8वी शती ई० (ग्वालियर सग्रहालय)

45 कार्त्तिकेय कुशीनगर लग० 12वी शती ई०
(लखनऊ सग्रहालय स० जी 399)
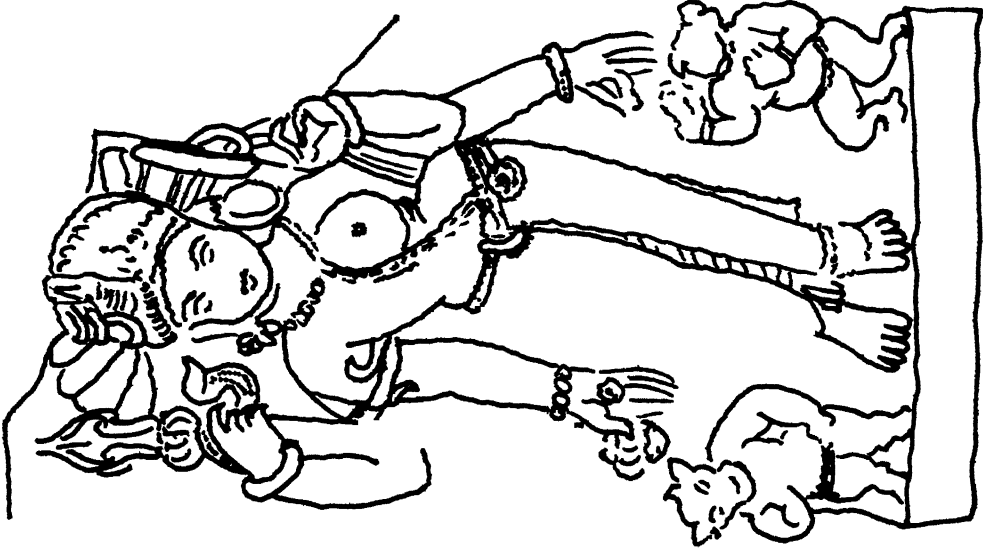
36 अर्द्धनारीश्वर कन्नौज प्रतिहारकाल (कन्नौज सग्रहालय स्रोत नी०पु० जोशी)

37 अर्द्धनारीश्वर राजस्थान लग० 8वी शती ई० प्रतिहारकाल

39 कल्याणसुन्दर कन्नौज प्रतिहारकाल
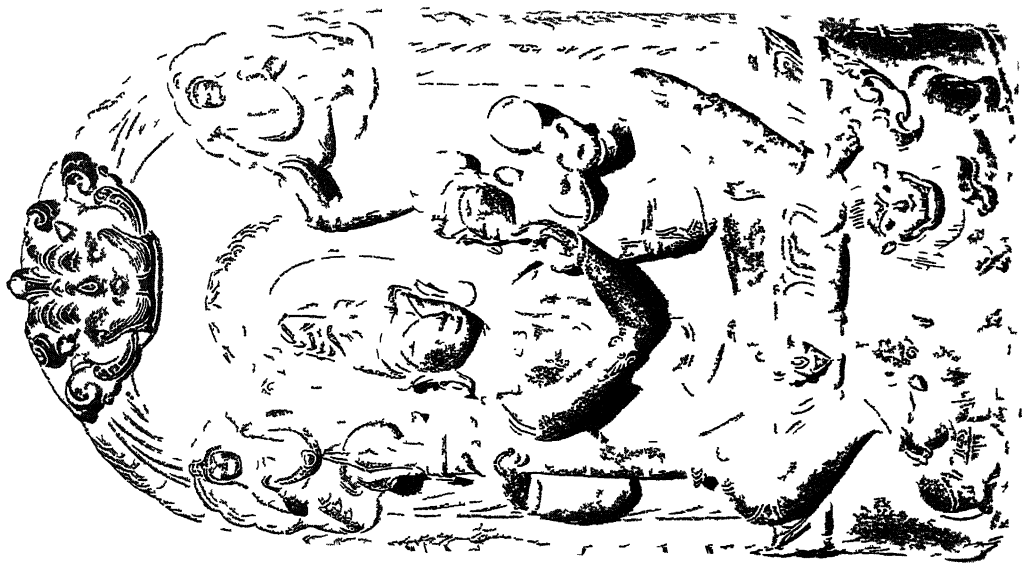
40 उमामहेश्वर पाल शैली लग० 12वी शती ई०
(लखनऊ सग्रहालय)

41 रावणानुग्रह कन्नौज लग० 10वी शती ई०
(कन्नौज सग्रहालय)

42 बटुक भैरव कन्नौज गुप्तकाल
(निजी सग्रह)

43 काल भैरव अहिच्छत्रा
गुप्तकाल (मृण्मूर्ति)

44 गजासुर सहार तेली का मदिर ग्वालियर दुर्ग
8वी शती ई० (ग्वालियर सग्रहालय)

45 कार्त्तिकेय कुशीनगर लग० 12वी शती ई०
(लखनऊ सग्रहालय स० जी 399)

46 कार्त्तिकेय कन्नौज लग० 5वी 6ठी शती ई०
(इलाहाबाद सग्रहालय स० 946)
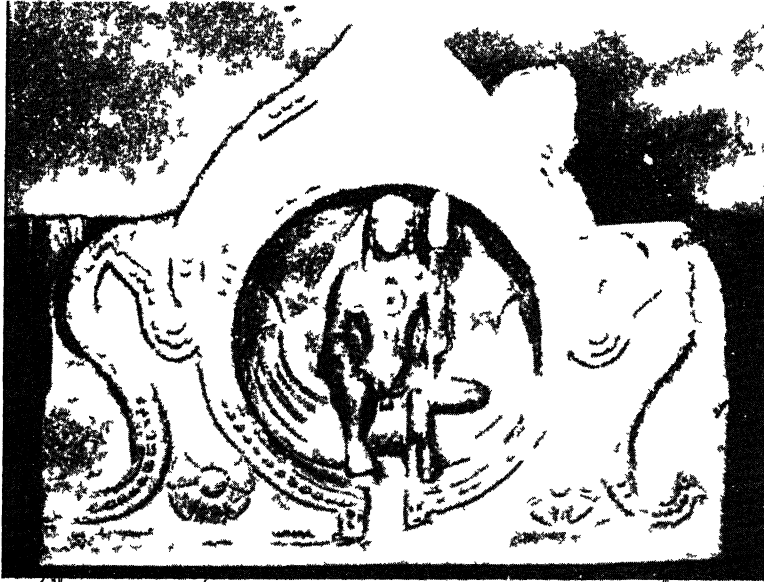
47 कार्त्तिकेय भुमरा (म०प्र०) गुप्तकाल
(इलाहाबाद सग्रहालय स० 150)

48 सूर्य बोधगया वेदिका स्तभ प्रथम शती ई०पू०

49 सूर्य कन्नौज प्रतिहारकाल (कन्नौज सग्रहालय)
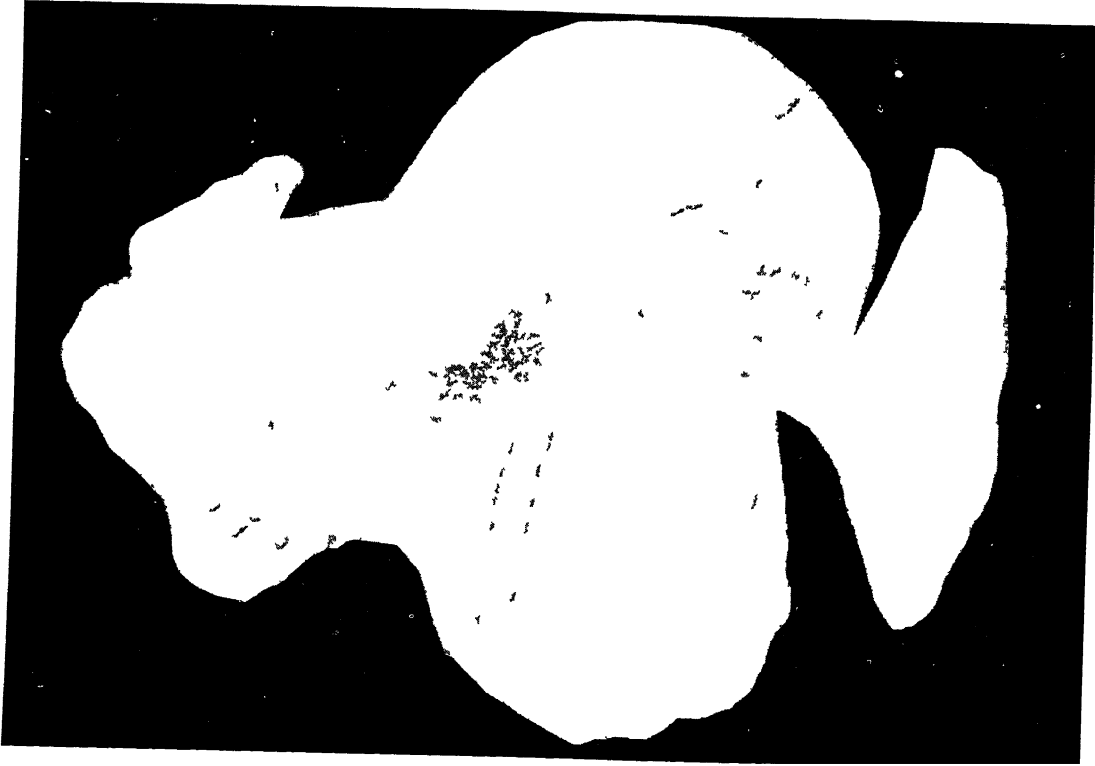
50 गणेश मृण्मूर्ति कन्नौज गुप्तकाल (कन्नौज सग्रहालय)
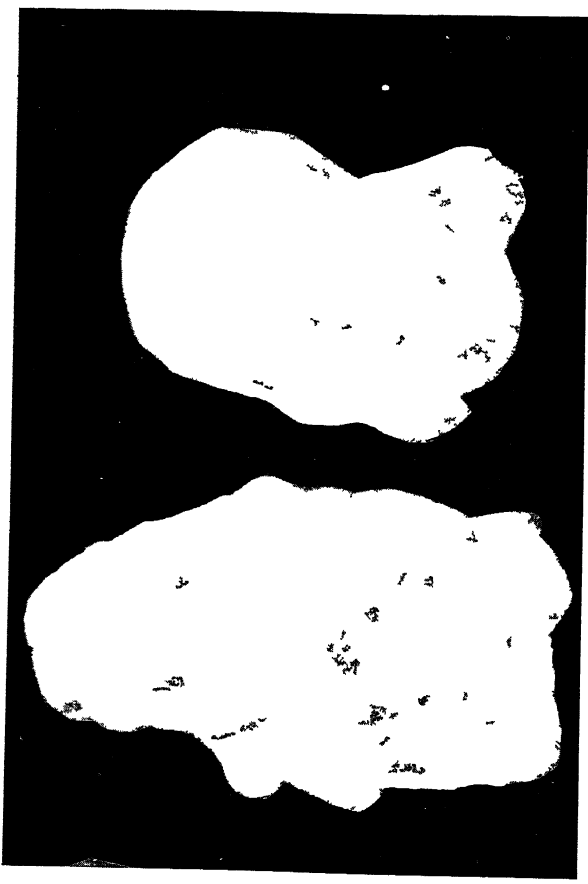
51 52 गणेश मृण्मूर्तियॉं कन्नौज गुप्तकाल (कन्नौज सग्रहालय)

53 नृत्य गणेश कम्पिल 9वी शती ई० (लखनऊ सग्रहालय स० 58 47)

54 नृत्य गणेश सिरोनखुर्द लग०
10वी शती ई० (झॉसी सग्रहालय)

55 नृत्य गणेश कन्नौज प्रतिहारकाल (निजी सग्रह)

58 पद्मा (लक्ष्मी) सॉची स्तूप स० 2 द्वितीय शती ई०पू०
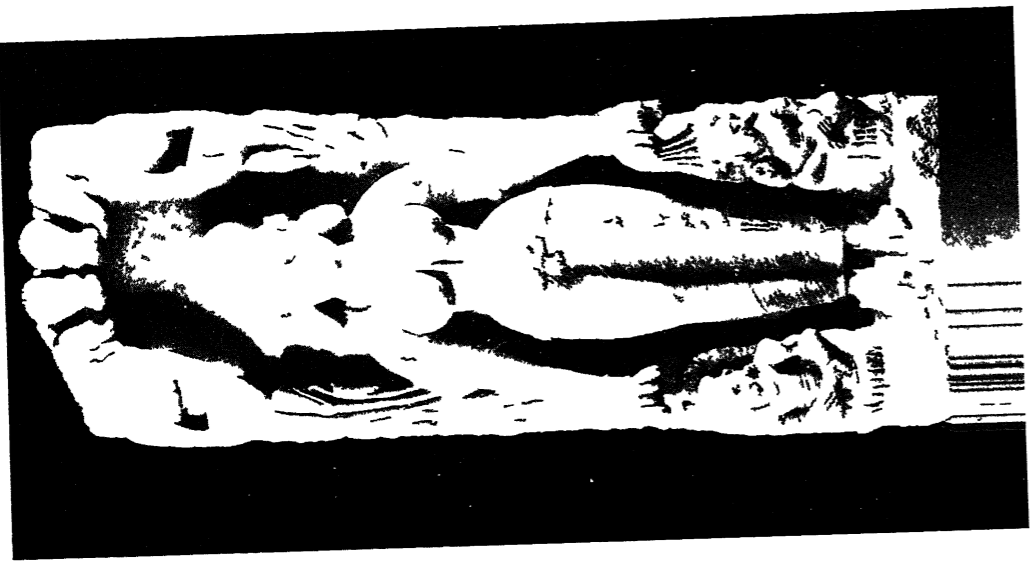
59 गजलक्ष्मी या अभिषेकलक्ष्मी भितरी गुप्तकाल (लखनऊ सग्रहालय स० 55 201)
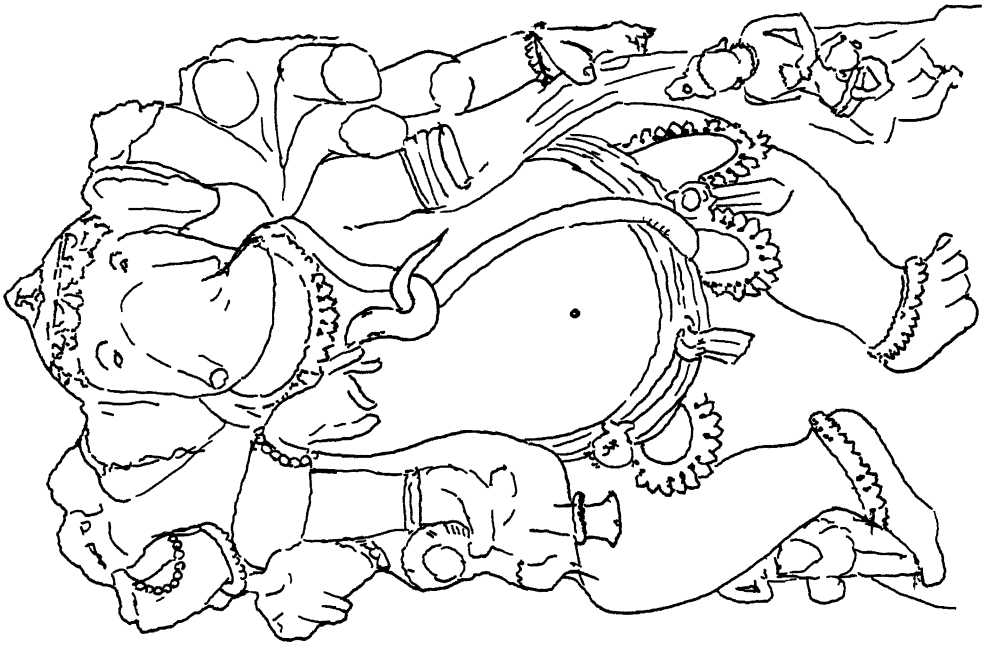
54 नृत्य गणेश सिरोनखुर्द लग०
10वी शती ई० (झाँसी-सग्रहालय)
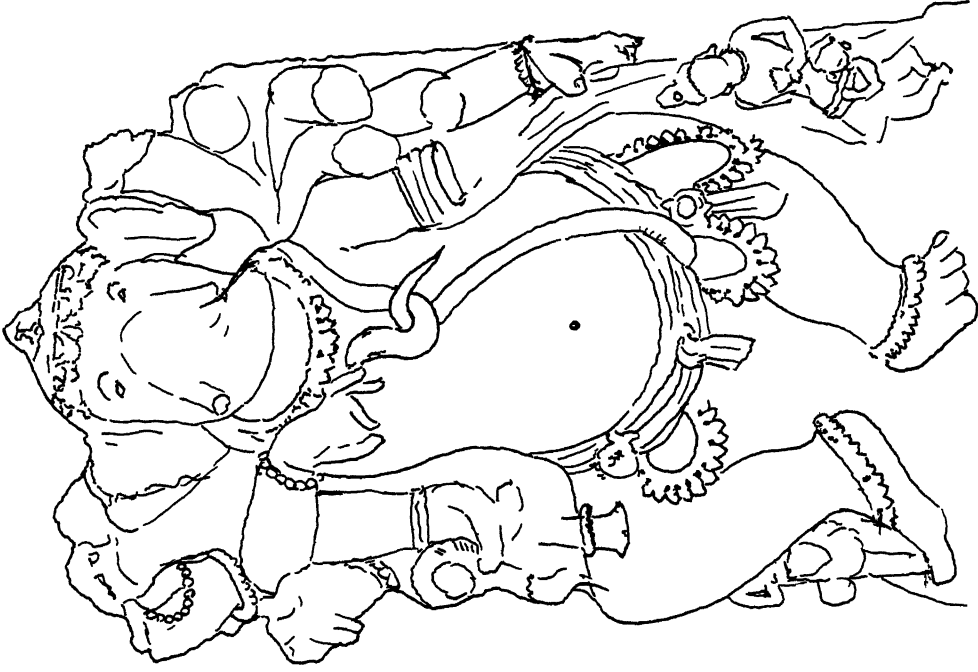
55 नृत्य गणेश कन्नौज प्रतिहारकाल (निजी सग्रह)

54 नृत्य गणेश सिरोनखुर्द लग०
10वी शती ई० (झाँसी सग्रहालय)
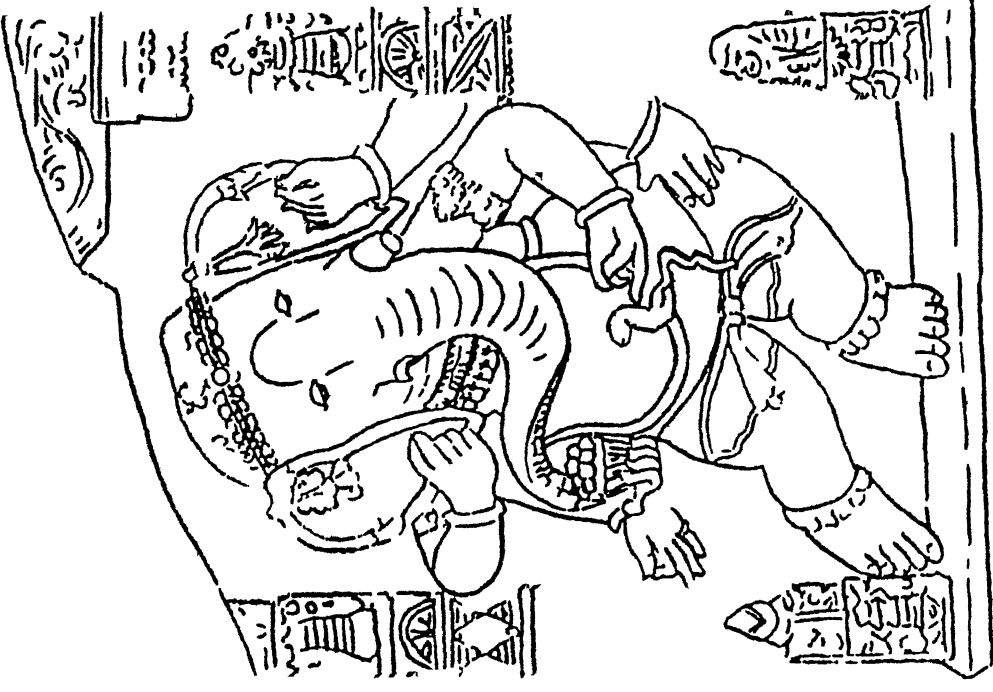
55 नृत्य गणेश कन्नौज प्रतिहारकाल (निजी सग्रह)
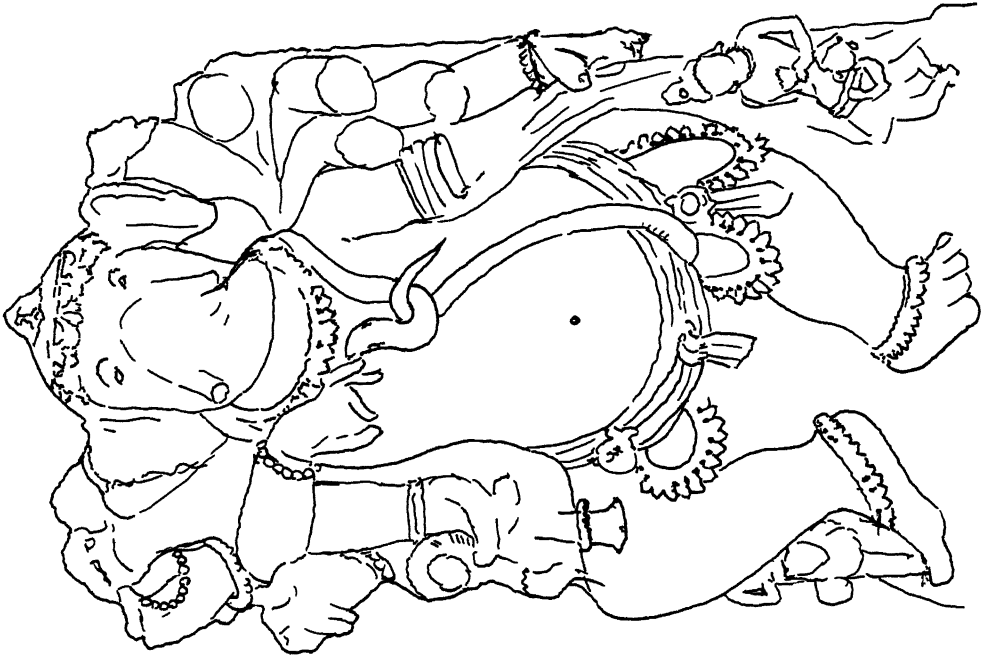
54 नृत्य गणेश सिरोनखुर्द लग०
10वी शती ई० (झाँसी सग्रहालय)
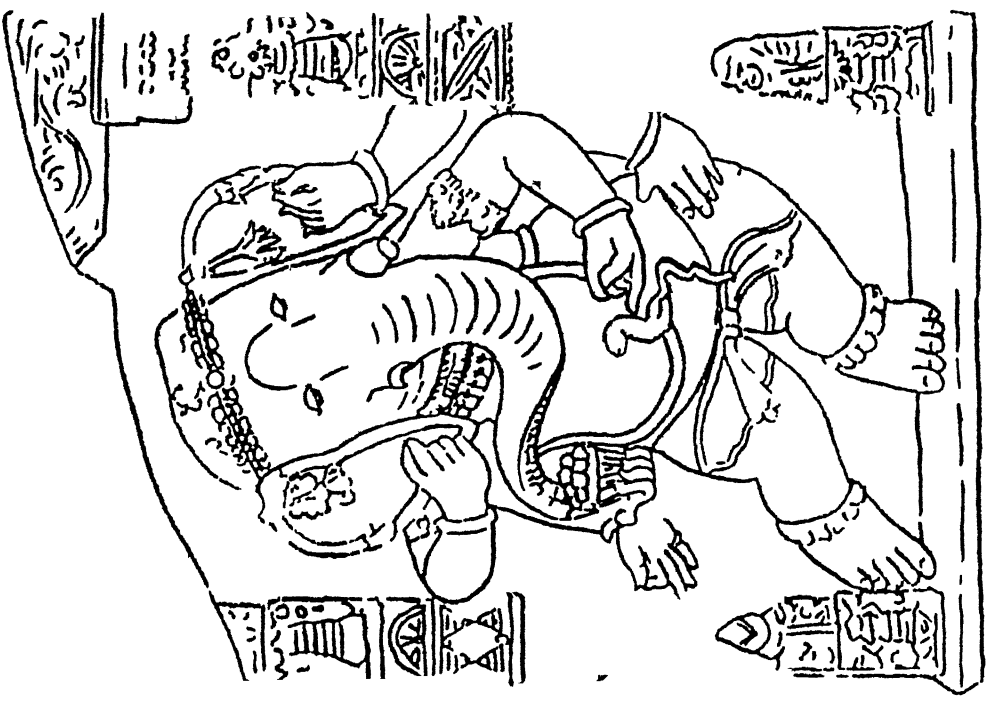
55 नृत्य गणेश कन्नौज प्रतिहारकाल (निजी सग्रह)

58 पदमा (लक्ष्मी) साँची स्तूप स० 2 द्वितीय शती ई०पू०

59 गजलक्ष्मी या अभिषेकलक्ष्मी भितरी गुप्तकाल
(लखनऊ-सग्रहालय स० 55 201)

63 शान्तदुर्गा श्रावस्ती गुप्तकाल (लखनऊ सग्रहालय स० बी-592)

62 महिषमर्दिनी दुर्गा एटा लगभग 14वी शती ई०
[illegible]

64 शान्त दुर्गा भितरी गुप्तकाल
(लखनऊ-सग्रहालय स० 55 201)
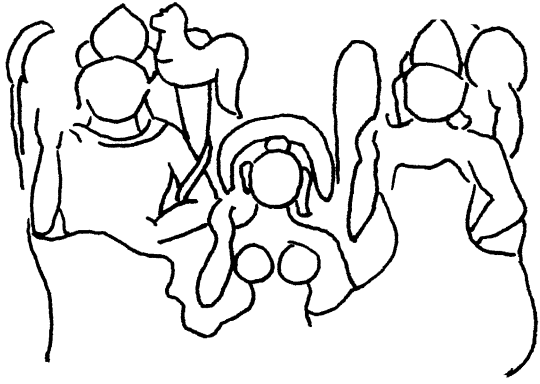
65 एकानशा (बलराम और कृष्ण के बीच) मथुरा
कुषाणकाल (मथुरा सग्रहालय)
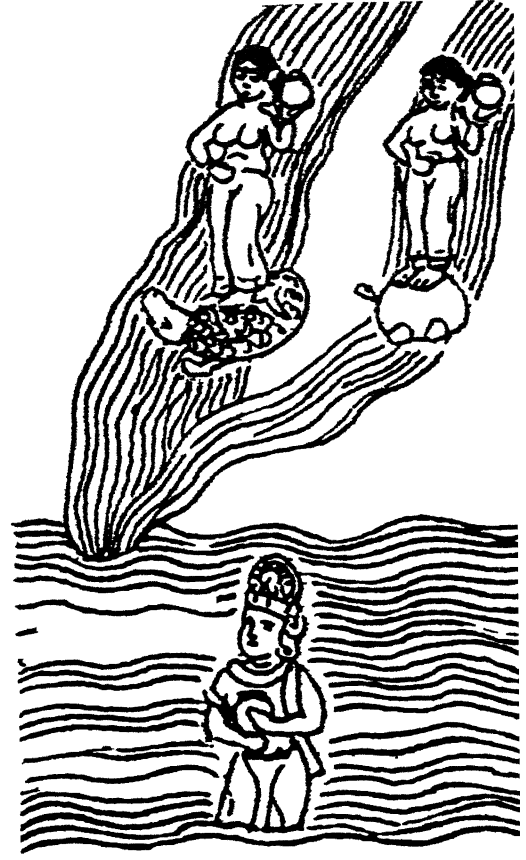
67 सागरपति वरुण से मिलती गगा-यमुना
देवता उदयगिरि गुहा (विदिशा म०
गुप्तकाल

66 षष्ठी (स्कन्द और विशाख के बीच) मथुरा कुषाणकाल
(बर्लिन सग्रहालय स० आई 10119)

63 शान्तदुर्गा श्रावस्ती गुप्तकाल (लखनऊ सग्रहालय स० बी 592)
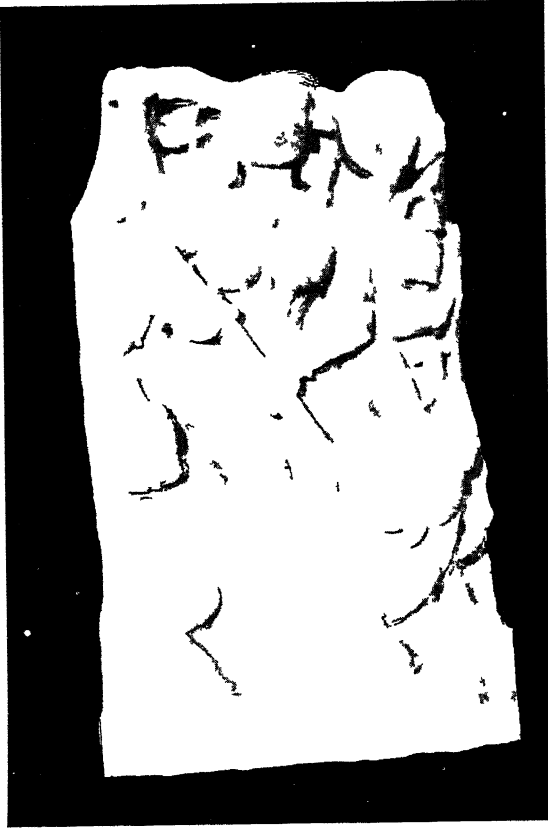
62 महिषमर्दिनी दुर्गा एटा लगभग 14वी शती ई०

64 शान्त दुर्गा भितरी गुप्तकाल
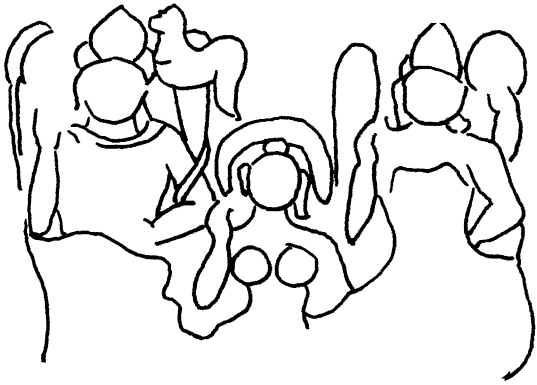
65 एकानशा (बलराम और कृष्ण के बीच) मथुरा
कुषाणकाल (मथुरा सग्रहालय)

67 सागरपति वरुण से मिलती गगा-यमुना नदी
देवता उदयगिरि गुहा (विदिशा म०प्र०)
गुप्तकाल

66 षष्ठी (स्कन्द और विशाख के बीच) मथुरा कुषाणकाल
(बर्लिन सग्रहालय स० आई 10119)
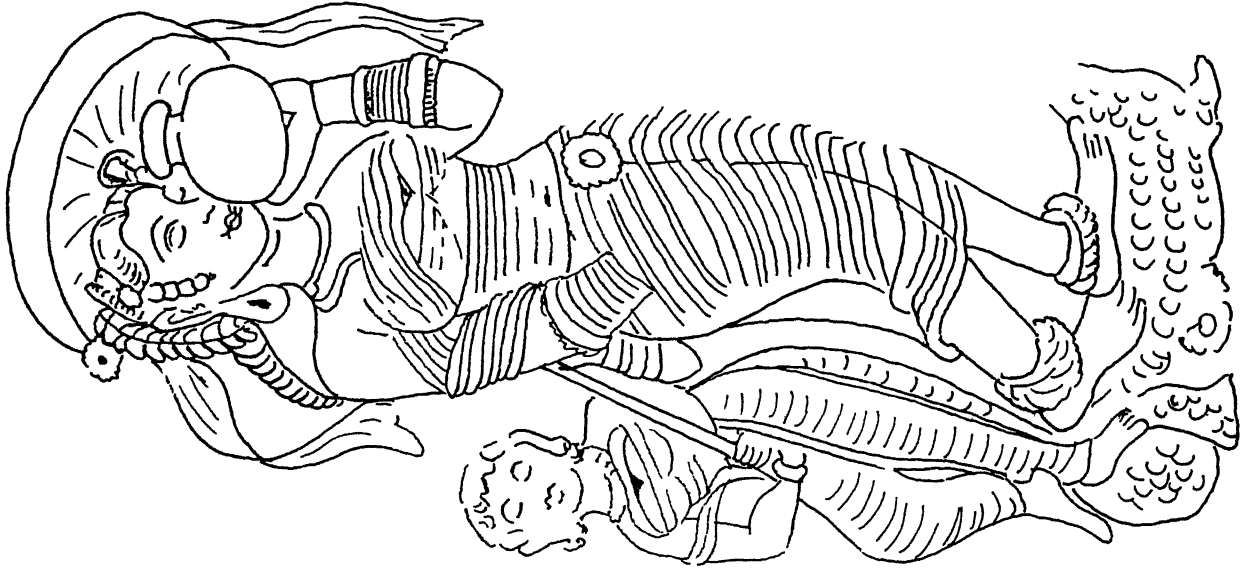
68 मकरवाहिनी गगा (मृण्मूर्ति) अहिच्छत्रा गुप्तकाल
(राष्ट्रीय सग्रहालय नई दिल्ली)
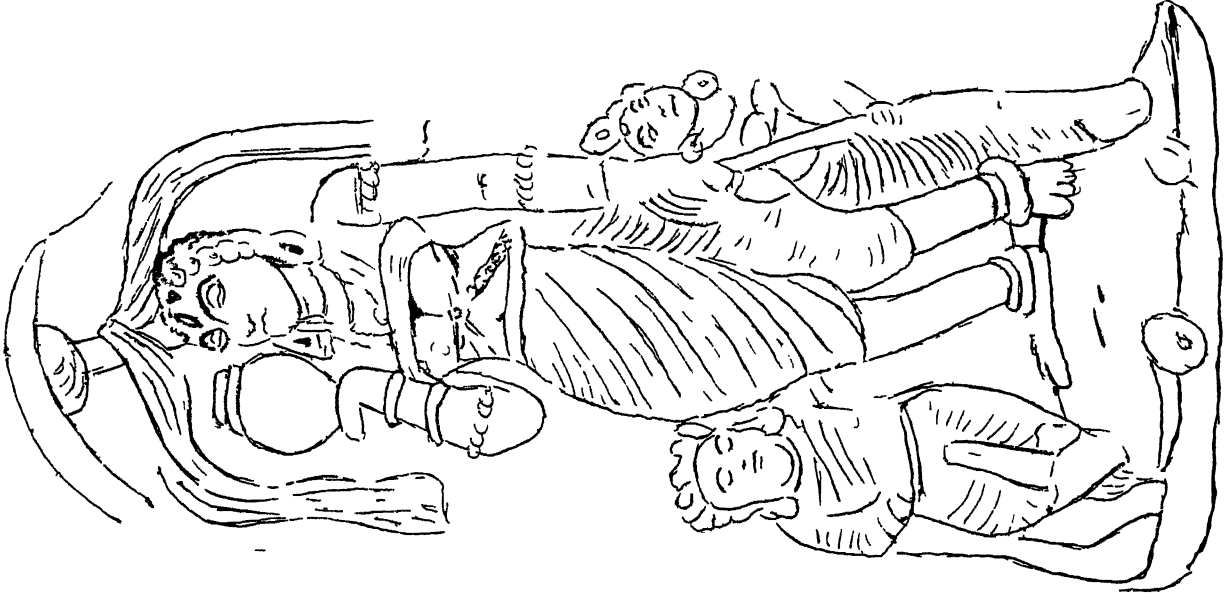
69 कच्छपवाहिनी यमुना (मृण्मूर्ति) अहिच्छत्रा गुप्तकाल
(राष्ट्रीय सग्रहालय नई-दिल्ली)

70 मातृका गुप्तकाल
(बडौदा सग्रहालय स० 2 667)
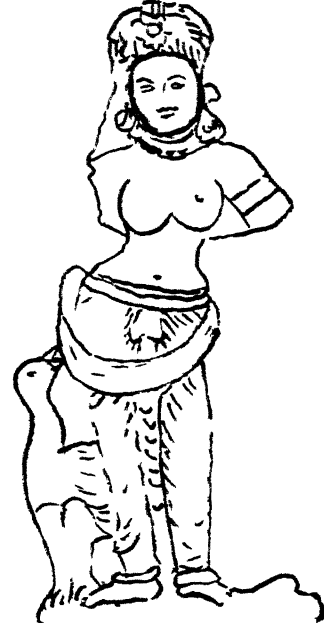
71 कौमारी गुप्तकाल 5वी शती इ०
(बडौदा सग्रहालय स० 2 547)
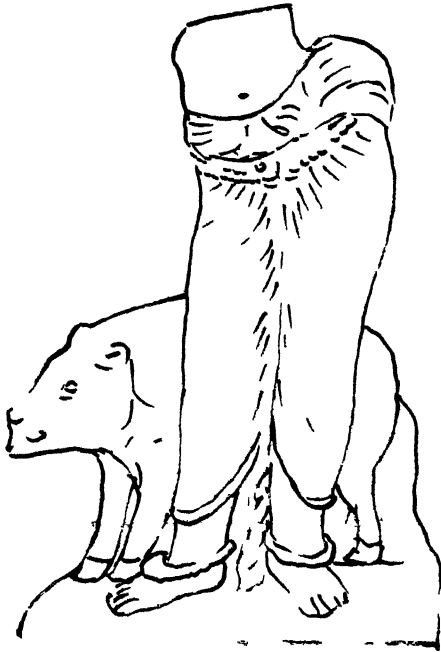
72 वाराही गुप्तकाल लगभग 4थी शती ई०
(बडौदा सग्रहालय स० 2 553)
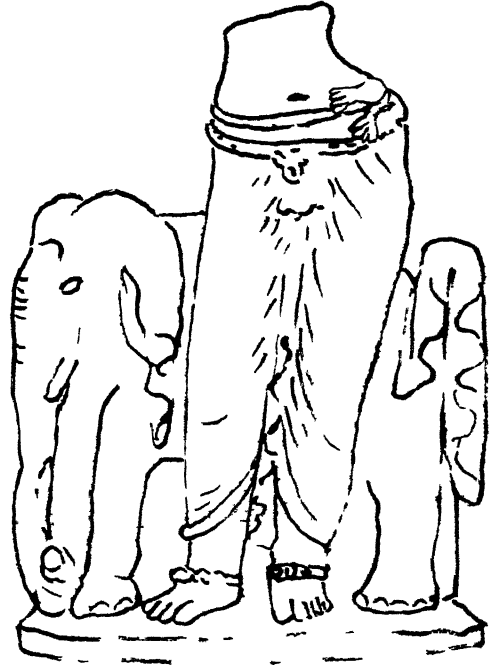
73 इन्द्राणी गुप्तकाल 4थी शती ई०
(बडौदा सग्रहालय स० 2 546)

74 चामुण्डा जमसोत 12वी शती ई० (इलाहाबाद सग्रहालय स० 105)

75 सप्तमातृका फलक नालन्दा (बिहार) लगभग 8वी-9वी शती ई०
(लखनऊ-सग्रहालय स० एच-34)

76 वरुण वराहखेडी (रायसेन म०प्र०) लग० 8वी 9वी शती ई० (बिडला सग्रहालय भोपाल स० 123)

77 कुबेर पभासा प्रतिहारकाल (लखनऊ सग्रहालय स० जी 56)

78 यक्ष परखम (मथुरा) मोर्य शुगकाल
(मथुरा-सग्रहालय स० सी-1)
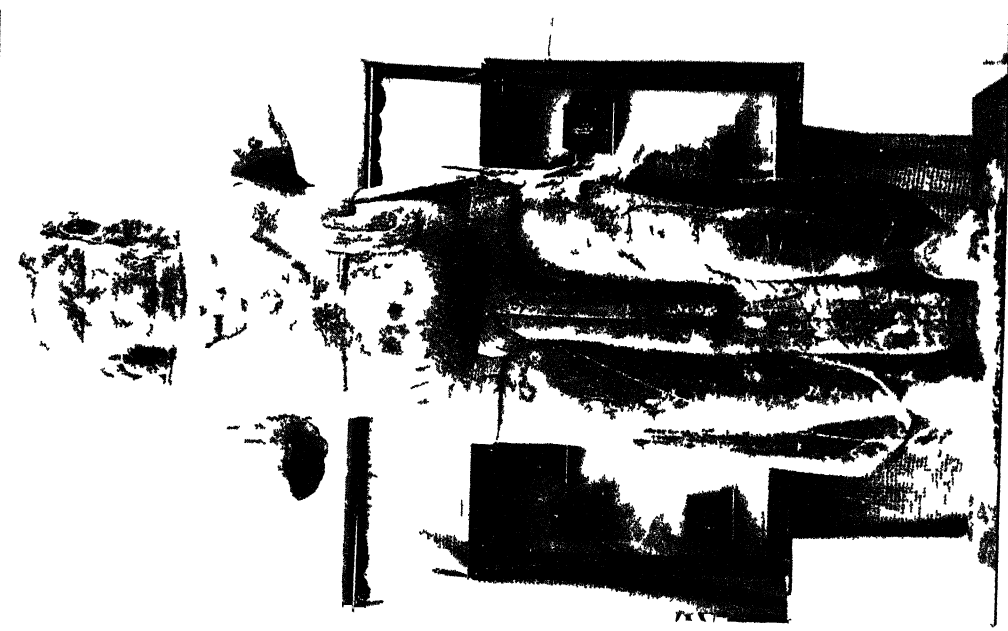
79 नाग दम्पति अजन्ता गुप्तकाल
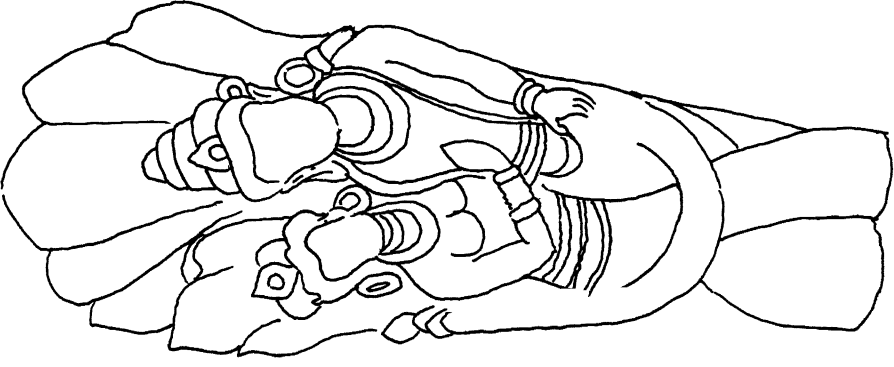
80 नाग-दम्पति बिहार मध्यकाल

81 गन्धर्व (चित्रांकन) अजन्ता गुप्तकाल

82 अप्सरा (चित्रांकन) अजन्ता गुप्तकाल

83 बुद्ध (ध्यानमुद्रा) गाधार कला तृतीय शती ई०

86 बुद्ध (अभय मुद्रा) श्रावस्ती गुप्तकाल (राष्ट्रीय सग्रहालय नई दिल्ली)

87 सिहनाद अवलोकितेश्वर महोबा 11वी शती ई०
(लखनऊ सग्रहालय स० ओ-225)

92 तीर्थंकर महावीर मथुरा कुषाणकाल
(मथुरा सग्रहालय)

93 तीर्थंकर नेमिनाथ मथुरा कुषाणकाल
(मथुरा सग्रहालय)

94 तीर्थंकर मथुरा गुप्तकाल (लखनऊ सग्रहालय स० जे-104)

95 तीर्थंकर ककाली टीला (मथुरा) 11वी शती ई० (मथुरा सग्रहालय)

96 तीर्थंकर चन्द्रप्रभ कौशाम्बी 9वी शती ई० (इलाहाबाद सग्रहालय स० 295)

97 तीर्थकर शान्तिनाथ पभोसा 11वी शती ई०
(इलाहाबाद-सग्रहालय स० 533)

98 बाहुबली श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) लग० 9वी शती
ई० (बम्बई सग्रहालय स० 105)